भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी

मासद्वयी अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका

Peer Reviewed

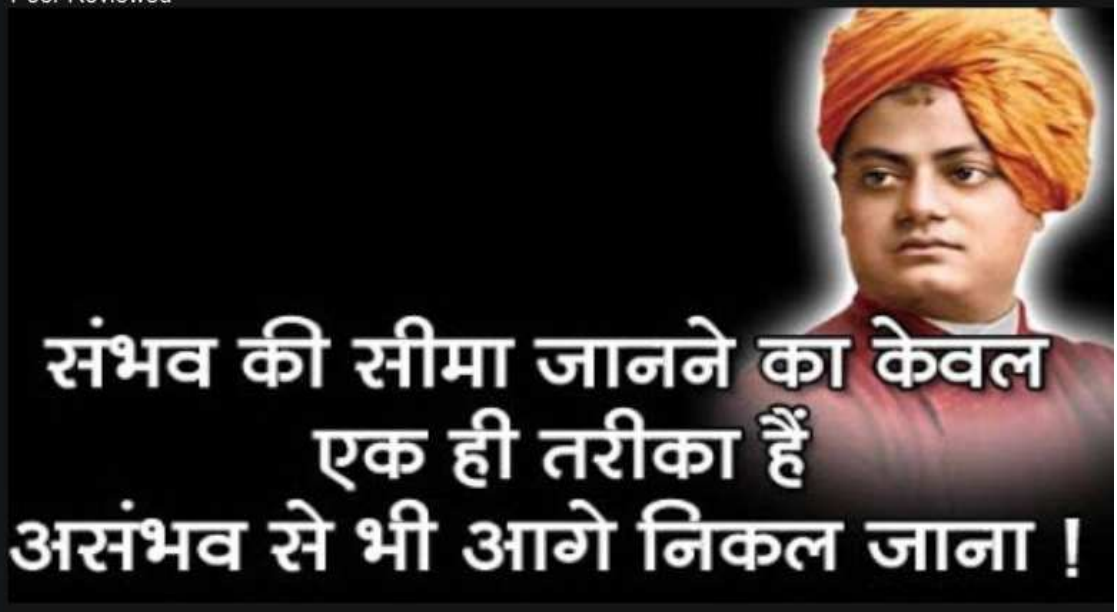

ISSN 0973-9777
GISI Impact Factor 3.5628
वर्ष-११ अंक-१ & २
जनवरी & मार्च २०१७

एम.पी.ए.एस.वी.ओ.
द्वारा आन्वीक्षिकी सदस्य
सहसंयोजन से प्रकाशित

वर्ष-११ अंक-१&२ जनवरी & मार्च २०१७

आन्वीक्षिकी

भारतीय शोध पत्रिका

मासद्वयी अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका

प्रधान सम्पादिका

डॉ. मनीषा शुक्ला,maneeshashukla76@rediffmail.com

पुनर्निरीक्षक संपादक

प्रो. विभा रानी दुबे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, उ.प्र.,भारत

डॉ. नागेन्द्र नारायण मिश्र, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद,उ.प्र.,भारत

प्रो. उमेश चंद्र दुबे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, उ. प्र.,भारत

सम्पादक

डॉ. महेन्द्र शुक्ल, डॉ. अंशुमाला मिश्रा

सम्पादक मण्डल

डॉ. मंजु वर्मा, डॉ. अमित जोशी, डॉ. अर्चना तिवारी, डॉ. सीमा रानी, डॉ. सुमन दुबे, डॉ. सच्चिदानंद द्विवेदी, डॉ. मनोज कुमार अग्निहोत्री, पाल सिंह, डॉ. पौलमी चटर्जी, डॉ. राम अग्रवाल, डॉ. शीला यादव, डॉ. प्रतीक श्रीवास्तव, जय प्रकाश मल्ल, डॉ. त्रिलोकीनाथ मिश्र, प्रो. अंजली श्रीवास्तव, विजय कुमार प्रभात, डॉ. जे.पी. तिवारी, डॉ. योगेश मिश्रा, डॉ. निर्मला देवी, डॉ. आरती यादव, डॉ. कविता सिंह, डॉ. सुभाष मिश्र, डॉ. पूनम सिंह, डॉ. रीता मौर्या, डॉ. सौरभ गुप्ता, डॉ. श्रुति विग, दीप्ति सजवान, डॉ. निशा यादव, डॉ. रमा पद्मजा वेदुला, डॉ. कल्पना बाजपेयी, डॉ. ममता अग्रवाल

अन्तर्राष्ट्रीय सलाहकार मण्डल

पी.त्रिराची सोडामा (श्रीलंका), फ्रा च्युतिदेश सैन्सोम्बट (बैंकाक,थाईलैंड), डॉ. सीताराम बहादुर थापा (नेपाल), माजिद करीमजादेह (ईराक), मोहम्मद जारेई (जाहेडान, ईरान), मोहम्मद मोजटाबा केयाहफरजानेह (जाहेडान, ईरान), डॉ. होसैन जेनाबदी (सिस्तान एवं बलूचिस्तान, ईरान), मोहम्मद जावेद केयाह फरजानेह (जाबोल, ईरान)

प्रबन्धक

महेश्वर शुक्ल,maheshwar.shukla@rediffmail.com

पाठकों से

आन्वीक्षिकी,भारतीय शोध पत्रिका प्रत्येक दो माह (जनवरी, मार्च, मई, जुलाई, सितम्बर एवं नवम्बर) पर एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण वाराणसी उ.प्र. भारत द्वारा प्रकाशित की जाती है। एक वर्ष में आन्वीक्षिकी, भारतीय शोध पत्रिका 6 भाग हिन्दी एवं 6 भाग अंग्रेजी एवं 3 अतिरिक्तांकों के भाग में प्रकाशित की जाती है। डॉक खर्च दर के सम्बन्ध में जानकारी हेतु सम्पर्क करें।

वार्षिक पाठक मूल्य दर

संस्थागत एवं व्यक्तिगत : भारतीय 5000+1000/-डाक शुल्क, एक प्रति 1300+100/- डाक शुल्क, वैदेशिक : 6000+डाक खर्च, एक प्रति 1000+डाक शुल्क

विज्ञापन एवं निवेदन

विज्ञापन के संदर्भ में जानकारी प्राप्त करने हेतु प्रधान सम्पादिका के पते पर संपर्क करें। आन्वीक्षिकी एक स्ववित्तपोषित पत्रिका है,अत: किसी भी प्रकार का आर्थिक सहयोग सराहनीय होगा। कृपया अपनी सहयोग राशि चेक अथवा ड्राफ्ट के माध्यम से निम्नलिखित पते पर प्रेषित करें।

सभी पत्राचार निम्नलिखित पते पर ही प्रेषित करें-

बी.32/16 ए. 2/1,गोपालकुंज,नरिया,लंका वाराणसी उ.प्र. भारत,पिन कोड 221005 मोबाइल नं. 09935784387,

टेलीफोन नं. 0542-2310539.,E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com,www.anvikshikijournal.com

मिलने का समय : 3-5 दिन में(रविवार अवकाश)

पत्रिका संयोजन : महेश्वर शुक्ल,maheshwar.shukla@rediffmail.com

प्रकाशन :एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण

प्रकाशन तिथि : 9 मार्च 2017

मनीषा प्रकाशन

(पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/ 2007-2008 बी.32/16 ए. 2/1,गोपालकुंज,नरिया, लंका वाराणसी उ.प्र. भारत)

आन्वीक्षिकी

भारतीय शोध पत्रिका

वर्ष-११ अंक-१ जनवरी-२०१७

शोध प्रपत्र

विवेकानन्द का नीतिशास्त्र -डॉ0 मनोज कुमार अग्निहोत्री 1-3
ईश्वर का स्वरूप एवं कार्य : विवेकानन्द दर्शन -डॉ0 मनोज कुमार अग्निहोत्री 4-6

मोहन राकेश के नाटकों में स्त्री पात्र -डॉ0 नमिता जैसल 7-14
तुलनात्मक साहित्य : हिन्दी और मलयालम साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन-
प्रारम्भिक प्रयास पुराना भाव व नया अर्थ -डॉ0 रमा पद्मजा वेदुला 15-19

संत रमइया की प्रगतिशील चेतना -डॉ0 सच्चिदानन्द द्विवेदी 20-25
क्रान्तिकारी कवि के रूप में श्रीकृष्ण 'सरल' का साहित्यिक प्रदेय -डॉ0 रमेश कुमार टण्डन 26-29

सुहाग के नुपूर में वेश्या जीवन और सुहाग सुख का अन्तर्द्वन्द्व -डॉ0 कल्पना बाजपेयी 30-33
वेद भाषा है भोजपुरी संस्कृत की लोकभाषा -संजय तिवारी 34-39

राष्ट्रवाद के अमर शिल्पी -प्रो0 अंजली श्रीवास्तव 40-43
मीडिया में पेड न्यूज़ का बढ़ता प्रभाव -कमल चौहान 44-46

विज्ञापन में बढ़ती कामुकता/ अश्लीलता -रवि प्रकाश सिंह 47-53
शिक्षा के सतत् विकास में स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा दर्शन की प्रासंगिकता -दीप्ति सजवान एवं डॉ0 अनोज राज 54-58

स्त्री शिक्षा में संगीत -डॉ0 पौलमी चटर्जी 59-61
स्त्रियों के प्रति अम्बेडकर का योगदान -डॉ0 धनञ्जय कुमार 62-64

इलाहाबाद जनपद की अभिलेखिक एवं मुद्रा सम्पदा -डॉ0 विजया तिवारी 65-70
काशी की संगीत परम्परा : गायन के विशिष्ट संदर्भ में -डॉ0 पौलमी चटर्जी 71-73

भारत और एशियाई प्रान्त क्षेत्र : एक मूल्यांकन -डॉ0 सीमा रानी 74-76
''लोकतंत्र का विकास व सफलता की शर्तें तथा भारतीय लोकतंत्र की वर्तमान स्थिति'' -पंकज राठौड़ 77-80

भ्रष्टाचार : देश के लिए नासूर -डॉ0 सीमा रानी 81-83
प्राचीन भारतवर्ष में शल्य प्रसव द्वारा श्री कृष्ण जन्म -डॉ0 डी0पी0 सिंह एवं डॉ0 शरदेन्दु बाली 84-89

संगीत के रोजगारपरक आयाम -डॉ0 पौलमी चटर्जी 90-93
मम्मट के दृष्टिकोण में ''गुणीभूतव्यङ्ग्य -काव्य'' -डॉ0 मनीषा शुक्ला 94-96

शिशुपालवध महाकाव्य में माधुर्यगुण-कृत सौन्दर्य -सुधा श्रीवास्तव 97-100

प्रिंट ISSN 0973-9777, वेबसाइट ISSN 0973-9777

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,1-3**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 04 अक्टूबर 2016

विवेकानन्द का नीतिशास्त्र

डॉ0 मनोज कुमार अग्निहोत्री*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *विवेकानन्द का नीतिशास्त्र* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र का लेखक मैं *मनोज कुमार अग्निहोत्री* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैंने शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

सारांश

स्वामी विवेकानन्द के विचारानुसार शरीर विज्ञानी यह मानते हैं कि सभी मनुष्य शारीरिक दृष्टिकोण से समान हैं, परन्तु मनोविज्ञानी मानते हैं कि शारीरिक समानता होते हुए भी प्रत्येक मनुष्यों के मनो (मस्तिष्क) में विभिन्नता पायी जाती है। इस विभिन्न मनोवृत्तियों वाले लोगों के लिए चरम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कर्म–मार्ग, भक्ति मार्ग, राजमार्ग एवं ज्ञानमार्ग का निरूपण करना चाहिए। कर्म–मार्ग का आदर्श निःस्वार्थता, पवित्रता, परोपकार, कर्तव्यपरायण, सेवा एवं अहिंसा इत्यादि हैं भक्ति मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति प्रेम का आलिंगन करता है, क्योंकि प्रेम सत्य है, घृणा असत्य हैं। सत्य यही है जिससे एकत्व स्थापित हो, अनेकत्व दिखने वाली वस्तु असत्य है। चूँकि घृणा मनुष्य को मनुष्य से पृथक करती हैं, इसलिए वह गलत और मिथ्या है। प्रेम एकत्व स्थापित करता है। प्रेम के वशीभूत हो व्यक्ति दूसरों के प्रति दया, सहानुभूति आदि जैसे गुणों का प्रदर्शन करता है। प्रेम का आदर्श जैसे – जैसे फेलाव लेता है भक्त के लिए वहीं संसार प्रेममय हो जाता है और तब तक वह संसार के प्रत्येक जीव से प्यार करने लग जाता है; क्योंकि वह प्रत्येक जीव में उस परमात्मा को ही देखता है। इस सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द जी का विचार है कि– ''नीतिशास्त्र का एक मात्र उद्देश्य है, एकत्व एवं एकरूपता। आज तक मानव जाति नैतिकता के जिन उच्चतम विधानों की खोज कर सकी है, वे विविधता नहीं स्वीकार करते, उसकी खोजबीन के निमित्त रूकने के लिए उसके पास समय नहीं है उनका एक उद्देश्य बस वहीं एकरूपता लाना है।''

नीतिशास्त्र में व्यक्ति के शुद्ध एवं अशुद्ध आचरण से सम्बन्ध रखने वाली बातों का अध्ययन किया जाता हैं। जैसे– मनुष्य को क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए? स्वामी विवेकानन्द के विचारानुसार नीतिशास्त्र के अध्ययन का विषय मानव जाति की नैतिक चेतना अथवा नैतिक अनुभूति है। नैतिक चेतना से तात्पर्य शुभ–अशुभ, उचित–अनुचित आदि की अनुभूतियों से है।

नीतिशास्त्र नैतिक निर्णयों का अध्ययन कर नैतिक चेतना की युक्त संगत व्याख्या करता है। इस कार्य के लिए वह नैतिकता का प्रतिमान स्थित करता है; क्योंकि नैतिक निर्णयों का आधार कोई न कोई रहता है। आदर्श के अनुकूल कार्य को कर्तव्य और प्रतिकूल कार्य को अकर्तव्य कहा जाता है। सामान्यत: नीतिशास्त्र व्यक्ति और समाज दोनों के कर्तव्यों एवं अकर्तव्यों का विवेचन

* एस0एस0 खन्ना महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत। E-mail : agni.mkumar@yahoo.com

© लेखक 2017, एम0पी0ए0एस0वी0ओ0 मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहासंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

करता है दोनों के लिए नैतिकता और अनैतिकता के प्रतिमान भी प्रस्तुत करता है। नीतिशास्त्र के नैतिक निर्णय मूल्य सूचक निर्णय होते हैं। यह मूल्य सापेक्ष न होकर निरपेक्ष होता है।

इस प्रकार नीतिशास्त्र में शुभ और अशुभ का विचार होता है। जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए मनुष्य को कुछ नियामों का पालन करना होता है। ये नियम नीतिशास्त्र निर्धारित करता है। नीतिशास्त्र मोक्ष धर्म पर आधारित होता है। नीति–शास्त्र मानवता के नैतिक निर्णयों को एक समष्टि का रूप देने की चेष्टा है। यह एक आदर्शान्वेषीशास्त्र है क्योंकि उसका कार्य मानव –व्यापारों के आदर्श रूप अथवा मानवजीवन की आदर्शावस्था को निकालता हैं। नीतिशास्त्र यह स्पष्ट करती है कि किसी निर्दिष्ट लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए किन सद्गुणों का होना नितान्त आवश्यक है। मनुष्य के लिए वांछनीय सद्गुण किसी देश, काल परिस्थिति के अनुसार बदलते रहते हैं, किन्तु फिर भी कुछ सद्गुण सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक होते हैं। जैसे– सत्यता, प्रेम और पवित्रता आदि।

स्वामी विवेकानन्द जी ने सद्गुण उसे माना है जो हमारे चरित्र निर्माण में सहायक हो। चरित्र का अर्थ मनुष्य में प्राप्त गुणों, मितव्ययिता, ईमानदारी, वचनबद्धता, संयमशीलता, न्यायप्रियता आदि से होता है। यह गुण आत्म साक्षात्कार के नैतिक आदर्श से उद्भूत होता है। स्वामी विवेकानन्द जी ने चरित्र गठन के लिए पवित्रता, साहस, संयम, सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्य आदि सद्गुणों पर जोर दिया है। पवित्रता के महत्व को स्पष्ट करते हुए स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा है – ''यह स्पष्ट है कि पवित्रता ही समस्त धर्म और नीति की आधारशिला है।'' उन्होंने स्पष्ट किया कि पवित्रता द्वारा सभी पाशविक भावों का नाश किया जा सकता है।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार मनुष्य के चरित्र का नियमन करने वाली दो चीजें होती है बल और दया। बल का प्रयोग करना सदैव स्वार्थपरक वश ही होता है। प्राय: सभी मनुष्य अपनी शक्ति एवं सुविधा का यथासम्भव उपयोग करने का प्रयत्न करते हैं। दया दैवी सम्पत्ति है। भला मनुष्य बनने के लिए हमें दया मुक्त होना चाहिए, यहॉ तक कि न्याय और अधिकार भी दया पर ही प्रतिष्ठित होने चाहिए। दया और नि:स्वार्थपरता को कार्यरूप में परिणत करने का एक और उपाय है – कर्मो को उपासना रूप मानना। आज मनुष्य अपने बल की शक्ति में विश्वास नहीं करता है, इसीलिए वह अपने को निर्बल समझता है।

स्वामी विवेकानन्द ने नैतिकता के विकास के लिए सत्य, अहिंसा व ब्रह्मचर्य को आवश्यक माना है। उसका मानना है कि, ''मन को पूर्णतया वश में करने के लिए पूर्ण नैतिकता ही सब कुछ है। जो पूर्ण नैतिक है, उसे कुछ करना शेष नहीं, वह मुक्त है। जो नैतिक है, वह सम्भवत: किसी प्राणी या व्यक्ति की हिंसा नहीं करेगा। जो मुक्त होना चाहे, उसे अहिंसक बनना पड़ेगा। जिसने पूर्ण अहिंसा का भाव है, उससे बढ़कर शक्तिशाली कोई नहीं।'' स्वामी जी का मानना है कि सत्य, पवित्रता और त्याग वे सद्गुण हैं जिनसे मनुष्य अपने जीवन की हर मुसीबत का सामना कर सकता है। जिन लोगों में सत्य, पवित्रता और नि:स्वार्थपरता विद्यमान है, उन्हें स्वर्ग, मर्त्य एवं पाताल लोक की कोई भी शक्ति उसकी क्षति नहीं कर सकती। इन गुणों के रहने पर चाहे समस्त विश्व ही उसके विरुद्ध हो जाय, फिर भी वह अकेले ही सबका सामना कर सकता है।

जिस प्रकार स्वामी विवेकानन्द ने सत्य, पवित्रता और त्याग को सद्गुण माना है उसी प्रकार विवेकानन्द ने आदत को चरित्र गठन के लिए आवश्यक माना है। उनका कथन है कि 'यदि शुभ संस्कारों का प्राबल्य बना रहे, तो मनुष्य का चरित्र अच्छा होता है और यदि अशुभ संस्कारों का तो बुरा। ....अतएव बुरे संस्कार–सम्पन्न होने के कारण उस व्यक्ति के कार्य भी बुरे होंगे, वह एक बुरा आदमी बन जायेगा, इसके सिवाय अन्यथा होना असम्भव है। ... इसी प्रकार यदि एक मनुष्य अच्छे विचार रखे और सत्कार्य करे, तो उसके इन संस्कारों का प्रभाव भी अच्छा ही होगा। तथा उसकी इच्छा न होते हुए भी वे उसे सत्कार्य करने के लिए प्रवृत्त करेंगे। संस्कारों की समष्टि स्वरूप उसका मन उसे ऐसा करने से फौरन रोक देगा, इतना ही नहीं, वरन् उसके ये संस्कार उसे उस मार्ग पर से हटा देगें। तब वह अपने संस्कारों के हाथ एक कठपुतली, जैसा हो जायेगा। जब ऐसी स्थिति हो जाती है, तभी उस मनुष्य का चरित्रगठित कहलाता है।''

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि जीवन के चरम् लक्ष्य को पाने के लिए मनुष्य को नैतिकता और नि:स्वार्थपरता के उच्चतम आदर्श को व्यावहारिक करना होगा तथा साथ ही उच्चतम दार्शनिक और वैज्ञानिक धारणाएं स्वीकार करनी होगी, क्योंकि मनुष्य का ज्ञान मनुष्य के हित के लिए होता है अहित के लिए नहीं वरन् जीवन के प्रत्येक विभाग में ही ज्ञान हमारी रक्षा करता है।

स्वामी विवेकानन्द का मानना है कि सद्गुण मन के अर्जित संस्कार हैं और सभी सद्गुण एक परम सद्गुण के ही विभिन्न पक्ष हैं और इसी के अन्तर्गत मानव अपने सामान्य जीवन को कर्तव्य और अधिकार के बीच व्यतीत करता है। अत: उसे अपने कर्तव्य और अधिकार का भी सम्यक् ज्ञान होना चाहिए। जीवन के विभिन्न कर्तव्यों के प्रति मनुष्य का जो मानसिक और नैतिक दृष्टिकोण रहता है, वह अनेक अंशों में उसके जन्म और उसकी अवस्था द्वारा नियमित होता है। इसीलिए जिस समाज में मनुष्य का जन्म होता है, उसके आदर्शो एवं व्यवहारों के अनुरूप उदात्त एवं उन्नत बनाने वाले कार्य करना ही हमारा कर्तव्य होता है। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार – ''इस प्रकार हम देखते हैं, कि देश–काल–पात्र के अनुसार हमारे कर्तव्य कितने बदल जाते हैं और सबसे श्रेष्ठ कर्म तो यह है कि जिस विशिष्ट समय पर हमारा जो कर्तव्य हो, उसी को हम भलीभॉति निबाहें।''

यह सत्य है कि कर्तव्यपालन की मधुरता प्रेम में ही है, और प्रेम का विकास केवल स्वतन्त्रता में ही होता है। स्वतन्त्रता के लिए मनुष्य को इन्द्रिय निग्रह ईर्ष्या व क्रोध आदि मनोभावों पर नियंत्रण करना होता है। यही कारण है कि माता–पिता अपने बच्चों के प्रति एवं बच्चे अपने माता–पिता के प्रति कर्तव्य करते दिखाई देते हैं तथा जो कर्तव्य दूसरों के प्रति किए जाते हैं उन्हें परोपकार कहा जाता है। नीतिशास्त्र के अनुसार दूसरों या जरूरतमन्द लोगों की सहायता करनी चाहिए।

स्वामी विवेकानन्द जी ने कर्तव्यों की व्याख्या अधिकार के सन्दर्भ में किया है। जो एक व्यक्ति का कर्तव्य है तो दूसरी ओर भूखे व्यक्ति का अधिकार है जीवित रहने के लिए भोजन की प्राप्ति। प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह अपनी सामाजिक व्यवस्था का सम्मान करे जिससे उसके अधिकारों की रक्षा हो सके। वर्तमान समय में विभिन्न वर्गो, समूहों आदि के बीच जो संघर्ष हो रहा है उसके सर्वप्रमुख कारण यह है कि मनुष्य अपने अधिकारों के प्रति जितना सजग रहता है उतना कर्तव्यों के प्रति नहीं। इसके अतिरिक्त व्यक्ति को अपने अधिकार का प्रयोग दूसरे व्यक्ति को हानि पहुॅचाने के लिए नहीं करना चाहिए। यदि इस बात का ध्यान प्रत्येक व्यक्ति करे तो समाज में संघर्ष सदैव के लिए समाप्त हो जायेगा। समाज ही व्यक्ति को अधिकार देता है कि वह अन्य व्यक्तियों पर उस अधिकार के समादर के लिए कर्तव्य निर्धारित करे। इस प्रकार अधिकार एवं कर्तव्य एक ही नैतिक नियम के दो पहलू हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

मजूमदार, श्री सत्येन्द्र नाथ –*विवेकानन्द चरित्र,* रामकृष्ण मठ, नागपुर
विवेकानन्द साहित्य – अद्वैत आश्रम मायावती अल्मोड़ा जन्मशती संस्कार
विवेकानन्द स्वामी – कर्मयोग, रामकृष्ण मठ, धन्तोली नागपुर
विश्व के श्रेष्ठ शिक्षा शास्त्री, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा –पाण्डेय, राम सकल
अन्वेशिका –रेडियन जर्नल आफ टीचर एजूकेशन

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,4-6**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 04 अक्टूबर 2016

ईश्वर का स्वरूप एवं कार्य : विवेकानन्द दर्शन

डॉ0 मनोज कुमार अग्निहोत्री*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *ईश्वर का स्वरूप एवं कार्य : विवेकानन्द दर्शन* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र का लेखक मैं *मनोज कुमार अग्निहोत्री* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैंने शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

सारांश

स्वामी विवेकानन्द के विचारों से यह स्पष्ट होता है कि सम्पूर्ण विश्व में एक ही सत्ता है और उसी को ब्रह्म कहते हैं। वहीं सत्ता जब विश्व के मूल में प्रकट होती है तो उसी को ईश्वर कहा जाता है। वही सत्ता जब इस लघु विश्व अर्थात् शरीर के मूल में प्रकट होती है तो आत्मा कहलाती है। सार्वभौम आत्मा जो प्रकृति से परे है प्रकृति के सार्वभौमविकारों से परे है वहीं ईश्वर परमेश्वर है।

स्वामी विवेकानन्द अद्वैत वेदान्ती होने के कारण ईश्वर को उतना ही सत्य मानते हैं कि जितना विश्व की अन्य कोई वस्तु। जिससे विश्व का जन्म और प्रलय होता है, वही ईश्वर है। वह अनन्त, शुद्ध, नित्य मुक्त, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ और गुरुओं का भी गुरू है और सर्वोपरि, वह ईश्वर अनिर्वचनीय प्रेमस्वरूप है। इससे यहॉ यह प्रश्न उठता है कि क्या ईश्वर दो है? एक सच्चिदानन्द स्वरूप जिसे ज्ञानी 'नेतिनेति' करके प्राप्त करता है और दूसरा भक्त का प्रेममय भगवान। स्वामी विवेकानन्द ने स्पष्ट किया है कि ईश्वर दो नहीं है। ''वह सच्चिदानन्द ही यह प्रेममय भगवान है वह सगुण और निर्गुण दोनों है। यह सदैव ध्यान में रखना चाहिए कि भक्त का उपास्य सगुण ईश्वर, ब्रह्म से भिन्न अथवा पृथक नहीं है। सब कुछ वहीं एकमेवद्वितीयब्रह्म है पर वो ब्रह्म का यह निर्गुण निरपेक्ष स्वरूप अतयन्त सूक्ष्म होने के कारण प्रेम एवं उपासना के योग्य नहीं। इसलिए भक्त ब्रह्म के सापेक्ष भाव अर्थात् परम नियन्ता ईश्वर को ही उपास्य के रूप में ग्रहण करता है।'' इस तथ्य को स्वामी विवेकानन्द जी ने इस उदाहरण द्वारा समझाने का प्रयत्न किया है– ''ब्रह्म मानो मिट्टी या उपादान के सदृश है, जिससे नाना प्रकार की वस्तुएॅ निर्मित हुई हैं। मिट्टी के रूप में तो वे सब एक हैं, पर उसका आकार या अभिव्यक्ति उन्हें भिन्न कर देती है। उत्पत्ति के पूर्व में सबकी सब मिट्टी में अव्यक्त भाव से विद्यमान थी। उपादान की दृष्टि से अवश्य वे सब एक हैं, पर जब वे भिन्न–भिन्न आकार धारण कर लेती है और जब तक वह आकार बना रहता है, तब तक वे पृथक–पृथक ही प्रतीत होती है। एक मिट्टी का चूहा की भी मिट्टी

* एस0एस0 खन्ना महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत। E-mail : agni.mkumar@yahoo.com

© लेखक 2017, एम0पी0ए0एस0वी0ओ0 मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहासंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

का हाथी नहीं हो सकता, क्योंकि गढ़ जाने के बाद उनकी आकृति ही उनमें विशेषत्व पैदा कर देती है, यद्यपि आकृतिहीन मिट्टी की दशा में वे दोनों एक ही थे। ईश्वर निरपेक्ष सत्ता की उच्चतम अभिव्यक्ति है।''

स्वामी विवेकानन्द जी के अनुसार, ''जिसे सगुण ईश्वर कहते हो वह निर्गुण ईश्वर भी। हम लोग सगुणीकृत निर्गुण आत्माएँ हैं। यदि तुम इन शब्द का निरपेक्ष अर्थ में प्रयोग करते हो तब हम लोग निर्गुण हैं। तुममें से प्रत्येक विश्वात्मा है, प्रत्येक सर्वव्यापक है। पहले यह संशयपूर्ण प्रतीत हो सकता है, परन्तु मेरे लिए यह उतना ही असंदिग्ध है जितना तुम्हारे सम्मुख खड़ा होना।''

इसके अतिरिक्त स्वामी विवेकानन्द जी का यह भी कहना है कि– ''ईश्वर एक वृत्त है। जिसकी परिधि कहीं नहीं है और केन्द्र सर्वत्र है। उस वृत्त में प्रत्येक बिन्दु सजीव, सचेतन, सक्रिय और समान रूप से क्रियाशील है। हम सीमित आत्माओं में केवल एक बिन्दु सचेतन है और वह केन्द्र आगे–पीछे गतिशील रहता है। जिस प्रकार विश्व की तुलना में शरीर की सत्ता अत्यल्प है, उसी प्रकार ईश्वर की तुलना में समस्त विश्व कुछ नहीं है। जब हम कहते हैं, ईश्वर बोलता है तो इसका अर्थ है कि वह अपनी सृष्टि के माध्यम से बोलता है। जब हम उसका वर्णन उसे देश–काल से परे कहकर करते हैं, तब हम कहते हैं कि वह निर्गुण सत्ता है। किन्तु वह रहता है वही सत्।''

स्वामी विवेकानन्द जी प्रस्तुत विचार को निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया है ''हम यहॉ खड़े हैं और सूर्य को देख रहे हैं। कल्पना करो कि तुम सूर्य की ओर जाना चाहते हो। कुछ हजार मील उसके निकट पहुॅचने पर तुमको एक दूसरा सूर्य दिखायी पड़ेगा और अधिक बड़ा। मान लो तुम और अधिक निकट चले जाते हो, तब तुम और भी बड़ा सूर्य देखोगे। अन्त में तुम वास्तविक सूर्य देखोगे, करोड़ों मील विशाल। कल्पना करो कि तुम इस यात्रा को अनेक चरणों में विभाजित करके प्रत्येक स्थान से चित्र लेते हो और वास्तविक सूर्य का चित्र लेने के बाद वापस लौटकर सब चित्रों की तुलना करते हो। तब से सब तुमको भिन्न–भिन्न प्रतीत होंगे, क्योंकि प्रथम दृष्टि से वह एक छोटा लाल गोला था वास्तविक सूर्य करोड़ों मील विस्तृत था। यद्यपि सूर्य वहीं था। यही बात ईश्वर के संबंध में है। अनन्त सत्ता को हम भिन्न–भिन्न दृष्टि बिन्दुओं से, मन के भिन्न–भिन्न स्तरों से देखते हैं। निम्नतम मनुष्य उसे एक पितर के रूप में देखता है। जैसे–जैसे उसकी दृष्टि अधिक व्यापक होती है, वह उसे एक ग्रह के शासक के रूप में, और अधिक व्यापक होने पर विश्व के नियन्ता के रूप में तथा उच्चतम मनुष्य उसे अपने ही समान देखता है। ईश्वर वही था और भिन्न–भिन्न अनुभव केवल दृष्टि के परिणाम और भेद थे।''

स्वामी विवेकानन्द जी जब यूरोप में थे तब उनसे किसी ने प्रश्न किया था कि वेदान्त दर्शन में ईश्वर का क्या स्थान है? तब उस प्रश्न का उत्तर देते हुए स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा था कि– ''ईश्वर व्यष्टियों की समष्टि है, और साथ ही वह एक व्यष्टि भी है, ठीक उसी प्रकार जैसे कि मानव–शरीर इकाई होते हुए भी कोशिकाओं रूपी अनेक व्यष्टियों की समष्टि है। समष्टि ही ईश्वर है और व्यष्टि ही जीव है। अतएव ईश्वर का अस्तित्व जीव के अस्तित्व पर निर्भर है, जैसा कि शरीर का कोशिकाओं पर और इसका विलोम भी सत्य है। इस प्रकार जीव और ईश्वर सह–अस्तित्वमान है। यदि एक का अस्तित्व है, तो दूसरे का होगा ही और चूॅकि हमारी इस धरती को छोड़कर अन्य सब उच्चतर लोको में अच्छाई या शुभ की मात्रा बुराई या अशुभ की मात्रा से बहुत ज्यादा है। हम इन सबकी समष्टि–ईश्वर को सर्वशुभ कह सकते हैं। समष्टि रूप होने के कारण सर्वशक्तिमत्ता और सर्वज्ञता ईश्वर के प्रत्यक्ष गुण हैं, इन्हें सिद्ध करने के लिए किसी तर्क की आवश्वकता नहीं। ब्रह्म इन दोनों से परे है और निर्विकार है। ब्रह्म ही एक ऐसी इकाई है, जो अन्य इकाईयों की समष्टि नहीं –वह अखण्ड है, वह क्षुद्र जीवाणु से लेकर ईश्वर तक समस्त भूतों में व्याप्त है, उसके बिना किसी का अस्तित्व सम्भव नहीं, और जो कुछ भी सत्य है, वह ब्रह्म ही है। जब मैं सोचता हूॅ 'अहं ब्रह्माऽस्मि' तब केवल मैं ही वर्तमान रहता हूॅ मेरे अतिरिक्त और किसी का अस्तित्व नहीं रह जाता। यही बात औरों के विषय में भी है। अतएव प्रत्येक ही वही पूर्ण ब्रह्मतत्व है।''

उपर्युक्त कथनों के आधार पर हम यह स्पष्ट कर सकते हैं कि स्वामी विवेकानन्द आचार्य शंकर के समान ही सगुण ईश्वर की मान्यता का समर्थन करते हैं और विवेकानन्द जी कहते हैं कि– ''जब तक हमारा शरीर है, तब तक हम स्थूल जगत् की ओर दृष्टि किये हुए हैं, तब तक हमें सगुण ईश्वर को स्वीकार करना ही होगा। ऐसी अवस्था में ईश्वर को स्वीकार न करना निरा पागलपन है।''

साथ ही साथ स्वामी विवेकानन्द उपनिषदों के इन वाक्यों को भी सही मानते हैं कि ''यह ईश्वर है जिसके आदेश से वायु चलती है, अग्नि दहकती है, बादल बरसते हैं और मृत्यु पृथ्वी पर नाचती है।''

संदर्भ ग्रन्थ सूची

मजूमदार, श्री सत्येन्द्र नाथ —*विवेकानन्द चरित्र,* रामकृष्ण मठ, नागपुर
विवेकानन्द साहित्य —अद्वैत आश्रम मायावती अल्मोड़ा जन्मशती संस्कार
विवेकानन्द स्वामी — *कर्मयोग,* रामकृष्ण मठ, धन्तोली नागपुर
पाण्डेय, राम सकल —*विश्व के श्रेष्ठ शिक्षा शास्त्री,* विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
अन्वेशिका, रेडियन जर्नल आफ टीचर एजुकेशन

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,7-14**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 23 दिसम्बर 2016

मोहन राकेश के नाटकों में स्त्री पात्र

डॉ0 नमिता जैसल*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *मोहन राकेश के नाटकों में स्त्री पात्र* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *नमिता जैसल* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इस छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध प्रपत्र आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

हिन्दी नाट्य साहित्य में भारतेन्दु और प्रसाद के बाद यदि कोई नाम उभरता है तो मोहन राकेश का। वे एक कथाकार, निबन्धकार के साथ एक सफल नाटककार भी हैं। आधुनिक हिन्दी नाटक के विकास में उनका योगदान महत्वपूर्ण है क्योंकि उन्होंने हिन्दी नाटक को रोमांटिक भावबोध से मुक्त करके आधुनिक भावबोध से जोड़ा है। डॉ० नागरतना एन० राव के शब्दों में, ''राकेश जी ने नाटक के क्षेत्र में अपनी कलम इतनी शीघ्रता से चलाया कि अधिक नाटकों की रचना न करने पर भी वे नाटक क्षेत्र के मसीहा कहलाए।''[१]

मोहन राकेश ने पूरे तीन नाटक लिखे हैं– 'आषाढ़ का एक दिन' (१९५८), 'लहरों के राजहंस' (१९६३), और 'आधे–अधूरे' (१९६९) इन तीनों ही नाटकों में इनके नायक घर में लौटने के लिए विवश है, जो उनके लिए बिखरकर टूटकर पूरी तरह से अपरिचित हो गया है। ये नायक अपने परिवेश से कटकर स्वयं टूट चुके हैं। इस प्रकार इनके नाटकों में परिवेश से कटने और परिचित से अपरिचित होने में आधुनिकता का बोध उजागर होता है। दो विरोधी मूल्यों के बीच भटकना और उससे उत्पन्न तनाव झेलना भी आधुनिकता की पहचान है।

राकेश के संघर्षमय जीवन का प्रतिफलन उनकी रचनाओं में देखने को मिलता है। वे अपने जीवन में किसी भी बन्धन को स्वीकार नहीं करते इसीलिए उनके पात्र भी सभी बन्धनों से मुक्त हैं। लेकिन उनके सभी पात्र सदैव द्वन्द्वात्मक, तनावपूर्ण स्थिति में जीवन के बिखराव, टूटन को वहन करते हैं। उनके नारी पात्र तो सदा उलझन और विचारों के कशमकश में फँसी रहती है जिसके परिणामस्वरूप वे या तो सुन्दरी की भाँति के यथार्थ को स्वीकार नहीं कर पाती या आधे–अधूरे की सावित्री की भाँति घर में सूकून और सुख न मिलने पर शान्ति की खोज में भटकते हैं, या फिर मल्लिका की तरह भावना में भावना का वरण कर अवांछित जीवन व्यतीत करती है। गोविन्द चातक के शब्दों में, ''मोहन राकेश का लेखन एक दूसरे ध्रुवान्त पर नजर आता है। इसलिए नहीं उन्होंने अच्छे नाटक लिखे, बल्कि इसलिए भी कि उन्होंने हिन्दी नाटक को अंधेरे बन्द कमरों से बाहर निकाला और उसे युगों के रोमानी ऐन्द्रजालिक सम्मोहन से उबारकर एक नए दौर के साथ जोड़कर दिखाया।''[२]

* (पोस्ट डॉक्टोरल फेलो) हिन्दी विभाग (कला संकाय) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2017, एम0पी0ए0एस0वी0ओ0 मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहासंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

'आषाढ़ का एक दिन' मोहन राकेश का पहला और सर्वोत्तम नाटक है। यह नाटक ऐतिहासिकता का आश्रय लेते हुए आधुनिक और यथार्थवादी नाटक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक में दो प्रमुख स्त्री पात्र हैं– 'मल्लिका और 'अम्बिका' जो एक आधुनिक स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है, इसके अलावा प्रियंगुमंजरी, रंगिणी–संगिणी भी स्त्री पात्र हैं। 'मल्लिका' गाँव की एक सीधी–सादी, भावुक प्रेममयी भावना से युक्त लड़की है भावना में भावना का वरण करने वाली और कालिदास से अपने सम्बन्ध को और सब सम्बन्धों से बड़ा मानने वाली जिसकी केवल एक ही आकांक्षा है कालिदास के व्यक्तित्व को अधिक पूर्णरूप में देखने की।

मल्लिका कालिदास से प्रेम करती है। वह कालिदास के अतिरिक्त किसी और के बारे में नहीं सोचती है और स्वयं निर्णय लेने की आकांक्षा रखती है। इसलिए अम्बिका जब अग्निमित्र से उसके विवाह से सम्बन्धित बात करती है तो वह विवाह करने से मना कर देती है। मल्लिका को जब यह पता चलता है कि उसके और कालिदास के सम्बन्ध को लेकर अपवाद स्वरूप बातें हो रही है तो वह तीखे स्वर में विरोध करती है– ''मल्लिका का जीवन उसकी अपनी सम्पत्ति है। वह उसे नष्ट करना चाहती है तो किसी को उस पर आलोचना करने का क्या अधिकार है।''[३] मल्लिका यहाँ पर आधुनिक नारी का प्रतिनिधित्व करती है जो अपनी निर्णय लेने में स्वयं सक्षम है। मल्लिका और कालिदास को लेकर ग्राम प्रान्तर में अपवाद स्वरूप जो चर्चाएँ चलती हैं उससे मल्लिका को न तो दु:ख होता है न ही अपराध का अनुभव होता है। जबकि अम्बिका को इस अपवाद से दु:ख होता है, फिर भी मल्लिका कहती है– ''मैंने भावना से भावना का वरण किया है। मेरे लिए वह सम्बन्ध सब सम्बन्धों से बड़ा है। मैं वास्तव में अपनी भावना से प्रेम करती हूँ, जो पवित्र है, कोमल है, अनश्वर है...।[४]

मल्लिका कालिदास से प्रेम करती है लेकिन कालिदास के जीवन में कभी बाधा नहीं बनती और न ही किसी बन्धन में बाँधकर रखती है। बल्कि मल्लिका को जब यह पता चलता है कि उज्जयिनी का राज्य कालिदास को सम्मान करना चाहता है और राजकवि का आसन देना चाहता है तो वह प्रसन्न होती है। कालिदास को उज्जयिनी जाने के लिए प्रेरित करती है। ''यहाँ ग्राम प्रान्तर में रहकर तुम्हारी प्रतिभा को विकसित होने का अवसर कहाँ मिलेगा?''[५] मल्लिका के कहने पर कालिदास उज्जयिनी चला जाता है और जा करके वहीं का हो जाता है। गुप्त कुल की राज्यदुहिता प्रियगुमंजुरी से विवाह कर लेता है। कश्मीर का शासक बनने पर कालिदास जब ग्राम प्रान्तर आता है तो मल्लिका से मिलने नहीं आता केवल इसलिए कि कहीं यह प्रदेश, यहाँ की पर्वत श्रृंखलाएँ और उपत्यकाएँ एक मूक प्रश्न कर दे और एक भय यह भी कि कहीं मल्लिका की आँखें मन को अस्थिर न कर दे। इसलिए कालिदास वापस चला जाता है।

कालिदास की उपेक्षा उस अयाचित स्थिति को पैदा करती है जिसकी मल्लिका ने कभी कल्पना न की थी। मल्लिका उस विलोम का 'पत्नी' बनने को बाध्य होती है जिसे कभी वह 'अयाचित अतिथि मानती आई थी। आर्थिक रूप से स्वतंत्र न होने के कारण मल्लिका को अवांछित फैसले लेने पड़ते हैं अर्थात् मल्लिका को विलोम के साथ विवाह करना पड़ता है। फिर भी मल्लिका बाहर से टूटकर भी अन्दर से कालिदास से जुड़ी रहती है।

एक दिन वही कालिदास जब मल्लिका के द्वार पर लौट आता है तो नियति ही जैसे कविता रच डालती है। उसे पुरानी मल्लिका बदली हुई लगती है जिस पर वह अपनत्व और अधिकार की बात सोच नहीं सकता। कालिदास कहता है– ''मैंने नहीं सोचा था यह घर कभी मुझे अपरिचित भी लग सकता है। यहाँ की प्रत्येक वस्तु का स्थान और विन्यास इतना निश्चित था। परन्तु आज सब कुछ अपरिचित लग रहा है, और.....और तुम भी अपरिचित लग रही हो।''[६]

कालिदास मल्लिका से अपेक्षा करता एक आशा और विश्वास के साथ आता है कि सब कुछ वैसा होगा ज्यों का त्यों यथास्थान। लेकिन ऐसा नहीं होता। ऐसी अपेक्षाएँ स्वयं उससे भी तो मल्लिका कर सकती थी पर मल्लिका ऐसा नहीं करती है मल्लिका में जितना समर्पण भाव है, उतना ही आत्मविश्वास दृढ़ता और स्पष्टवादिता भी। अपने वर्तमान से गहरा असंतोष होते हुए भी वह उसमें जीती है। परिस्थिति ने मल्लिका को वारांगना बना दिया। फिर भी कालिदास के प्रति उसकी प्रेम भावना में कभी कोई अन्तर नहीं आया। इस प्रकार हम देखते हैं कि सारी विसंगतियों को झेलने के बावजूद मल्लिका में सामाजिक आदर्श के प्रति निष्ठा है यथाशक्ति वह जीवन में उसका पालन भी करती है। अगर मोहन राकेश के शब्दों में कहें तो –''मल्लिका का चरित्र एक प्रेयसी और प्रेरणा का ही नहीं भूमि में रोपित उस स्थिर आस्था का भी है जो ऊपर झुलसकर भी अपने मूल में निरोपित नहीं होती।''

'अम्बिका' एक कर्मशील आज की भौतिकवादी यथार्थ में विश्वास करने वाली महिला है। कर्मठ महिला होने के नाते स्त्री के सबल पक्ष का निर्माण करती है और जीवन में कभी पुनरावृत्ति नहीं चाहती है। मल्लिका और अम्बिका में भावना और यथार्थ का द्वन्द्व चलता है। जीवन को भावना न मानकर कर्म को मानने वाली अम्बिका को मल्लिका की 'भावना' से वितृष्णा होती है, उसे यह सब 'छलना' और आत्मप्रवंचना लगता है। वह समझ नहीं पाती कि 'भावना' से जीवन की आवश्यकता किस तरह पूरी होती है? अम्बिका कहती है – ''तुम जिसे भावना कहती हो वह केवल छलना और आत्म प्रवंचना है।....भावना में भावना का वरण किया है।....मैं पूछती हूँ भावना में भावनाका वरण क्या होता है? उससे जीवन की आवश्यकताएँ किस तरह पूरी होती है?''[७]

अम्बिका जीवन के प्रति यथार्थवादी दृष्टिकोण रखने वाली महिला है, मल्लिका की तरह भावना के स्तर पर नहीं जीती है। मल्लिका जब अम्बिका से कालिदास के बारे में बताती है राज्य उन्हें सम्मान दे रहा है। अम्बिका मल्लिका के बातों को सुनते हुए अनसुना कर देती है क्योंकि वह (अम्बिका) कालिदास को भली–भाँति जानती है– कालिदास एक आत्मसीमित व्यक्ति है। संसार में अपने सिवा उसे किसी से मोह नहीं है। मल्लिका से भी कहती है– ''यदि वास्तव में उसका तुमसे भावनाका सम्बन्ध है, तो वह क्यों तुमसे विवाह नहीं करना चाहता है?''[८]

अम्बिका जब मल्लिका से विवाह करने के बारे में बात करती है तो मल्लिका अपने माँ को समझाते हुए कालिदास के अभाव–ग्रस्त और साधन–हीन जीवन के बारे में बात करने लगती है। ऐसी स्थिति में विवाह की कल्पना भी नहीं की जा सकती है पर अम्बिका मल्लिका को समझाते हुए कहती है जब राज्य उसे राजकवि का सम्मान दे रहा है तो उसका जीवन अभावग्रस्त और साधनहीन कहाँ रहेगा। अम्बिका कहती है– ''किसी सम्बन्ध से बचने के लिए अभाव जितना बड़ा कारण होता है, अभाव की पूर्ति उससे बड़ा कारण बन जाती है।''[९]

अम्बिका में मातृ हृदय की करूणा, पीड़ा, वात्सल्य, सहानुभूति, कठोरता, आक्रोश और कडुवाहट विद्यमान है। मल्लिका के प्रति उसके मन में करूणा सहानुभूति तो है लेकिन भावनामय समर्पण को देखकर उसके मन में आक्रोश पैदा होता है। अम्बिका हमेशा से ही इसका विरोध करती है। गोविन्द चातक के शब्दों में– ''जीवन की कविता के विरोधी रंग लिए हुए अम्बिका उस मौन जिन्दगी का प्रतिनिधित्व करती है जहाँ गहरे कुएँ में पड़े लोटे की तरह शब्द मुँह से बहुत नीचे उतर गए हैं। उसकी अनुभूति–प्रवणता के नुकीले छोर बढ़ी उम्र और जागतिक स्थितियों के संघातों से खड़े हो चुके है। माँ के शब्द कार्पण्य के बीच मल्लिका जीवन की कविता को मुक्त छन्द की तरह जीती है।''[१०] राजमहिषी प्रियंगुमंजरी ग्राम प्रान्तर में मिलने आती है और मल्लिका से प्रश्न करती है– ''क्यों तुम्हारे मन में कल्पना नहीं कि तुम्हारा अपना घर–परिवार हो? तो अम्बिका सहसा फूट पड़ती है : इसके मन में यह कल्पना नहीं है क्योंकि यह भावना के स्तर पर जीती है। यहाँ पर अम्बिका अपने आक्रोश को रोक नहीं पाती है और अपने आक्रोश को व्यंग्य के माध्यम से व्यक्त कर देती है। जिससे मल्लिका तड़प उठती है; किन्तु उससे भी बड़ी उसकी अपनी है जिसके शब्द गले में अटक जाते हैं। यहीं कालिदास का दोहरा व्यक्तित्व साफ नजर आने लगता है।''[११]

प्रियंगुमंजरी के व्यक्तित्व में अभिजात्य वर्ग के दर्प, संस्कार, विनम्रता, कुशलता, व्यावहारिक शिष्टता भी है। इसके साथ ही वह सत्ता वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। प्रियंगु जब ग्राम प्रान्तर में आती है तो यहाँ के वातावरण के इकट्ठा करने के नाम पर पत्थर, वनस्पति, जन्तु आदि एकत्र करती है, मातुल के परिवार को साथ ले जाना, मल्लिका के सामने घर के परिसंस्कार करने का प्रस्ताव रखना और फिर अपने राज्य कर्मचारियों में से तुम (मल्लिका) जिसे अपने योग्य समझो विवाह कर लो। प्रियंगु की यह सब बातें कहीं न कहीं सत्ता वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है– ''इसीलिए वह मल्लिका की आन्तरिक भावनाओं को पकड़ नहीं पाती है। वह जिस प्रकार कृत्रिम साधनों से कालिदास के अभावों को भरना चाहती है उसी प्रकार की कृत्रिम क्षतिपूर्ति मल्लिका के जीवन में करना चाहती है।''[१२]

प्रियंगु निरन्तर अपना महत्व दिखाते हुए अपना प्रयोजन सिद्ध कर लेना चाहती है लेकिन ऐसा नहीं होता है, और अंत में ग्रामीण सादगी और अनन्यता के आगे पराजित होकर एक खिसियाहट के साथ अपने झूठे महत्व को बनाए रखते हुए चली जाती है।

रंगिणी–संगिणी ऐसी स्त्री पात्र है जिसमें प्रतिभा के चूक जाने पर भी कलाकार बने रहने का मोह है। दोनों ग्राम–प्रान्तर का अध्ययन करने के लिए आती है तो मल्लिका से अपना–अपना परिचय देती है– रंगिणी उज्जयिनी के नाट्य केन्द्र में नृत्य का

अभ्यास करती है। संगिणी उसी केन्द्र में मृदंग और वीणा सिखाती है और बहुत सुन्दर प्रणय गीत लिखती है।

नेमिचन्द्र जैन के शब्दों में– ''नाट्य रूप की दृष्टि से 'आषाढ़ का एक दिन' संगठित यथार्थवादी नाटक है जिसमें वाह्य ब्योरे की बातों से अधिक परिस्थिति के काव्य को अभिव्यक्त करने का प्रयास है। इस दृष्टि से हिन्दी का पहला यथार्थवादी नाटक है जो वाह्य और आंतरिक यथार्थ को उनकी समन्विति में उनके अन्तर्द्वन्द्व को और प्रस्तुत करता है।''[१३]

'लहरों के राजहंस' मोहन राकेश का दूसरा नाटक है। इस नाटक में पौराणिक ऐतिहासिक तथ्य के आधार पर आधुनिक जीवन की विडम्बना को दर्शाया गया है। इस नाटक में कपिलवस्तु के राजा नन्द के बौद्ध भिक्षु बनने और उनकी पत्नी सुन्दरी के रूप गर्व और यौवन की आकर्षक कथा है। इस नाटक में द्वन्द्व का दो स्तरों पर संचरण होता है। नन्द और सुन्दरी उसके केन्द्र हैं। नन्द एक निश्चित निर्णय लेने में असमर्थ है। उसका मन एक ओर जीवन के प्रति आसक्ति की ओर खींचता है तो दूसरी ओर जीवन के प्रति विरक्ति की ओर ले जाता है। नन्द की पत्नी सुन्दरी को इस बात का पता नहीं लेकिन उसे इस बात का गर्व है कि उसका सौन्दर्य प्रभावशाली होने के कारण उसका पति कभी उससे विरक्त नहीं हो सकता। आज महाराजा सिद्धार्थ बुद्ध बन रहे हैं, उस समय वह यशोधरा पर व्यंग्य करते हुए कहती है कि– ''यदि स्त्री का आकर्षण पुरूष को पुरूष बनाता है तो उसका अपकर्षण उसे गौतम बुद्ध बना देता है।''[१४] यहाँ पर सुन्दरी के कहने का तात्पर्य यह है कि यशोधरा के सौन्दर्य में उतना आकर्षण नहीं है इसलिए उसके पति ने दीक्षा ली। इस तरह सुन्दरी में अपने सौन्दर्य का गर्व है और उसे अपने पति पर विश्वास है कि वह कभी भी बुद्ध की तरह नहीं होगा। क्योंकि उसे अपनी पत्नी का सौन्दर्य सांसारिक जीवन की ओर खींचेगा।

प्रस्तुत नाटक में प्रमुख स्त्री पात्र 'सुन्दरी' है। सुन्दरी एक अनन्त सौन्दर्य सम्पन्न, आत्माभिमान से भरी अनन्य विश्वास से युक्त नारी है। इसी विश्वास के कारण वह यह मानकर चलती है कि नन्द कभी भी उससे गौतम बुद्ध की भाँति निरासक्त नहीं हो सकता। उसका पति सदा उसके पास रहेगा। सिद्धार्थ जब गौतम बुद्ध बन जाते हैं तो वह सिद्धार्थ को नहीं यशोधरा की आकर्षणहीनता को दोषी ठहराते हुए उस पर व्यंग्य करती है– ''नारी का आकर्षण पुरूष को पुरूष बनाता है तो उसका अपकर्षण उसे गौतम बुद्ध बना देता है।''[१५]

एक तरफ सुन्दरी को अपने रूप सौन्दर्य पर इतना विश्वास है कि नन्द उससे कभी निरासक्त नहीं हो सकता है। पर दूसरी ओर बुद्ध को देखकर नन्द के मन में द्वन्द्व उत्पन्न होता है। उसे अपना जीवन निरर्थक सा लगता है। नन्द भी इस सांसारिक मोह–माया से विरक्त होना चाहता है किन्तु वह निर्णय नहीं कर पा रहा है कि वह क्या करे? सुन्दरी कामोत्सव का आयोजन उसके व्यक्तित्व उसकी कामना, विश्वास और दर्प को व्यक्त करता है।

सुन्दरी जब कामोत्सव का आयोजन करते समय सोचती है– व्यक्ति को जीवन की विरक्ति के अपेक्षा आसक्ति ज्यादा आकर्षित करती है। उसी समय ताल से राजहंसो का जोड़ा उड़कर कहीं और चले जाते हैं और सुन्दरी को इस बात पर बहुत आश्चर्य होता है। वह कहती है– ''क्या उनके पंखों में इतनी शक्ति रही होगी, अपनी इच्छा के अनुसार उड़कर कहीं चले जाते? जिस ताल में इतने दिनों से थे उसका अभ्यास उसका आकर्षण क्या इतनी आसानी से छूट सकता था।''

सुन्दरी को जब यह पता चलता है कामोत्सव के आयोजन में बहुत कम अतिथि आयेंगे तो उसका विश्वास टूटता है साथ ही स्वाभिमान उभरता है। तब वह नन्द से कहती है– ''मेरे उत्सव में लोग अनुरोध करने से आएँ, इससे उनका न आना ही अच्छा है और दो व्यक्तियों के आने न आने से क्या अन्तर पड़ता है?''[१६]

सुन्दरी यह जानते हुए भी यशोधरा भिक्षुणी के शिविर में जाने वाली है और सबसे मिलने वाली है। फिर भी कामोत्सव का आयोजन उसी दिन रखती है और कामोत्सव का आयोजन टालना भी नहीं चाहती है, यह उसके व्यक्तित्व का प्रश्न है। सुन्दरी आर्य मैत्रेय से कहती है– ''कामोत्सव कामना का उत्सव है, आर्य मैत्रेय ! मैं अपनी आज की कामना कल के लिए टाल रखू.....क्यों? मेरी कामना मेरे अन्तर की कामना है। मेरे अन्तर में ही उसकी पूर्ति भी हो सकती है। बाहर का आयोजन उसके लिए उतना महत्व नहीं रखता जितना लोग समझ रहे हैं।''[१७]

गोविन्द चातक के शब्दों में– ''सुन्दरी की वैचारिक चेतना पुष्ट नहीं है। इसीलिए उसकी चेतना में विकृत मानसिक प्रतिक्रियाएँ और पूर्वाग्रह जुड़े है। ये उस आत्म–प्रवंचना के भाव से ग्रस्त करते है जो जीवन का निषेधात्मक मूल्य है। इन्द्रिय स्तर पर जीने वाली नारी स्वकेन्द्रित होने के नाते सचेतन चुनाव नहीं कर पाती।''[१८]

किसी का अटल विश्वास खासतौर से किसी नारी का विश्वास जब टूट जाता है तो वह भीतर से हताहत होकर रह जाती

है। वह इतनी टूट जाती है कि उसका जीवन ही उलझकर रह जाता है। जैसे सुन्दरी को अपने रूप सौन्दर्य पर आकर्षक शक्ति पर भ्रमपूर्ण गर्व था कि नन्द कभी भी उससे विरक्त नहीं हो सकता। लेकिन कोई किसी को जबरदस्ती बाँधकर नहीं रख सकता। किसी व्यक्ति के मन में किसी के प्रति प्यार की भावना विवशता से नहीं जगाई जा सकती। यह तो सहज स्व से स्वत: मन में जागृत होती है। नन्द भी सुन्दरी के रूप–पाश में सदा के लिए नहीं बँध पाता। उसके मन में उठे द्वन्द्व से अन्तत: बाहर निकलकर सुन्दरी के प्रति आसक्ति से विरक्त होकर भिक्षु बन जाता है।

सुन्दरी ने कभी इस बात की कल्पना भी न की थी नन्द भी कभी उसके प्रेम–बन्धन से मुक्त होने का प्रयास करेगा। नन्द जब सचमुच भिक्षु बनकर केश कटवाकर उसके सामने आता है तब वह उसे पहचान नहीं पाती है। नन्द के भिक्षुक बन जाने से सुन्दरी के अहम् को गहरी चोट पहुँचती है। यह उसकी सौन्दर्य शक्ति का भी अपमान है। उससे सुन्दरी के विश्वास पर घोर कुठाराघात होता है। जिससे वह टूटकर बिखर जाती है।

सुन्दरी आत्म–प्रवंचना के भाव से ग्रसित जीवन जी रही है जो जीवन का निषेधात्मक मूल्य है। इसके साथ ही उसमें अहम् की प्रबलता है। जिसके कारण वह सह–शुभ (बिग विद अदर्स) बनकर रहने की अपेक्षा व्यक्तित्वहीन इकाई बनकर रह जाती है। सुन्दरी उस प्रकार व्यक्तित्व से सम्पन्न है जिसे कीर्केगार्द ने 'ऐस्थेटिक' के अन्तर्गत रखा है। यह बच्चे के स्तर पर जीना है जिसमें वह अयथार्थ उड़ाने भरता है। सुन्दरी जीवन के प्रति अपूर्ण दृष्टि रखती है जिसे वह पूर्ण समझकर जीती है। इसलिए जितना तीव्र उसका मोह है। उतनी ही बड़ी चोट खाती है। कीर्केगार्द के शब्दों में– ''जब सुख की पुकार बहुत आग्रह– पूर्ण होती है तो हृदय में दु:ख भी तीव्रता से जागता है।''[१९]

'आधे–अधूरे' मोहन राकेश के अन्य दो नाटकों की अपेक्षा एक अलग तरह का नाटक है। जिसमें आधुनिकता बोध को स्वच्छन्द रूप में प्रस्तुत किया गया है। जबकि राकेश जी के अन्य दोनों नाटकों में ऐतिहासिकता का आश्रय लेकर आधुनिकता को प्रस्तुत किया गया है।

'आधे–अधूरे' उसे विवाहित कामकाजी सावित्री की कहानी है जो स्वच्छन्द विचारों वाली होने के साथ तीन बच्चों की माँ है। सावित्री के आय से घर का गुजारा होता है। इसका पति बेकार है, एक बेटा है जो न पढ़ने में मन लगाता है और न कहीं नौकरी करना चाहता है, उसका केवल एक ही काम है माँ पर ताने कसना। सावित्री की दो बेटियाँ है– बड़ी बेटी (बिन्नी) का विवाह हो गया है लेकिन उसका दाम्पत्य जीवन सुखमय नहीं है। छोटी बेटी (किन्नी) तेरह साल की ही है पर अभी से जुबान कैंची की तरह चलती है, उसे बड़ों का लिहाज करने तक की तमीज नहीं है और हमेशा बड़े भाई से लड़ती रहती है। इस प्रकार सावित्री और महेन्द्रनाथ का घर तनाव से घिरा है। सावित्री कमाती है और घर के पुरूष (पति और बेटा) निकम्मे घर बैठकर उसी का नुक्स निकालते रहते हैं, इसलिए सावित्री उन्हें देखकर चिढ़ती है। वह (सावित्री) महेन्द्रनाथ को एक अधूरा मानती है क्योंकि उसका अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं है। उसे जब भी कोई काम करना होता है तो हमेशा दोस्तों की सलाह से ही करता है। महेन्द्रनाथ को न घर की फिक्र है और न ही घर चलाने की चिन्ता। उसकी इसी कमी के कारण सावित्री अन्य पुरूषों जैसे– जुनेजा, जगमोहन आदि के प्रति आकर्षित होती है।

गिरीश रस्तोगी के शब्दों में– ''आधे–अधूरे हिन्दी नाट्य साहित्य में नितान्त भिन्न प्रकार का महत्वपूर्ण नाटक है और आज की समकालीन संवेदना का नाटक है। पहले दोनो नाटकों में ऐतिहासिक आवरण में आधुनिक संवेदना को व्यक्त किया गया था, लेकिन इसमें इतिहास के परिवेश से अपने को मुक्त करके सीधे सामाजिक परिवेश और आज के कटु यथार्थ को नाटक का आधार बनाया गया है।''[२०]

इस नाटक में प्रमुख स्त्री पात्र सावित्री है। सावित्री एक कामकाजी आधुनिक विचारों वाली नारी है और आर्थिक रूप से स्वतंत्र है जिसके कारण वह अपने निर्णय लेने में स्वतंत्र है। सावित्री नौकरी करके परिवार को घर को किसी तरह चलाती है। महेन्द्रनाथ नकारा है, काफी दिन पहले किसी व्यापार में सारा धन गवां बैठा है। आत्मविश्वास खो चुका है। आर्थिक रूप से निर्भरता जहाँ उसे अन्दर से दुर्बल कायर बना रही है वहाँ तीखा और कटु भी।

सावित्री और महेन्द्रनाथ दोनों एक दूसरे से इतने असंतुष्ट है फिर भी वे साथ रहने को विवश है। दोनों को एक–दूसरे के साथ न रहते बनता है और न साथ छोड़ते, उनके जीवन की डोर कट गई है, उसे जोड़ा नहीं जा सकता। यदि उसे जोड़ा भी जाए तो उसमें गाँठ पड़ सकती है। परिवार की इस अव्यवस्था का कारण सावित्री और महेन्द्रनाथ दोनों है। सावित्री को महेन्द्रनाथ

हमेशा ही एक दब्बू, दूसरो पर निर्भर रहने वाला व्यक्ति लगा, जिसका अपना कोई व्यक्तित्व नहीं। वह कहती है– ''आदमी होने के लिए क्या जरूरी नहीं कि उसमें अपना एक मादा, अपनी एक शख्सियत हो? जब से मैंने उसे जाना है, हमेशा हर चीज के लिए उसे किसी न किसी का सहारा ढूँढते पाया है। यही नहीं लगता है वह खुद एक आदमी का आधा चौथाई भी नहीं है।''[२१]

महेन्द्रनाथ एक निरा आधा–अधूरा आदमी है जबकि वह समझती है। आदमी अपना घर बसाता है अंदर के अधूरे–पन को भरने के लिए। इसलिए सावित्री पूरे वायदे के साथ पूरा आदमी चाहती है जो दूसरों के साँचे के अनुसार न ढलता रहे, दूसरों पर भरोसा करके न जिए और हमेशा कसौटी न तलाशे। लेकिन ऐसा नहीं होता है। इस अभावजनित मानसिक असंतोष में वह महेन्द्रनाथ से कटती चली जाती है और अपने निकम्मे, व्यक्तित्वहीन पति के प्रति खीझ से भरी, घर की टूटती बिखरती जिन्दगी से ऊबकर पूरे आदमी की खोज में अन्त तक भटकती है। इसी कारण वह अलग–अलग अधूरे आदमियों से टकराती है। अपना जीवन अपनी ही तरह से जीने के लिए सिंघानिया, जुनेजा, मनोज, जगमोहन सभी से आशा करती है। अपने घुटन को खत्म करने के इरादे सोचती है– ''मेरे पास बहुत साल नहीं है जीने को। पर जितने है उन्हें मैं इसी तरह निभाते हुए नहीं काटूँगी। मेरे कहने से जो कुछ हो सकता है था इस घर का, हो चुका आजतक, मेरी तरफ से अब अन्त है उसका निश्चित अन्त।''[२२]

सावित्री अपने अधूरेपन को दूर करने के लिए, अपनी जिन्दगी अपने तरीके से जीने के लिए अपना घर परिवार छोड़कर पुरूष तीन (जगमोहन) के साथ जीने का निर्णय ले लेती है और चली भी जाती है। वह पुरूष तीन से कहती हैं– मैं वहाँ पहुँच गयी हूँ जहाँ पहुँचने से डरती रही हूँ जिन्दगी भर।[२३] सावित्री को जगमोहन अपनाने से इन्कार कर देता है। वह फिर से निराश –हताश भाव से उसी घर में लौट आती है जिसमें वह रहने के लिए विवश है। सावित्री को हर जगह अधूरापन मिलता है। बल्कि उसे लगता है, सबके सब.....सब के–सब.....एक से बिल्कुल एक से है आप लोग अलग–अलग मुखौटे, पर चेहरा?.....चेहरा सब का एक ही। आक्रामक स्त्री जब प्रतिस्पर्धा करती है तो पुरूष की श्रेष्ठता को स्वीकार नहीं कर पाती और जब उसे प्रतियोगिता के अयोग्य पाती है तो भावात्मक सुरक्षा के लिए पूरे आदमी की तलाश आवश्यक हो जाती है।

सावित्री उस मध्य वित्तीय मानसिकता की शिकार है जो धन को जीवन के अतिरिक्त महत्व देती है। यही वृत्ति उसे विभिन्न पुरूषों से जोड़ती है और इसी के वशीभूत होकर वह अपनी देह का अस्त्र की तरह प्रयोग करती है, और अपने वैयक्तिक लक्ष्यों के लिए वह अपने को व्यक्ति से वस्तु बना डालती है। इसी से वह अपने को छलती है जिस पूरेपन की तलाश उसे अपने अन्दर करनी चाहिए थी, उसकी तलाश वह अपने से बाहर औरों से करती है। इस तलाश में उसे वे सब पुरूष अधूरे दिखाई देते हैं, जिनके सम्पर्क में वह आती है।

सावित्री और महेन्द्रनाथ दोनों समानान्तर रेखाओं की तरह कभी मिल नहीं पाते हैं। इसका कारण है दोनों का टूटन। सावित्री के टूटने का कारण है महेन्द्रनाथ और महेन्द्रनाथ के टूटने का कारण है सावित्री। दोनों के जीवन में दो अंधेरे बन्द कमरे हैं जिनसे वे बाहर निकलना चाहकर भी निकल नहीं पाते।

राकेश के शब्दों में, ''अपनी परिस्थिति के लिए व्यक्ति अकेला जिम्मेदार नहीं होता क्योकि स्थितियाँ कुछ भी होती, उसे बार–बार चुनाव करना पड़ता है। जिन्दगी में व्यक्ति कुछ भी चुने उसमें एक विशेष 'आइरनी' होती है, क्योंकि परिस्थितियाँ फिर वही बन जाती हैं।''[२४]

सावित्री का व्यक्तित्व नारी स्वतंत्रता या 'वुमन लिव' के मूल्य से प्रेरित है। वह पुरूष की सह–यात्री तो हो सकती है परन्तु नितान्त समर्पिता या पुरूष के अतियों का सदैव कष्ट ढोने वाली नारी नहीं। इसलिए सावित्री का व्यक्तित्व मल्लिका तथा सुन्दरी की भावना, आत्मयन्ता से कहीं अधिक सबल बन पड़ा है।

पति–पत्नी के बीच की दरार, घर के वातावरण को भी निरन्तर तोड़ती रहती है। उन दोनों का आपसी व्यवहार नफरत और कलह बच्चों के मन–मस्तिष्क को बराबर प्रभावित करती रहती है। उनकी मानसिकता, व्यवहार उसी के असर में जाती है। इसीलिए सब एक–दूसरे से कटे रहते हैं, कटे हुए ही नहीं बल्कि एक दूसरे को सहन कर पाना भी उनके लिए असम्भव है। इसी वजह से विषाक्त वाक्य का प्रयोग करते हैं, तनाव में रहते हैं चिढ़ और कुढ़न में बोलते हैं।

बड़ी लड़की बिन्नी अपनी ही माँ के प्रेमी के साथ घर से भाग जाती है विवाह कर लेती है, लेकिन सन्तुष्ट नहीं होती है। उसे लगता है उन दोनों के बीच छोटी–छोटी बातें अड़चने बनती जा रही हैं और मन के अन्दर एक गुबार सा भरा रहता हो। ऐसा क्यों है? वह स्वयं नहीं जानती वह कहती है– ''वजह सिर्फ वह हवा है जो हम दोनों के बीच से गुजरती है।''[२५]

बड़ी लड़की बिन्नी को विवाहित जीवन में उसे कोई आत्मीयता नहीं दिखायी देती है इसीलिए उसके मन में प्रश्न उठता है– ''ऐसा भी होता है क्या....कि दो आदमी जितना साथ रहे, एक हवा में साँस ले, उतना ही ज्यादा अपने को एक दूसरे से अजनबी महसूस करें।'' पर बिन्नी इतना अवश्य समझती है कि ''मैं इस घर से ही अपने अन्दर कुछ ऐसी चीजे लेकर गयी हूँ जो किसी भी स्थिति में मुझे स्वाभाविक नहीं रहने देती।''[२६]

सावित्री दोहरे पाटों में जीती है। एक घर के भीतर, दूसरा घर के बाहर। सावित्री को घर में पति और बच्चों की देख– भाल की चिन्ता करनी है। बाहर अपने बाँस से अच्छे सम्बन्ध बनाए रखने है सिर्फ अपने बेटे की नौकरी के लिए पर पुरूषों से सम्बन्ध रखना न उसके बेटे को पसन्द है न पति को; सावित्री जानती है कि आज का जमाना सिफारिश और पैसों का है इसीलिए वह अपने बाँस सिंघानिया से सिफारिश करती रहती है। सिफारिश की त्रासदी ही यह है कि घर में दो पुरूषों के रहने के बावजूद उसे ही बाहर के आदमियों से निपटना पड़ता है। सावित्री के निमंत्रण पर घर आये मेहमानों का बेटा अशोक मजाक उड़ाता है तो पति घर से गायब रहता है। बेटा मजाक उड़ाने के साथ–साथ अपनी ममा को उलाहना देता है– ''मुझे नहीं चाहिए नौकरी कम से कम उस आदमी के जरिये हरगिज नहीं।''[२७] वह तंग आकर एक दिन बेटे से कह देती है– अगर उसे यह पसन्द नहीं तो आज से वह उसके लिए कोशिश करना बन्द कर देगी।

इस प्रकार सावित्री के व्यक्तित्व साथ–साथ उसके पति और बच्चों के अधूरेपन से परिवार का वातावरण विषाक्त है और उसके सम्बन्धों में असहनीय कड़वाहट व्याप्त है। सावित्री आधुनिक शिक्षित नारी के असंतुलित मन का प्रतिनिधित्व करती है। मोहन राकेश आधुनिक नाटककार है जिनके नारी पात्र स्वतंत्र व्यक्तित्व रखते हैं। वे अपने आप में स्वतंत्र होने के बावजूद मानसिक द्वन्द्व से ग्रस्त रहती है। इसी उलझन में वे अनिर्णय की स्थिति से गुजरते हुए बिखर जाती है या परिस्थितियों से समझौता करने पर मजबूर हो जाती है। राकेश जी के नाटकों में नारी पात्रों की विशेषता इस प्रकार दृष्टिगोचर होती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

[१]राव, नागरतना एन० –*साठोत्तर हिन्दी नाटकों में नारी,* न्यू भारतीय बुक कारपोरेशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण २००१, पृष्ठ संख्या ६७

[२]चातक, गोविन्द –*आधुनिक हिन्दी नाटक का अग्रदूत : मोहन राकेश,* राधाकृष्णन प्रकाशन, प्रथम संस्करण २००३, पृष्ठ संख्या १३

[३]राकेश मोहन –*आषाढ़ का एक दिन,* राजपाल एण्ड सन्स प्रकाशन पुनर्मुद्रित, २००७, पृष्ठ संख्या १२

[४]वही, पृष्ठ संख्या १३

[५]वही, पृष्ठ संख्या ४४

[६]वही, पृष्ठ संख्या ९७

[७]वही, पृष्ठ संख्या १३

[८]वही, पृष्ठ संख्या २४

[९]वही, पृष्ठ संख्या २४

[१०]चातक, गोविन्द –*आधुनिक हिन्दी नाटक का अग्रदूत : मोहन राकेश,* राधाकृष्णन प्रकाशन, प्रथम संस्करण २००३, पृष्ठ संख्या ४८

[११]वही, पृष्ठ संख्या ५०

[१२]वही, पृष्ठ संख्या ५०

[१३]राकेश मोहन –*आषाढ़ का एक दिन,* राजपाल एण्ड सन्स प्रकाशन पुनर्मुद्रित, २००७, पृष्ठ संख्या ५६

[१४]रस्तोगी, गिरीश –*हिन्दी नाटक का आत्मसंघर्ष,* लोकभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण, २००२, पृष्ठ संख्या १४२

[१५]राकेश मोहन –*लहरों के राजहंस,* राजकमल प्रकाशन, संस्करण, २००७, पृष्ठ संख्या ६०

[१६]वही, पृष्ठ संख्या ७६

[१७]वही, पृष्ठ संख्या ७८

[१८]चातक, गोविन्द –*आधुनिक हिन्दी नाटक का अग्रदूत : मोहन राकेश,* राधाकृष्णन प्रकाशन, प्रथम संस्करण २००३, पृष्ठ संख्या ८३

[१९]*मिथ ऑफ सिसिफस,* पृष्ठ संख्या ९८

[२०]रस्तोगी, गिरीश —*हिन्दी नाटक का आत्मसंघर्ष,* लोकभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण, २००२, पृष्ठ संख्या १६४

[२१]राकेश मोहन —*आधे—अधूरे,* राधाकृष्णन प्रकाशन, पुनर्मुद्रित, २००७

[२२]वही

[२३]वही, पृष्ठ संख्या ६९

[२४]चातक, गोविन्द —*आधुनिक हिन्दी नाटक का अग्रदूत : मोहन राकेश,* राधाकृष्णन प्रकाशन, प्रथम संस्करण २००३, पृष्ठ संख्या १०२

[२५]राकेश मोहन —*आधे—अधूरे, राधाकृष्णन प्रकाशन,* पुनर्मुद्रित, २००७, पृष्ठ संख्या २०७

[२६]वही, पृष्ठ संख्या २८

[२७]वही, पृष्ठ संख्या ४१

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,15-19**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 06 दिसम्बर 2016

तुलनात्मक साहित्य : हिन्दी और मलयालम साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन-प्रारम्भिक प्रयास पुराना भाव व नया अर्थ

डॉ0 रमा पद्मजा वेदुला*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *तुलनात्मक साहित्य : हिन्दी और मलयालम साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन-प्रारम्भिक प्रयास पुराना भाव व नया अर्थ* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *रमा पद्मजा वेदुला* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इस छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध प्रपत्र आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

''तुलनात्मक साहित्य'' भारतीय भाव जन्म से पुराना होने पर भी प्रयोग आधुनिक है। हमने कई अंग्रेजी शब्दों का अध्ययन किया है, उनकी संकल्पना का अमूर्त रूप हमने समझ लिया है। जब उनको अपनी भाषा में प्रस्तुत करना पड़ता है तब पूर्ण संकल्पना का काफी हिस्सा अंदाज से या परिचय से अपनाते हैं। भारतीय भाषा में उसका शब्दानुवाद करते हैं। यह अनुवाद भाषा भाषा में बदलता है, जैसे- अंग्रेजी शब्द 'Culture' के लिए हिन्दी में 'संस्कृति', मलयालम में 'संस्कारम्'।

इसी प्रकार अंग्रेजी के कंपेरेटिव लिटरेचर 'Compartive Literature' का हिन्दी में ''तुलनात्मक साहित्य शब्द और मलयालम में 'तारतम्य साहित्यम्' प्रयुक्त है।

जादवपुर विश्वविद्यालय; सन् 2156 में जादपुर विश्वविद्यालय में कम्पेरेटिव लिटरेचर का विभाग प्रारम्भ हुआ। वर्षों तक यह लोकप्रिय नहीं रहा। गत दस वर्षों में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की कृपादृष्टि से कई विश्वविद्यालयों में 'तुलनात्मक साहित्य' के विभाग या केन्द्र को विषय के रूप में मान्यता आदि विभिन्न स्तरों पर इसको स्थान मिलता आया है।

इस पृष्ठभूमि में साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन के प्रारम्भिक स्वरूप पर प्रकाश डालना उचित रहेगा। यहाँ केरल में हिन्दी एवं मलयालम साहित्य के तुलनात्मक अध्यन तक सीमित चर्चा समीचीन होगी।

केरल में हिन्दी अध्ययन; केरल और हिन्दी की कुछ विशेषताओं का परिचय इस समस्या को समझने में सहायक रहेगा। हिन्दी अध्ययन के विषय में केरल हिन्दी प्रदेश की अपेक्षा एक प्रकार से कमजोर है तो दूसरी दृष्टि से अधिक गहन

* हिन्दी विभाग, आचार्य नागार्जुन विश्वविद्यालय, गुनटूर (आन्ध्र प्रदेश) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक 2017, एम0पी0ए0एस0वी0ओ0 मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहासंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

व अधिक तटस्थ हैं। औसत शिक्षित केरलीय नर-नारी सहज की मलयालम भाषा बोलते हैं। मलयालम शताब्दियों से संस्कृत से प्रभावित रही है। करीब साठ फीसदी शब्द तत्सम है। मलयालम में मणिप्रवालम नामक धारा करीब 5 सदियों से चलती है, जो अन्य द्राविड़ी भाषाओं में इतनी प्रबल नहीं है। केरल में अंग्रेजी का दबदबा रहा है। अतः साहित्यिक रूचि रखनेवाले अधिकांश केरलीय, खासकर 20वीं शताब्दी के केरलीय, अंग्रेजी भाषा व साहित्य से परिचित है। यों तीन-तीन भाषाओं के जानकार केरलीय जब हिन्दी भाषा खासकर हिन्दी साहित्य सीखने लगे तब उनके मन में इन दोनों भाषाओं के तुलनात्मक विश्लेषण की प्रवृत्ति उठी तो अचरज नहीं। आज भारत भर में फैले केरलीय अच्छी हिन्दी बोलते हैं।

केरलीय साहित्यकारों पर अंग्रेजी का प्रभाव; 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं 20वीं शताब्दी में केरल के मलयालम साहित्यकार अंग्रेजी के कवियों, नाटककारों और कथाकारों से अत्यंत प्रभावित थे। इसलिए आधुनिक मलयालम काव्य पग-पग पर अंग्रेजी के रोमांटिक काव्य का अनुवर्ती रहा है। सर वाल्टर स्कॉट की देश-प्रेम की कविताएँ एवं ऐतिहासिक उपन्यास केरलीय उपन्यासकारों के मार्गदर्शक रहे। ऐसी प्रवृत्ति अत्यन्त व्यापक हुई थी। मलयालम साहित्य के अध्ययन का दृष्टिकोण यूँ तुलनात्मक होने लगा था।

हिन्दी के दो पहलू; अब हिन्दी भाषा और साहित्य के सामन्य स्वरूप की भी एक झाँकी अपेक्षित है। हिन्दी जब केरलीयों का अध्ययन विषय बनी तब उसके दो पहलू थे- 5. राष्ट्रीय, 5. साहित्यिक। दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा ने हिन्दी की जो पाठ्य पुस्तकें संकलित की थीं उनके संकलन का मुख्य ध्येय देश-प्रेम वे राष्ट्रीय भावना पाठकों के मन में भरना है। अंग्रेजी पाठ्य पुस्तकों के सम्पादकों ने भारतीयों को निकम्मा और अंग्रेजों को सकल गुण खान दिखाने का कार्यक्रम जान-बूझकर चलाया था। इसको चुनौती देते हुए पाठक के अंतर्मन में भारतीयता के प्रति गर्व उत्पन्न करना हिन्दी पाठ्य ग्रंथों का ध्येय था।

साहित्यिक स्तर पर हिन्दी साहित्य और मलयालम साहित्य दोनों भारत के ग्रंथरत्न रामायण, महाभारत आदि की विषय-वस्तु पर अपनी रचनाओं के महल खड़ा करते थे। इसके अलावा बंगला के अनुवाद से एवं मौलिक रचनाओं से हिन्दी साहित्य ने नव-जागरण के प्रतीक के रूप में अनेक नई रचनाएँ दीं। ये मलयालम के लिए बिलकुल अपरिचित एवं स्वागत योग्य रहीं। यही कारण है कि एक छोटी अवधि में मलयालम साहित्य में हिन्दी कथा वाङ्मय के अनुवाद की बाढ़-सी आई।

जहाँ तक प्राचीन साहित्य के खासकर काव्य के ग्रंथ थे, उसका विषय अन्य भारतीय भाषाओं के भी काव्य का विषय था। यह शत-प्रतिशत की बात नहीं रही। उदाहरणार्थ- भक्ति साहित्य पूरे भारत की विरासत है। आगे प्राचीन काव्यशास्त्रों का चित्रण भी सारी भारतीय भाषाओं में समान रहा। इसलिए प्राचीन हिन्दी साहित्य और प्राचीन मलयालम साहित्य को जोड़नेवाले कई सूत्र मिल गए।

व्यावहारिक पक्ष; केरल के आधुनिक हिन्दी साहित्य युग के अध्येताओं में मैं भी एक रहा हूँ। हम लोग हिन्दी की उच्च परीक्षाओं की सीढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ते स्नातकोत्तर उपाधि पा सके। प्रगति-प्रेमी युवकों के मन में भौतिक जीवन में प्रगति पाने की इच्छा सहज थी। आगे की उपाधि पी-एच0डी0 की थी। हम लोगों की सीमाएँ और विवशताएँ थीं, जिनके बावजूद हम लोग डॉक्टरेट करना चाहते थे। उन दिनों हिन्दी प्रदेश में दूरदर्शी और दयालू हिन्दी आचार्य थे। प्रतिष्ठित पुराने विश्वविद्यालयों में कुछ लकीर के फकीर रहे। कुछ आचार्य भारतीय हिन्दी साहित्य के भावी निर्माताओं का सपना देखते रहे। उनके सौजन्य से दक्षिण के हिन्दी प्राध्यापकों में से कुछ लोग इन उत्तरीय हिन्दी विभागों में शोधार्थ पहुँचे। उन आचार्यों ने सोचा कि ये दक्षिणी प्राध्यापक छात्र अपनी भाषाओं के श्रेष्ठ साहित्य कापरिचय हिंदी क्षेत्र के साहित्य-प्रेमियों को दें तो कई लाभ होंगे।

हिन्दीतर भाषी और हिन्दी साहित्य

1. हिन्दी क्षेत्र के लोग स्वयं अन्य भाषा सीखे बिना ही हिन्दीतर भाषी लोगों के अनुवाद व अध्ययन से अन्य भाषाओं

के साहित्य का गहन ज्ञान पा सकेंगे।

2. हिंदी के माध्यम से पूरे भारत का साहित्य सुलभ बनेगा और भावात्मक एकता का उपाय सुलभ होगा।
3. हिन्दी साहित्य के अध्ययन की नई दिशाएँ खुलेंगी, नई शैलियाँ जन्म लेंगी। सामान्य जन के विषय में एक बात उल्लेखनीय है। अंग्रेज ईस्ट इण्डिया कम्पनी और बाद में ब्रिटिश सरकार ने अंग्रेजी भाषा व साहित्य के अध्ययन-अध्यापन का विशाल मैदान खोल दिया। इसके फलस्वरूप करोड़ों लोग अपने आप अंग्रेजी साहित्य के हिमायती हो गए।

20वीं शताब्दी में हिन्दी को राष्ट्रीयता के क्षेत्र में जो वरीयता मिली उसके कारण पूरे भारत में हिन्दी प्रदेश और हिन्दीतर प्रदेश में शिक्षा-प्रेमी बालक-बालिका और युवक-युवती हिन्दी भाषा पढ़ते रहे। हिन्दी अब सम्पूर्ण भारत में जानी-पहचानी जाती है।

तुलनात्मक अध्ययन की कमी

यूँ तो तुलनात्मक अध्ययन दक्षिण के हिन्दी अनुसंधान का प्रमुख विषय बन गया। इन दिनों जो तुलनात्मक साहित्य प्रचलित था उसके मुकाबले में तुलनात्मक अध्ययन इतना वैज्ञानिक नहीं हो सका था। तुलनात्मक अध्ययन के लिए विषय का चयन साहित्यिक प्रवृत्तियों और साहित्यकार व्यक्तियों के आधार पर किया जाता था। इसकी गहराई व तर्कसंगति पर बड़ी सूक्ष्म दृष्टि नहीं डालते थे, फिर भी नया क्षेत्र होने से जो भी नई जानकारी हम दे सकते थे, वह महत्वपूर्ण रहती थी। तुलनात्मक साहित्य जो भी नई जानकारी हम दे सकते थे, वह महत्वपूर्ण रहती थी। तुलनात्मक साहित्य के प्रारम्भिक अनुसंधान के दिनों सहज ही पक्के और सुलभ विषयों पर हमारी नजर जाती थी। जहाँ तुलना के कुछ बिन्दु मिले उनसे संतुष्ट रहे। इसकी कमी को बाद में हमने पहचाना भी था।

वर्तमान तुलनात्मक साहित्य के चार प्रमुख अंग हैं- 1. काव्य रूप (Genre), 2. विषय-वस्तु (Thenatology), 3. इतिहास (History), 4. प्रभाव/ संबंध (Influence)।

मैंने पहले ही स्पष्ट किया है कि उक्त धाराओं का ज्ञान उन दिनों नहीं के बराबर था। पश्चिम में तुलनात्मक साहित्य की जड़ धीरे-धीरे जम रही थी। जो भी पुस्तकें थीं वे जर्मन, फ्रेंच, रूसी आदि में थीं। अंग्रेजी में अमेरिका में कुछ पुस्तकें छपती थीं। परन्तु भारतीय अंग्रेजी विद्वानों को तुलनात्मक साहित्य की पश्चिमी संकल्पना से परिचय बाद में ही प्राप्त हुआ। अतः हिन्दी साहित्य क्षेत्र के प्रारम्भिक तुलनात्मक अध्ययन को आधुनिक कसौटी मे कसना पूर्णतः सफल नहीं होगा। फिर भी समान्यतः हम कह सकते हैं कि मुख्यतः विषय-वस्तु (Thenatology) और प्रभाव (Influence) ही तुलनात्मक साहित्य के क्षेत्र रहे थे।

विषय वस्तु की बात पहले लेंगे। केरल के अनुसंधानित्सुओं ने दो कोटियों के विषय लिये- 5. प्राचीन भक्ति साहित्य, 5. आधुनिक साहित्य। प्रकाशित शोध-परिचयों के आधार पर बताया जा सकता है कि भक्ति साहित्य को ही अनुमानतः प्रथम स्थान दिया गया। मलयालम में 15वीं व 16वीं शताब्दी में दो प्रमुख कवि हुए थे- 4. तुंचतु रामानुजन एशुत्तच्छन और 5. चेरू मेरी नंपूतिरि। इनका पूरा-पूरा नाम बताना जरूरी है। आजकल नामों के प्रथमाक्षर का प्रयोग अंग्रेजी में किया जाता है। उसके अनुसार हमारे भारतीय प्राचीन कवियों का नाम बताना हास्यास्पद रहेगा।

मैंने एशुत्तच्छन और चेरू मेरी को कवि ही बताया। कारण यह है कि तुलसीदास और सूरदास जितनी मात्रा में भक्ति रसमय थे उतनी मात्रा में एशुत्तच्छन व चेरू मेरी को भक्ति रसमय कहना उचित नहीं लगता। उनके प्रति सम्मान की भावना बिल्कुल कम नहीं है। परन्तु वैयक्तिक जीवन के विषय में एशुत्तच्छन व चेरू मेरी के विषय में थोड़ी-सी अधूरी जनश्रुतियों को छोड़कर अन्य प्रमाण नहीं मिलते। तुलसी और तुंचन के रामायण तुलना के विषय हैं। तुंचन के हरिनाम कीर्तन आदि दो-तीन अन्य स्तोत्र ग्रंथ भी हैं। इसके सिवा उनके राम-भक्तिपरक काव्य नहीं के बराबर है। तुलसी तो राममय ही रहे। मानस के अलावा 'कवितावली', 'विनयपत्रिका', 'रामलला नहछू', 'जानकी मंगल' आदि कई रामकाव्य तुलसी ने रचे। उनका व्यक्तिगत जीवन भी भक्ति-विरागपूर्ण था। इस पृष्ठभूमि में तुलसी और तुंचन की तुलना का आधार सीमित हो जाता है। हिन्दी साहित्य में भक्तिकाव्य युग के ऐतिहासिक विवेचन में निर्गुण-सगुण का विभाजन मिलता है। सगुण की दो

शाखायें मिलती हैं- रामभक्ति व कृष्णभक्ति। ये भक्तिकवि कुछ मठों या सम्प्रदायों से जुड़े भी रहे। किंतु केरल में भक्ति काव्य का मठ या सम्प्रदाय से सम्बन्ध नहीं रहा। पड़ोसी तमिलनाडु में वैष्णव सम्प्रदाय और शैव सम्प्रदाय का उद्भव एवं विकास हुआ। दोनों सम्प्रदायों के वारिस अब भी वहाँ है। इस अंतर के कारण हिन्दी भक्ति साहित्य और मलयालम भक्ति साहित्य के परम्परागत पक्ष की चर्चा सीमित रह जाती है।

केरल के विषय में हमने सही अनुभव किया कि तुंचत्तु रामानुजन एशुत्तच्छन के प्रति केरलियों की श्रद्धा तुलसीदास के प्रति हिन्दी भाषियों की श्रद्धा से कम नहीं रही। इसलिए कई केरलीय हिन्दी अनुसंधानित्सुओं ने विभिन्न शीर्षकों से एशुत्तच्छन और तुलसीदास के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन किया। एशुत्तच्छन मलयालम में जितने शोध ग्रंथ रचे गए, करीब उतनी ही संख्या हिन्दी में तुलनात्मक शोध प्रस्तुत किए गए। यह केरलीय हिन्दी-प्रेमियों के लिए गर्व की विषय है। ऐसे कुछ शोध प्रबंधों के नाम दिये जाते हैं- 1. तुलसीदास तथा मलयालम के रामभक्त कवि एशुत्तच्छन का तुलनात्मक अध्ययन, 2. तुंचत्तु रामानुजाचार्य एवं गोस्वामी तुलसीदास के रामकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन, 3. हिन्दी और मलयालम के रामकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन।

इन भक्ति परक तुलनात्मक अध्ययनों की एक सराहनीय विशेषता यह रही थी कि अनुसंधानी अपने व्यक्तिगत धार्मिक चिंतन को अनुसंधान में बाधक बनने नहीं देते थे।

इन दोनों भाषाओं के रामकाव्य का विस्तृत वर्णन इन शोध प्रबंधों में हो सका। इन दोनों भाषाओं के रामकाव्यों का सामान्य आधार संस्कृत का बाल्मीकि रामायण रहा। वैसे मलयालम में रामायण का छंदोमय अनुवाद भी हुआ है। किंतु तमिश भाषा में रामायण के जितने रूपान्तर हुए उतने मलयालम में नहीं। 'कंब रामायणम्' कर मलयालम काव्य पर प्रभाव एक अच्छा शोध विषय है। डॉ0 पद्मनाभन तंपी ने यह शोध करके उत्तम प्रबंध प्रस्तुत भी किया है।

आगे कृष्ण काव्य की बात आती है। सबसे पहले उल्लेखनीय बात है कि श्रीकृष्ण कवियों व कथाकारों साहित्यिक सृजन की जितनी सम्पदा दे सके उतनी श्रीराम नहीं दे सके। किंतु तुलनात्मक अध्ययनकार को कम सामग्री मिली है। केरल में हिन्दी और मलयालम के कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन शोध उपाधि की दृष्टि से सर्वप्रथम करने का श्रेय स्व0के0 भास्करन नायर को है, जो यूनिवर्सिटी कॉलेज, तिरूअनंतपुरम् में हिन्दी विभागाध्यक्ष रहे। उन दिनों की और व्यक्तिपरक सीमाओं के भीतर उन्होंने सराहनीय कार्य किया था।

हिन्दी का कृष्ण काव्य आकार में बड़ा व्यापक रहा है। अष्टछाप के कवियों का विशाल सागर-सा विस्तृत काव्य है। हिन्दी प्रदेश का मुख्य तीर्थ ब्रजभूमि कन्हैया की लीलाओं से पवित्र रही। 15वीं-16वीं शताब्दी से लेकर 19वीं शताब्दी तक श्रीकृष्ण लीलागान हिन्दी में होता रहा है। प्रारम्भ का कृष्णकाव्य साम्प्रदायिक एवं दार्शनिक तत्त्वों से गहरा रहा। एक युग के बाद कृष्णकाव्य में माधुर्य भावना का अतिरेक हो गया। मीरा के जीवन ने कृष्णकाव्य को एक नव जीवन-सा दिया। महाप्रभु चैतन्य के शिष्यों ने एक नया भक्ति दर्शन रूपायित किया। प्रसंगवश बताऊँ कि वर्तमान अमेरिकी श्रीकृष्ण सम्प्रदाय का मार्गदर्शन इसी से होता है। 19वीं-20वीं शताब्दी में समसामयिक चिंतन का रंग देने का प्रयास भी रहा है। इतना विस्तृत कृष्णकाव्य केरल में समसामयिक चिंतन का रंग देने का प्रयास भी रहा है। इतना विस्तृत कृष्णकाव्य केरल में नहीं रहा। यहाँ प्राचीन काल में कृष्णगाथा हुई, जो लगभग 15वीं-16वीं शताब्दी की थी। यह एक कथा काव्य था। उसमें कथा-प्रसंगों के अनुसार भक्तिरस भी था। रामकाव्य के कवि एशुत्तच्छन की भक्ति तीव्रता के मुकाबले में कृष्णगाथा की भक्ति कम रही है। कृष्णकाव्य की विकास-गाथा में नंबियार का 'श्रीकृष्ण चरितम्' मणिप्रवालम (जो सामान्य स्तर का है) आता है। आगे कथकलि एवं तुल्लल नामक दृश्य-श्रव्य काव्य के क्षेत्र में इस विषय को अधिक महत्व दिया गया। इसके भक्ति पक्ष को भी महत्व मिला। परन्तु मलयालम और हिन्दी के कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन बहुत कम लोगों ने किया।

शोध की दृष्टि से भक्ति काव्य अब केरल के छात्रों व अध्यापकों का प्रिय नहीं रहा। लोग सरलीकरण की प्रक्रिया मे भक्ति काव्य का पाठ्यक्रम में स्थान निरंतर कम करते जा रहे हैं। इन दिनों कई कारणों से केरल में हिन्दी अनुसंधान के क्षेत्र में प्राचीन साहित्य को उचित महत्व नहीं दिया जाता।

संदर्भ ग्रंथ

ऐतिहासिक उपन्यास-तुलनात्मक अध्ययन -डॉ0 श्री नारायण भरद्वाज
सामाजिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन -डॉ0 के0के0 रूपनाथन
स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी और तमिल के उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन -डॉ0 श्रीधरन
स्वातंत्र्योत्तर पूर्व हिन्दी उपन्यासों का कनक भाषा से तुलनात्मक अध्ययन -डॉ0 अजय कुमार
हिन्दी उपन्यास की शितजविधी -डॉ0 श्रीमती ओम शुक्ल
कन्नड़ साहित्य का नवीन इतिहास -डॉ0 सिद्ध गोपाल

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,20-25**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 05 जनवरी 2017

संत रमइया की प्रगतिशील चेतना

डॉ0 सच्चिदानन्द द्विवेदी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *संत रमइया की प्रगतिशील चेतना* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र का लेखक मैं *सच्चिदानन्द द्विवेदी* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैंने शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

अघोर सन्त रमइया बाबा का जन्म चन्दौली जिला के चकिया तहसील के कुसहाँ ग्राम में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था, जो उत्तर प्रदेश की अन्तिम सीमा पर पूर्वांचल में स्थित है। यहीं से बिहार प्रान्त की सीमा प्रारम्भ होती है। इसके उत्तर में धरौली ग्राम, दक्षिण में खखड़ा, पश्चिम में जेंगुरी और पूर्व में बिहार प्रान्त का जिगिना गाँव है। कुसहाँ गाँव से एक मील की दूरी पर उन्होंने उन्नीडीह नामक स्थान पर अपनी कुटिया बनाई थी। उस स्थान पर उन्होंने एक मन्दिर का निर्माण कराया था। मन्दिर के समीप एक कुआँ और एक तालाब इन्हीं का बनवाया हुआ जो अब भी मौजूद है। मन्दिर और कुटिया का ध्वंशावशेष पाया जाता है, जो बहुत पहले ही भू-गर्भ में विलीन हो चुके हैं। मन्दिर की कुछ टूटी-फूटी मूर्तियाँ एक पीपल के पेड़ के नीचे पड़ी हुई हैं। बहुत दिनों से वह स्थान अपनी गरिमा का प्रदर्शन करते हुए सुन-सान पड़ा था। करीब 40 वर्ष से रामनवमी के दिन उनकी यादगार में एक मेला प्रति वर्ष चैत्रमास शुक्ल पक्ष की नवमी और दशमी तिथि को लगता आ रहा है। सन् 1986 ई0 में समीपवर्ती गावों की जनता के प्रयास से उस पीपल वृक्ष के तले एक बड़ा-सा पक्का चबूतरा लोहे की मोटी छड़ों से घिरा हुआ, निर्मित कराया गया है। जिसके ऊपर एक छोटा-सा सिंहासन बनाकर उन्हीं मूर्तियों को जो आज भी अपने अतीत का प्रदर्शन कर रही हैं, रख दिया गया है। उसी गाँव के एक ब्राह्मण (जो रमइया के वंशज हैं) द्वारा उन मूर्तियों की पूजा आदि हो रही हैं।

अघोर संत रमइया का नाम हिन्दी साहित्येतिहास में क्यों नहीं है। यह सोचनीय विषय है, जब कि आपने लगभग आधे भारत का भ्रमण किया मथुरा, काशी, अयोध्या बेतिया बिहार, पश्चिमी उत्तर प्रदेश के अन्यान्य स्थानों पर आपकी शिष्य परम्परा के लोग है। आप सिद्ध होते हुए भी दीन के बीच रहना पसन्द करते थे। आपके जीवन के विषय में कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता है, किन्तु कुछ अप्रमाणित पुस्तकों और पारिवारिक सदस्यों तथा भक्तों के द्वारा दी गयी सूचना के अनुसंधान से यह सिद्ध होता है कि आपका जन्म, 1809 ई0 के आस-पास था। पूर्वाञ्चल की माटी से उत्पन्न रमइया एक ऐसे साधक है जिन्हें न तो संत माना गया और न ही भक्त या कवि ही आप तत्कालीन समाज में व्याप्त जितनी भी कु-रीतियाँ

* (पोस्ट डॉक्टोरल फेलो) हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2017, एम0पी0ए0एस0वी0ओ0 मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहासंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

थी, सबसे लड़े राजाश्रय तो आपको प्राप्त था किन्तु इनके गुणों के कारण राजा कभी खुश नहीं रहते थे। यही कारण है कि आप द्वारा विपुल साहित्य की रचना के बाद भी आपका साहित्येतिहास में कहीं भी नाम नहीं है। इसके लिए तत्कालीन परिस्थितियाँ भी जिम्मेदार थी। अट्ठारहवीं शताब्दी 1809 ई0 से 1869 के बीच में देश की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक रूप से एक बिखराव का समय था।

तत्कालीन सामाजिक स्थिति यह थी कि राज्य प्रशासन कई हाथों में बिखरा हुआ था। प्रथम शासक ईस्ट इण्डिया कम्पनी इनके नीचे राजा, राजाओं के नीचे जमींदार और जमींदारों के लठैतों का शासन चलता था, कर भी इसी प्रकार वसूल होते थे। सर्वत्र हत्या बलात्कार, लूट-खसोट का बोलबाला था। समाज में पंचायते हुआ करती था, जो बलिष्ट वर्ग के पक्ष में निर्णय दिया करती थी। पर्दा प्रथा, स्त्री उत्पीड़न छुआछूत आदि चरम पर विद्यमान था राजाओं और उनके सामंतों को सिर्फ कर वसूल कम्पनी को देने के बाद भोग विलास से मतलब था।

राजनैतिक स्थिति यह थी कि देश स्वतन्त्र होने के लिए धीरे-धीरे सुलग रहा था। 1771 ई0 में तत्कालीन काशी राज चेत सिंह द्वारा अपनी माँ पन्ना रानी के सानिध्य में विद्रोह का विगुल फूँका जा चुका था। जिसे बड़ी कठिनाई से दबाया जा सका। तमाम सामाजिक संस्थाएँ जन्म ले रहीं थी प्रार्थना समाज ब्रह्म समाज दयानन्द सरस्वती जैसे समाज सुधारक राजनीति की दिशा मोड़ने के लिए शनैः शनैः प्रयासरत थे।

आर्थिक रूप से देश पूरी तरह जर्जर हो चुका था देश की विपुल सम्पदा अंग्रेजों द्वारा लूटकर अपने देश का खजाना भरा जा रहा था। उपज का 10 प्रतिशत हिस्सा भी उत्पादनकर्त्ता के पास नहीं बचता था। देश की 98 प्रतिशत जनता नंगी एवं भूखी रहती थी।

सांस्कृतिक दृष्टि से राष्ट्र पतन की ओर अग्रसर था। देश में ब्रिटिश जहाँ ईसाई थे, वही मुसलमान सामन्त भी उनके नीचे अपना दमन चक्र चलाते थे, और केन्द्रीय स्तर पर द्वन्द्व न होने से ये सिर्फ लूट-मार बेगार कराने आदि में लिप्त थे, किन्तु समाज सुधारकों के जन्म और देश की रक्षा के लिए एक वर्ग कर्त्तव्य पथ पर आगे बढ़ रहा था।

हिन्दी साहित्य में अंग्रेजों की शिक्षा पद्धति प्रभावी हो रही थी। राजा शिव प्रसाद सितारेहिन्द राजा लक्ष्मण सिंह तथा फोर्टविलियम कालेज अपना प्रभाव छोड़ रहे थे, किन्तु रमइया पर इन सब बातों का कोई असर नहीं था। क्योंकि सामान्य जन के बीच श्री राम चरितमानस की चौपाइयाँ गायी जाती, जिसका प्रभाव रमइया पर भी पड़ता था और आप भी दोहा चौपाई में रचना करते थे।

''मातु पिता बालक कै बानी। बिनहिं बिचार सुनहिं सुख मानी।। जस कछु करम करै तसु गावै। राम नाम मिलि शोभा पावै।। क्रमशः कथा मोहिं नहिं शोभा। कसबी बिबस मोर मति छोभा।। जैसे साधु सुजस नित गावै। कुपथ कर्म सब दूर बहावै।। पंडित बेद कहै जस बाता। तेहि तजि बाहर घर नहिं लाता।। चेतन कविता उलटा गावै। ज्ञानी ता कहँ दोष लगावै।। अघी कुपात्र पतित जो कैसेहु। हरि जस भूले कहै अनैसहुँ।। उनका जानहिं हरि जस कैसन। करहिं कुकरम लखहिं पुनि तैसन।। बधि तिनकर गुन गहि अघसागहिं। हरि जस बिसै मिलै अनुरागहिं।।''

(दोहा)- 'मोंहिं न उर निज करम लखि दूसन देइहि कोय। शुभ गुन साधन त्याग सब प्रिय लागत नित जोय।।'

इन विषम परिस्थितियों में भी भारतीय संस्कृति अपने प्रतिरोधात्मक गुणों के कारण आन्तरिक रूप से सदैव दृढ़ रही। सात सौ वर्षों तक मुस्लिम क्रूर शासन के पश्चात् भी सनातन धर्म अपने स्थान पर अक्षुण्य रहा। प्राचीन वेद काल से ही एक ऐसी संत परम्परा विद्यमान थी। जिसके चमत्कारों और यौगिक ताकत के समक्ष सत्ता को झुकना पड़ता था। ये संत अद्भुत चमत्कारिक सिद्धियों से युक्त थे। हम बौद्धकालीन कुछ सम्प्रदायों की विक्रितियों को छोड़ दें तो उसके पश्चात् कबीर के समय से ही स्थापित वेदकालीन व्यवस्था में उत्पन्न कु-प्रथाओं का पुरजोर विरोध होने लगा था, ये संत अन्य धर्मों की कु-प्रथाओं पर भी चोट करते थे। संत रमइया में जहाँ कबीर की भाँति तीव्र विरोध है तो वहीं तुलसी की भक्ति भी विद्यमान है।

ऐसी संक्रमणकालीन स्थिति में रमइया ने अपने चमत्कार प्रदर्शन देशाटन एवं समाज बहिष्कृत जनों को प्रोत्साहित करने के साथ-साथ साहित्य धर्म का भी निर्वाह कर रहे थे। अघोर संत रमइया को वैष्णवमार्गी कहा जाता था। अघोर का अर्थ

संत परंपरा में ऐसे संत से की जाती है जो छुआ-छूत जाँति-पाति, धर्म, सम्प्रदाय आदि का भेद नहीं करता अपनी साधनाओं में मांस, मदिरा आदि को निषिद्ध नहीं मानता श्यामशान में अराधना करता है। भोजन में मनुष्य से लेकर विष्टा तक का परहेज नहीं करता किन्तु रमइया ऐसे साधक नहीं थे, आप एक समाज सुधारक संत की भाँति समस्त सिद्धि का उपयोग सामान्य जन हितार्थ करते हैं और समाज के बहिष्कृत लोगों के बीच में ही ज्यादा रहना पसंद करते हैं।

(छन्द)- ''हिन्दू मजहम गुरुनहीं मिला क्या दोजख व सुरवा ना खाया। संत समागम किया बन्दगी क्या हम किये नहिं छाया।। धन धाम बस नाम तजे पुनि देश-विदेश बहुत धाया। नाम एक सों है अनेक सुनि दास दीन आशा लाया।। अपनी गुनाह करि दंड सहैं क्या राम नाम सो रोष किया। ईश पैगम्बर या खोदाय हम घर-घर बेचत नाम जिया।।''

(दोहा)- 'एकै नाम अनेक है ह्यौ अनेक फिर एक। दास दीन जेहि पकड़िये जुग-जुग टरै न टेक।।'

रमइया की घुमक्कड़ प्रवृत्ति और दीन-दुखिया के बीच रहने और उन्हीं की पीड़ा को समझने के कारण आपमें राजाज्ञा के प्रति विद्रोह प्रह्लाद की तरह सत्य परीक्षा और यह सिद्ध करने का प्रयास की कोई कमजोर नहीं है।

''हम तब पतित बचन ते भाखे। मम बालक सो सब करि राखे।। सीय राम मय सब जग जाने। फिरि-फिरि घर-घर नहिं हम खाने।। करम धरम जप तप करि लेखा। तीरथ-बरत साधु सुचि बेषा।। आश्रम जाति पाँति सब गाये। सब दुःख हरत नाम ठहराये।। बचनन्ह कहि-कहि सबहि सुनावा। करम-धरम हम जाहि नसावा।। मम बालक सहि जग उपहासी। राम नाम बल धरमहि नासी।।''

(दो0)- 'लोक लाज मरजाद तजि, तीरथ ब्रत अरु जोग। नाचत चहु दिशि नाम बल, कसबी के संग भोग।।'

वर्णाश्रमधर्मी लोगों द्वारा स्वधर्म के न पालन करने पर रमइया उनको दुत्कारते हैं कि आप सभी अपने-अपने धर्म का पालन करते तो आज देश और समाज की यह दुर्गति न होती।

'बेद प्रमान न पंडित पावै। ताते कृष्ण न तेहिं मनभावै।। लोक लाज तजि देखहिं जोई। काम अस ब्रज भयो न कोई।।'

'तिनहिं मिले कीन्हें बहु हाँसी। जे कुल कानि लाज सब नासी।। बन्द प्रेम जिन्ह घर नहिं चीन्हा। आपु ते सरस कृष्ण तेहि कीन्हा।।'

(छन्द)- ''गुरु शुरु साध बेद बिध जुग-जुग प्रताप सब बिधि माने। हम राम नाम तजिया खोदाय ईशा पैगम्बर नहिं जाने।। सोइबचन सुनत नित आश लाए टेरत हित लखि मनमति साने। दूसर हम किससे जाय कहैं सच्चा दिल सूरत नहिं आने।। जिनके बल केत्ता करि गुनाह नित करम धरम कछु नहिं माने। संतोष शांति नहिं मिलत मनोरथ सदा बेकार मन क्यों ताने।।''

बाह्याडम्बर का विरोध

रमइया के दोहों एवं चौपाईयों में बाह्याडम्बर, भेष-भूषा का जगह-जगह पर तीव्र विरोध का स्वर दिखायी पड़ता है।

(दोहा)- 'अशुभ बेष-भूषण अशुभ भक्ष अभक्षहिं खाय। लोक वेद बाहर भय महादेव हरषाय।। राम नाम सब धर्म मय तेहि शिव सुमिरन कीन्ह। आदि अनादि न जात कोई मत पथ काहू न चीन्ह।।'

पूजा पद्धति का विरोध

हिन्दू और मुस्लिम धर्म में जो पूजा पद्धति के नाम पर सामान्य जन के ऊपर शोषण और अत्याचार किया जाता था। जाति और धर्म के नाम पर छुआ-छूत अस्पृश्यता का बोलबाला था उसका रमइया घोर विरोध करते थे क्योंकि जो समाज

पद्धतियों का पोषण करता था। नेपथ्य में वह इन्हीं कु-प्रवृत्तियों में लिप्त था, लेकिन वह स्वयं को न देख दूसरों पर आक्षेप करता था।

(छन्द)- 'पूजै सबै आशा लिये छुवा न तिनका खाय। सत कोटि रामायन कहै लिय राम नाम बराय।।'

'दृढ़ गहै जो हरि नाम के तिनके छुवै नहिं लोग। पूजै तिन्हैं करि कपट तिन्ह से चहत सब सुख भोग।।'

तत्कालीन वर्णधर्मियों द्वारा संस्कार छोड़ने पर उनको दुत्कारना

जिस प्रकार संत परम्परा में कविताओं के माध्यम से अपने संदेश प्रचार का माध्यम जैसे कबीर ने प्रारम्भ किया उसी प्रकार रमइया ने भी तत्कालीन समस्याओं पर प्रकाश डालने में तनिक भी संकोच नहीं किया है।

'ब्राह्मण धरम करम सब छोड़े। क्षत्री गिरहस्ती सब गोड़े। वैश्य शूद्र मरजादा लीन्हें। आपन धरम उहौ नहिं चीन्हें।।'

'करि कुकरम जौ राखहि गोई। जनमि-जनमि जुग-जुग दुख रोई।। हम कुकरम करि आपन गवली। तेहिकर फल हम सबविधि पवली।।'

(छन्द)- ''पाये उचित फल दंड जस कछु अधम करनी करि लहै। भोगत सो हँसि-हँसि रोय गाय बजाय दुख कासे कहैं।। जानत सो करुना सिन्धु आरत बन्धु नित पतितन चहैं। कह दास दीन दयाल तुलसी शांति मति गति कब लहैं।।''

(दोहा)- 'हम गरजी अरजी करैं दरद बूझि मम नाथ। कुमति कुतर्क कुचाल हरि अब मोहिं करहु सनाथ।'

निरपेक्ष दृष्टिकोण

रमइया की रचनाओं में नाथपंथ वेदान्त या वैष्णवमत, सूफी मत सभी के कुछ न कुछ अंश देखने से यह प्रतीत होता है कि ये किसी एक सम्प्रदाय विशेष से नहीं बँधे थे बल्कि एक स्वतन्त्र विचारक थे जिस मत का इन्हें जो अच्छा लगता था उसी को ये अपने कविता में गढ़ दिया करते थे।

'छन्द लोक बेद विरुद्ध बेष बनाय पहँ जाय। मानत सबै कोइ छुवत नहिं रह दूर मन हरषाय।।'

'तम रूप सब कोई हँसत सोई शिव नाम न जान। करनि लहत फल आपने तव शत्रु सबै नसान।।'

(दोहा)- ''राम नाम जाना चहै शिव से करु पहिचान। अवघर दानी नाम है मत पथ कोई नहिं जान।। अवढर ताको कहत है बिन सेवा ढरि जाय। मौज न ताको लखि परै पूजि-पूजि मरजाय।''

समन्वयवादी दृष्टिकोण

रमइया तुलसीदास से भी प्रभावित थे और तुलसी जी समन्वयवादी चेतना के साथ-साथ गरीबी और अस्पृश्यता के साथ जाति, भेद और धर्म में सब गरीबी में भूल जाता है। तत्कालीन जनता की अकाल गरीबी और बेरोजगारी का वर्णन करते हैं

'त्राहि-त्राहि सरन-सरन दीनबन्धु,/ पाहि-पाहि पतित बार-बार टेरैं।'

'दास दीन कासे दुख रोय हाल कहैं,/ गहैं नाम के प्रताप सुने बात तेरी हेरैं।।'

समाज सुधारक रूप

रमइया के पदों से यह स्पष्ट होता है कि ये सगुण राम के उपासक नहीं है, बल्कि राम शब्द एक प्रकार से साधना पूर्ति का मार्ग है रामकृष्ण ब्रह्म आदि सब अपनी सांसारिक लीलाओं करते हुए नष्ट हो गये किन्तु इनके नाम अविनाशी है। सबने इस लोक में आकर अपने महत् का कार्य को सम्पादित करने के उपरान्त नष्ट हो गये, वे चाहे ईसा हो चाहे पैगम्बर चाहे

गिरजाघर में रहे सभी राम के ही स्वरूप है। यह विचारधारा संतों की है जो सूफी संत इस्लाम के प्रभाव में थे। वे भी यह मानने को विवश थे कि ईश्वर एक है और यह ऐकेश्वरवादी परम्परा परम् ब्रह्म को स्वीकार करती है।

''रामहिं ब्रह्म कहै सब साँचा। मानुष तन धरि बहु विधि नाचा।। कृष्ण ब्रह्म चिन्मैं अविनाशी। गोपिन्ह संग करायो हांसी।।''

''जो दृढ़ होय जहँवा ठहराई। स्वारथ आप मांह सो पाई।। जो हमरा मैं नाम बतावै। तो तुरुक कैसे गति पावै।।''

(दोहा)- 'ईसा पैगम्बर कहें गिरजा बाग बनाय। राम नाम तेहि बार मैं अवरै तरह जनाय।।'

रमइया का अवतरण भी कबीर की भाँति ऐसी भक्ति धारा को प्रवाहित करने के लिए हुआ था, जो ब्रह्म के उस स्वरूप के भजन में आस्था रखती है, जो निर्गुण है, निराकार है रमइया राम के भक्त है। वे इनके राम सगुण राम नहीं है वे अपने राम के विषय में कहते है-

''होय असंग हम बहु बिधि रोए। कुल मरजाद लाज सब खोए।। पावन पतित नाम हम जाने। एक भरोस इहै मन आने।। तेहि बल पाप करत नहिं हारे। नीद कहसि हँसि खसे बेचारे।। किछु दिन राम नाम बल नाचे। किछु दिन घर-घर टुकड़ा जाँचे।। अब अवलंब कछु तुलसी दीजै। सब विधि मोहिं आपन कर लीजै।। हौं अनाथ तुम नाथ हमारे। हम तव पतित पतित तुम तारे।। हौं अजाति तुम जाति सबहिं के। टेरत हौं हम द्वार कबहिं के।।''

(छन्द)- 'नहिं सकत नाम सँभारि मम अघ उदधि जग जानत भले। कुल करम-धरम सुभाव सत गुन संग तजि निन्दत चले।। तब रामनाम कृपाल पतित बिचारि दुःख दारिद दले।। कह दास दीन दयाल तुलसी सरन मोहिं राखे भले।।'

(दोहा)- 'रामनाम सब धरम मैं व्यापि रहे जग माँहि। जानत सब कोई भले मानत है कोई नाहिं।।'

अस्पृश्यता विरोध

रमइया यह मानते हैं कि सभी मनुष्य एक ही ईश्वर के संतान है न कोई छूत है न कोई अछूत। उस परमात्मा ने सबको एक आसन पर बैठाया है। यह धरती ही सबका आसन है।

(छन्द)- 'हितू कहत लगत अनिहित जिनके तिनका कैसे भल होवेगा। गृह आगि लगीतिन जगाव जबपैर तानिके सोवेगा।।'

'मजहम सब देखो करि मिलानि कहिं एक छोड़ दूसर नाहीं।। भूला अपने पहिचान नहीं सबसे तकरारि करैं काहीं।।'

ऊदा0 2-

'अली मोहम्मद अकबर सांचा। देखत खलक सबै बहु नांचा।। जब खोदाय देखै सब खलकै। पैगम्बर पैदा बहु पलकै।। पैगम्बर जगदीश बनाये। बिलग-बिलग बहु नाम गनाये।। सो अल्लाह तमाशा कीन्हा। लरि-लरि मरै खोदाय न चीन्हा।। पैगम्बर की करहिं बड़ाई। पैगम्बर खलक लड़ाई।। हिन्दू फिंग तुरुक पथ जितना। कहिपत पैगम्बर मत केतना।।'

(दोहा)- 'लिखि किताब पढ़ि-पढ़ि मरै पैगम्बर नहिं पाव। हम पाजी का जनिहैं मौज अली की गाव।।'

भक्त रूप

संत रमइया ऐसे भक्त थे जिनके हृदय में दिव्य भावनायें विद्यमान थी वे प्रभु को कण-कण में पाते है, इन्हें ईश्वर की व्यापकता का पूर्व विश्वास था, वे वेद पाठ के पठन से मर्यादा की वृद्धि मानते है और कहते हैं कि इसे पढ़कर ज्ञानी बनने पर ईर्ष्या और अभिमान में वृद्धि होती है सभी अपनी-अपनी बड़ाई गाते हैं। मेरे पास तो वेद ज्ञान नहीं है, मैं तो यही जानता हूँ कि ईश्वर प्रत्येक वस्तु में, प्रत्येक जीव जन्तु में, जगत में विद्यमान प्रत्येक जड़ चेतन में ईश के दर्शन होते हैं। इस गुप्त रहस्य को उन्होंने प्राप्त किया था और कहते हैं कि इसीलिए मुझे काल से भय नहीं लगता।

अघोरी होते हुए भी रमइया सगुण ब्रह्म का विरोध नहीं करते हैं इसके पदों में राम का उल्लेख सर्वत्र मिलता है। ये राम-नाम के जप मात्र से ही सबकुछ प्राप्ति का मार्ग बताते हैं-

'राम नाम तजि और न आना। घट-घर अरु चर अरु अचर समान।। हम कहँ सब तजि नाम भरोसा। पितु आज्ञा उलंघ नहिं दोषा।।'

'राम नाम पितु मातु हमारा। गुरु सुर साधु सहित परिवारा। धरनि धाम तन मन धन कोसा। भगनी भाय बधू होय पोसा।।'

भाषा और शैली की दृष्टि से हम देखे तो रमइया किसी लीक से बँधे नहीं थे, आपके काव्य में रीतिकालीन कवियों की भाँति न तो पाण्डित्य प्रदर्शन था और न ही कोई विशेष शैली जब जी में जो आया जैसे हुआ अपनी बातों को कह जाते है, लेकिन जब आप कृष्ण लीला के पदों को रचते है तो लगता है कि सूर या रसखान ब्रज छोड़ चंदौली की धरती पर आ गये हैं।

राग झंझोटी

''धेनु चरावत जात मुरारी।। मोर मुकुट श्रुति कुण्डल छलकत छबि कपोलहू की न्यारी।। भालतिलक केसरि की राजत भ्राजति मोहै सुरनि अति प्यारी।। राजति नैन मयन मन मोहन चितवनि चोरावन हारी।। नाशिका सुभग नथुनियाँ सोभित मुख शशि ते अतुलित छबि भारी।। अधरअरुनउर बिशा सोहावनिकिमि कहि जात चिबुक द्युति कारी।। ललित कंठ उर पहिर हार बिच गूंज माल बिच जाल सँवारी।। कर मुरली अरु लिये लकुटिया कटि कछनी काछे गिरधारी।। लटकि चलत पग पैजनियाँ जत ग्वाल सखा सब लेत हँकारी।। गैवन पोछि दुलारि बुलावत लै-लै नाम राम बनवारी।। बृज बनिता छबि निरखि मगन भई प्रेम बिबश तन सुधि बिसारी।। तो राग कान्ह में भजन की सीमा अपने चरम पर पहुँच जाती है।''

''आज नन्द गृह बाजत बधाई।। चौथेपन प्रसन्न गौरी हर प्रगटे सुवन सकल सुखदाई।। गृह-गृह ते निकसी ब्रज बनिता अंग-अंग सौरह शृङ्गार बनाई।। कर कंचन की थार आरती हरदी दूर्बा दधि मंगल भाई।। कोउ गावत कोउ मृदंग बजावत कोउ मन हरषाई।। कोउ जाच कनि देत मनि भूषन कोउ लालन मुख देख लुभाई।। मागध सूत बंदि गुन गायक देह दान न राखि बोलाई।। अवधदास बाढ़ी तेहिं अवसर पाई निछावर भक्ति सोहाई।। राम सो सुमन बरषि हिय राखत जय बृन्दाबन कुंज बिहारी।। अपन हँसत हँसावत ग्वालन्ह करत कोलि ब्रज जन हितकारी।। नषशिख उमगिनिरखिउर उमंगत नहिं कहिजात लहत सुखभारी।। अवध दास तन मन धन वारत बारहिं बार जात बलिहारी।।''

आपकी भाषा शैली की ओर ध्यान देने से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि आप ब्रज, अवधी, काशिका, भोजपूरी, मैथिलि के साथ-साथ अपनी रचनाओं में उर्दू का भी प्रयोग करते है और रीतिकाल तथा आधुनिक काल के बीच के समय में जिस प्रकार हिन्दी आधुनिकता को ग्रहण कर रही थी, तो आप भी उस ओर अग्रसर थे किन्तु सनातनधर्मी होने के कारण प्राचीनता साथ नहीं छोड़ पा रही थी।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि 18वीं शताब्दी के निर्धन भारत में जब अंग्रेज अपनी धार्मिक और शैक्षिक तथा आर्थिक गतिविधियों के द्वारा समाज में पाश्चात्य प्रभाव स्थापित करने का प्रयास कर रहे थे, निम्न वर्ग ईसाई मिशनरियों के प्रभाव में धर्म परिवर्तन कर रहा था तो रमइया छुआ-छूत अस्पृश्यता और धार्मिक कट्टरता का विरोध कर सामाजिक एकता स्थापित करने हेतु प्रयासरत थे।

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,26-29**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 26 दिसम्बर 2016

क्रान्तिकारी कवि के रूप में श्रीकृष्ण 'सरल' का साहित्यिक प्रदेय

डॉ0 रमेश कुमार टण्डन*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *क्रान्तिकारी कवि के रूप में श्रीकृष्ण 'सरल' का साहित्यिक प्रदेय* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र का लेखक मैं *रमेश कुमार टण्डन* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैंने शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

सारांश

युग की धारा के साथ न बहकर संघर्ष–पथ चुनने वाले कवि श्रीकृष्ण 'सरल' ने यह घोषणा की थी–''होंगे वे कोई और किनारों पर बैठे, मैं होड़ लगाया करता हूँ मँझधारों से।'' इसने राष्ट्रभक्तों को जन–जन तक पहुँचाने के लिए न सिर्फ अपना जीवन होम दिया बल्कि परिवार के सुखों की भी कभी परवाह नहीं की। १२४ ग्रंथों के प्रणेता श्री सरल जी को क्रान्तिकवि के रूप में जाना जाता है। इन्होंने अनेक शहीदों पर महाकाव्य तक रच डाली और वह भी प्रामाणिक।

कूटशब्द – क्रान्तिकारी कवि श्रीकृष्ण 'सरल'।

संक्षिप्त परिचय

''क्रान्ति के जो देवता, मेरे लिए आराध्य/ काव्य साधन मात्र, उनकी वंदना है साध्य'' (– श्रीकृष्ण 'सरल')

श्रीकृष्ण 'सरल' जी का जन्म, अंग्रेजी कैलेण्डर के अनुसार जिस वर्ष जलियावाले बाग में सामूहिक नरसंहार की दुर्घटना को जनरल डायर ने अंजाम दिया, उसकी प्रथम तारीख को हुआ। और मुझे लगता है कि इसीलिए सरल जी के रूप में भारत में एक क्रान्ति कवि का जन्म ऐसे विरोधों के लिए उस समय हुआ। क्रान्तिकवि के रूप में एक नहीं अनेक प्रमाण है, क्रान्तिकारी नेताजी सुभाषचन्द्र बोस पर १४–१५ पुस्तकें लिख डालना, आठ बार दिल के दौरे पड़ने के बावजूद लिखना नहीं छूटना, सारे कार्य स्वयं करना, अपने चरित्र नायकों के तथ्य संकलन हेतु बीस किमी की यात्रा करना, एक लाख पच्चीस हजार पृष्ठ का साहित्य लिखना, 'जय हिन्द' नाम से सुभाषचन्द्र बोस पर उपन्यास लिखना, चन्द्रशेखर आजाद पर महाकाव्य और उपन्यास लिखना, भगतसिंह पर महाकाव्य लिखना, पाँच खण्डों में 'क्रान्तिकारी कोष' लिखना, निजी व्यय से २० लाख लगाकर अपना साहित्य छापना,

* सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, महात्मा गांधी शासकीय कला एवं विज्ञान महाविद्यालय (खरसिया) रायगढ़ (छ0ग0) भारत

© लेखक 2017, एम0पी0ए0एस0वी0ओ0 मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहासंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

जगह–जगह कंधे पर ढोकर अपने साहित्य को ले जाकर ठेले पर रखकर १५ लाख का नुकसान उठाकर बेचना, प्रतिदिन ८ घंटे का लेखन कार्य आँखों में मोतियाबिंद होते तक करना व शहीदों के बारे में जानकारी एकत्रित करने के लिए अण्डमान निकोबार, बर्मा, मलेशिया, थाईलैण्ड, सिंगापुर, हांगकांग, जापान, शंघाई, सुमात्रा, फारमोशा, ताईहोकु, ताईवान, पाकिस्तान, रंगून, रोम, टोकियो, जर्मनी, नेपाल और दक्षिण पूर्व एशिया के कई देशों में भटकना तथा इस यात्रा के लिए पैतृक सम्पत्ति को बेच डालना सहज कार्य नहीं है। अन्ततः वे ७७ वर्ष की आयु में ०२ सितम्बर २००० को अमरत्व को प्राप्त हुए।

आचार्य शैलेन्द्र पाराशर के अनुसार, श्री सरल जी के पूर्वज जमींदार परिवार से सम्बन्ध रखते थे जो अंग्रेजों के विरूद्ध लड़ते हुए विद्रोही के रूप में फाँसी पर चढ़ा दिए गए। ''शहीदों पर लिखी इनकी पुस्तक 'भगतसिंह' को छापने जब कोई प्रकाशक नहीं मिला तो उन्होंने पत्नी के जेवर बेचकर और छह प्रतिशत ब्याज पर पैसा लेकर १९६४ में यह महाकाव्य छपवाया था। इस महाकाव्य के लोकार्पण के लिए उन्होंने अमर शहीद भगतसिंह की माँ स्व० विद्यावती जी को उज्जैन आने के लिए स्वयं आमंत्रित किया और उन्होंने अपनी स्वीकृति भी दे दी। जब वे उज्जैन आई तो नगर के इतिहास में उनका शानदार स्वागत हुआ और एक शोभा यात्रा भी निकाली गई। लोकार्पण स्थल पर जब उनकी गोद में श्रीकृष्ण 'सरल' ने 'भगतसिंह' महाकाव्य की प्रति रखी तब वे बोली थीं – 'आज ऐसा लगा कि मेरा बेटा फिर से मेरी गोद में आकर बैठ गया है।'[१]

क्रान्ति के स्वर

जब 'सरल' जी हाई स्कूल में पढ़ते थे, जब वार्षिक समारोह में, अभिव्यक्ति पर पूर्णतः प्रतिबंध के बावजूद, पुलिस अधीक्षक के समक्ष, उन्होंने निर्भीकता का परिचय इस प्रकार दिया– ''मेरी इस छोटी सी कुटिया में क्यों डाली तुमने चिनगारी?/ मैं कहता लपटें चूम– चूम, आई मेरी भी बारी। अब मैंने छोड़ दिया रोना, आँखों में पानी भर लाना/ अन्याय और अत्याचारों को, शीष झुकाकर सह पाना। अब तुम्हें देखने होंगे, निज आँखों में खण्डहर,/ मैं आज क्रान्ति की वीणा पर, गाता हूँ ये विद्रोही स्वर। तो सावधान! अब देखो तुम, मुझमें कितनी है आग भरी/ इसमें तुमको जलना होगा, जीवन की ममता मोह त्याग। अब माँ के मौन इशारों पर, है बलि होने की तैयारी/ मेरी इस छोटी सी कुटिया में, क्यों डाली तुमने चिनगारी?''[२]

महाकाव्य क्रान्तिगंगा में वे आगे लिखते हैं, ''मैं गायक हूँ उन गर्म लहू वालों का ही,/ जो भड़क उठे ऐसे अंगारे लिखता हूँ। मैं लिखता, उनकी शौर्य कथाएँ लिखता हूँ,/ उनके तेवर के तेज दुधारे लिखता हूँ। मैं फूल नहीं काँटे अनियारे लिखता हूँ।''[३]

अमर शहीदों के गायक श्रीकृष्ण जी अपने कवि–कर्म को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं, ''मैं चौराहे, चौराहे पर, ये प्रश्न उठाया करता हूँ,/ मैं अमर शहीदों का चारण, उनके यश गाया करता हूँ। यह सच है, याद शहीदों की, हम लोगों ने दफनाई है,/ यह सच है, उनकी लाशों पर चलकर आजादी आई है।''[४]

देश पर अपने आपको उत्सर्ग करने की अपील 'सरल' जी की इन काव्य पंक्तियों पर स्पष्ट झलकती है– ''हम स्वयं नहीं धरा के लिए जिएं,/ हम प्राण धरा हित दें, उसका सम्मान करें। यह जीवन जिसको हम अपना कहते,/ यह जीवन अपना हर्गिज नहीं, वतन का है।''

जिन्हें अपने देश के प्रति कोई जिम्मेदारी का अहसास नहीं, उन्हें इन शब्दों में धिक्कारा गया है– ''जिसे देश से प्यार नहीं है,/ जीने का अधिकार नहीं है।''

अदम्य साहस, वीरता, पुरूषार्थ से पूर्ण लेखन कार्य श्री सरल जी के काव्य सर्वत्र दिखाई देता है– ''विश्व के इतिहास में अध्याय तुम पढ़ लो हमारा/ चमकते स्वर्णाक्षरों में लिखा भारतवर्ष होगा। एक पत्ते पर अहिंसा की लिखी वाणी मिलेगी/ दूसरे पर गरजता संघर्ष का उत्कर्ष होगा।''[५]

बीर सपूत के त्याग व बलिदान पर गर्व करते हुए एवं उनको आदर्श मानते हुए कविवर लिखते हैं– ''पूजे न शहीद गए/ तो फिर यह पंथ कौन अपनाएगा?/ तोपों के मुँह से कौन अकड़ अपनी छातियाँ अड़ाएगा?/ चूमेगा फंदे कौन गोलियाँ कौन वक्ष पर खाएगा?/ अपने हाथों अपने मस्तक फिर आगे कौन बढ़ाएगा?''[६]

''प्रेरणा शहीदों से हम अगर नहीं लेंगे। आजादी ढलती हुई सांझ हो जाएगी। यदि वीरों की पूजा हम नहीं करेंगे तो/ यह सच मानो वीरता बांझ हो जाएगी।''[६]

अपने शेष बचे जीवन की योजना बनाते हुए सरल जी कहते हैं– ''जो शेष रहे वे दिन न व्यर्थ जाएंगे। हम धरती माँ के लिए काम आएंगे। हम क्या कर सकते, कहें न, कर दिखलाएँ। माँ के हित मरकर शहीद कहलाएँ।''[७]

शहीद मंगल पांडे का जिक्र करते हुए इन्होंने उस अमर बलिदानी का वर्णन इस प्रकार किया– ''आखिर उनने वह किया, रहे करते वे लोग/ उपहार वीर–भट को फांसी का दे डाला। वह लटक गया हँसते–हँसते माँ का सपूत/ वह झूल गया मां के गौरव का रखवाला। स्वातंत्र्य यज्ञ बैरकपुर में प्रारम्भ हुआ/ मंगल पाण्डे ही उसका बना पुरोधा था। दो समाधियां डाली फिरंगियों की उसने/ वह वीर पुरूष था, बलिदानी था योद्धा था।''[८]

शहीद भगतसिंह पर उन्होंने अपनी लेखनी को कुछ इस तरह रक्त से सिंचित किया– ''लोग कहे बन्दूक कलम थी वह सनद्ध सिपाही था/ शौर्य–वीरता का गायक वह काँटों का राही था/ लिख बलिदान कथाएं वह लोगों को जागृत करता था/ उनकी शिथिल शिराओं में उफनाता लाबा भरता था''[९]

चन्द्रशेखर आजाद पर इनके शब्द– ''आजाद, भावनाओं का वह भूकम्प विकट/ जिस धक्के से साम्राज्यवाद थर–थरा उठा/ आजाद वज्र का था ऐसा आघात प्रबल/ अत्याचारों का पर्वत भी चरमरा उठा''[१०]

मातृभूमि को सबसे श्रेष्ठ मानते हुए सरल जी लिखते हैं– ''है मातृभूमि से कोई बड़ा न होता,/ उसकी माटी होती हमको चंदन है। है मातृभूमि की महिमा सबसे न्यारी,/ हर सांस–सांस करती उसका वंदन है।''[११]

श्रीकृष्ण 'सरल' ने क्रान्ति सैनिकों को कहा कि राष्ट्र की धरती और समाज से तुम्हारा रिश्ता सिर्फ एक सैनिक का है जिसका सर्वोच्च पुरस्कार वीरगति पाने में है– ''सैनिक, सैनिक होता है, वह कुछ और नहीं/ वह नहीं किसी का भाई, पुत्र और पति है,/ कर्त्तव्यसजग प्रहरी वह धरती माता का है/ जो पुरस्कार उसका सर्वोच्च, वीर–गति है।''[१२]

''वह रण हो या आंदोलन हो, जन हित में हो/ हथियार और दृढ़ कवच हमारा जन–थल हो,/ जन–शक्ति बड़ी होती है सभी शक्तियों से/ जन–संबल में विश्वास हमारा अविचल हो।''[१२]

क्रान्ति क्या है, इस पर सरल जी का मत इस प्रकार है– ''जब क्रमिक और होती है सहज, प्रक्रिया गति/ ते ऐसा परिवर्तन विकास कहलाता है/ जब विस्फोटित जैसा होता है परिवर्तन/ तो वही, क्रांति की अभिनव संज्ञा पाता है।''[१३]

जिन क्रान्तिकारियों ने अपने आप को देश के लिए न्यौछावर कर दिया, उन शहीदों से ही आज देश स्वाधीन हो पाया है। इनके लिए सरल जी का कथन– ''वे अगर न होते तो भारत मुर्दों का देश कहा जाता,/ जीवन ऐसा बोझा होता जो हमसे नहीं सहा जाता,/ यह सच है दाग गुलामी के उनने लहू से धोए हैं,/ हम लोग बीज बोते, उनने धरती में मस्तक बोए हैं।''[१४]

अंत में, निष्कर्षत:, श्रीकृष्ण 'सरल' जी को हम शहीदों का चारण कह सकते हैं– ''मैं अमर शहीदों का चारण, उनके यश गाया करता हूँ। जो कर्ज राष्ट्र का खाया है, बस उसे चुकाया करता हूँ।।

संदर्भ

[१](संपादक) डॉ० सतीश चतुर्वेदी –हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा एवं श्रीकृष्ण 'सरल', राजेश्वरी प्रकाशन गुना २०१३ पृष्ठ संख्या ३६ –३७ (राष्ट्रीय महाकवि श्रीकृष्ण 'सरल' ने रचा विश्व कीर्तिमान– आचार्य शैलेन्द्र पाराशर)

[२]सरल, श्रीकृष्ण –महाकाव्य क्रान्तिगंगा, विचार बिन्दु, पृष्ठ संख्या २८

[३]सरल, श्रीकृष्ण –महाकाव्य क्रान्तिगंगा, विचार बिन्दु, पृष्ठ संख्या ५९

[४]सरल, श्रीकृष्ण –महाकाव्य क्रान्तिगंगा, विचार बिन्दु, पृष्ठ संख्या ५७

[५](संपादक) डॉ० सतीश चतुर्वेदी –हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा एवं श्रीकृष्ण 'सरल', राजेश्वरी प्रकाशन गुना २०१३, पृष्ठ संख्या ६७ (क्रान्तिकारियों के अमर गायक श्रीकृष्ण 'सरल'– डॉ० सरोज जैन)

[६]क्रान्तिकारियों के अमर गायक श्रीकृष्ण 'सरल'– डॉ० सरोज जैन, पृष्ठ संख्या ६८

[७]क्रान्तिकारियों के अमर गायक श्रीकृष्ण 'सरल'– डॉ० सरोज जैन, पृष्ठ संख्या ६९

[८]क्रान्तिकारियों के अमर गायक श्रीकृष्ण 'सरल'– डॉ० सरोज जैन, पृष्ठ संख्या ६९–७०

[९](संपादक) डॉ० सतीश चतुर्वेदी –हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा एवं श्रीकृष्ण 'सरल', राजेश्वरी प्रकाशन गुना २०१३, पृष्ठ संख्या ७९ (रक्त कलम की अर्चना– श्रीकृष्ण 'सरल' का व्यक्तित्व एवं कृतित्व– डॉ० रामसेवक सोनी 'प्रकाश')

[१०]रक्त कलम की अर्चना – श्रीकृष्ण 'सरल' का व्यक्तित्व एवं कृतित्व – डॉ० रामसेवक सोनी 'प्रकाश', पृष्ठ संख्या ८०

[११](संपादक) डॉ० सतीश चतुर्वेदी –हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा एवं श्रीकृष्ण 'सरल', राजेश्वरी प्रकाशन गुना २०१३, पृष्ठ सख्या ९१ (सरल की सृजन–साधना – डॉ० शशिप्रभा पौराणिक)

[१२](संपादक) डॉ० सतीश चतुर्वेदी –हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा एवं श्रीकृष्ण 'सरल', राजेश्वरी प्रकाशन गुना २०१३, पृष्ठ संख्या १०१ (सामाजिक चेतना के संवाहक : श्रीकृष्ण 'सरल' – डॉ० शारदा दुबे, डॉ० दुर्गा वाजपेयी)

[१३](संपादक) डॉ० सतीश चतुर्वेदी –हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा एवं श्रीकृष्ण 'सरल', राजेश्वरी प्रकाशन गुना २०१३, पृष्ठ संख्या १११ (अमर शहीदों के गायक श्रीकृष्ण 'सरल' – डॉ० प्रणव शास्त्री, प्रसून चतुर्वेदी, श्रीमती आरती चतुर्वेदी)

[१४]सरल, श्रीकृष्ण –महाकाव्य क्रान्तिगंगा, विचार बिन्दु, पृष्ठ संख्या ५७

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,30-33**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 04 दिसम्बर 2016

सुहाग के नुपूर में वेश्या जीवन और सुहाग सुख का अन्तर्द्वन्द्व

डॉ0 कल्पना बाजपेयी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *सुहाग के नुपूर में वेश्या जीवन और सुहाग सुख का अन्तर्द्वन्द्व* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *कल्पना बाजपेयी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इस छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध प्रपत्र आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

हमारे साहित्य में नारी की सामाजिक स्थिति का वर्णन कई साहित्यकारों ने किया है। अगर हम सतयुग तथा द्वापर युग देखते है तो, गर्भवती सीता का अपने पति पुरूषोत्तम राम के द्वारा त्याग, द्वापर युग में पॉच पांडव द्वारा जुॅए में हार कर वस्तु की तरह द्रोपदी का चीर हरण आदि अनेकों द्रष्टांत मिलते हैं। यह इतिहास हमें नारी की स्थिति के बारे में बताता है, कि वर्तमान युग में ही नहीं अपितु अनादि काल से ही नारी की स्थिति शोचनीय रही है।

नागर जी के उपन्यास सुहाग के नूपुर को पढकर ऐसा लगता है कि नागर जी ने नारी के कई पहलुओं को उजागर किया है। उन्होंने अपने उपन्यास के माध्यम से यथार्थ को प्रस्तुत किया है। अगर यह हम कहें कि नागर जी ने अपने उपन्यास के पात्रों में जान डाल दी है तो गलत नहीं होगा। उपन्यास में एक पतिव्रता पत्नी कन्नगी, शारीरिक आकर्षण को अहमियत देती हुए वेश्या माधवी, बुजुर्ग वेश्या तथा माधवी की गुरू चेलम्मा का अघ्यात्म की ओर आकर्षित होना, ये सभी विशेष नारी पात्र हमारे समाज की वास्तविकता का जीता–जागता उदाहरण है।

इस उपन्यास के केन्द्र में माधवी नाम की वेश्या है। कोवलन और कन्नगी विवाह सूत्र में बंध जाते हैं। ये दोनों ही दक्षिण भारत के दो धनी व्यापारियों की संतान हैं, विवाह के बाद भी कोवलन माधवी के प्रति अपने आकर्षण को कम नहीं कर पाता है। माधवी को कोवलन ने वचन दिया था कि अपनी सुहागरात वाले दिन वह अपनी पत्नी कन्नगी को उसके पास लेकर आयेगा। इसलिए सुहागरात के अवसर पर वह पत्नी कन्नगी को लेकर माधवी के घर जाता है, माधवी कन्नगी को नृत्य के घुंघरू पहनाकर नचवाने का अफसल प्रयास करने लगती है और कोवलन मूकदर्शक बनकर विलास में मग्न है। कोवलन के पिता और श्वसुर को यह जानकर अत्यन्त ही दु:ख होता है। अपने श्वसुर के निर्देश पर कोवलन पुन: अपने व्यापार में संलग्न हो जाता है।

माधवी अपनी संरक्षिका पेरिनायकी से विद्रोह कर अलग रहने लगती है। एक दिन वह जहर खा लेती है, जब कोवलन ने देखा कि वह जिन्दगी की आखिरी सांसे गिन रही है तो वह उसका उपचार कराता है। इसी बीच कोवलन के पिता की मृत्यु हो जाती है। कोवलन और माधवी का यह मिलन ही कन्नगी के लिए अभिशाप–सा बन जाता है। वह पति वियोग में दिन रात रोती

* असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, लिंगराज महाविद्यालय, बेलगावी (कर्नाटक) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक 2017, एम0पी0ए0एस0वी0ओ0 मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहासंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

रहती है और कोवलन माधवी के प्रेम में पागल है। माधवी उसकी सारी सम्पत्ति हथिया लेती है और कन्नगी अपने पति से प्रतिरोध तक नहीं करती है। माधवी उसके सुहाग के नूपुर हथियाकर कुलवधू का स्थान पाना चाहती है। वह कोवलन के साथ विवाह करती है और अपनी पुत्री मणि मेखला का नाम कोवलन के वंश वृक्ष में लिखवाना चाहती है किन्तु कन्नगी वंशनिधि कोश की चाभी और सुहाग के नुपूर देने से मना कर देती है। फलत: कोवलन कन्नगी को मारकर हवेली से निकाल देती है। कन्नगी अपनी दासी देवन्ती के साथ धर्मशाला में रहने लगती है। अन्तत: सुहाग के नुपूर प्राप्त करने में असफल माधवी कोवलन को हवेली से धक्के देकर भगा देती है। कोवलन कन्नगी की शरण में आ जाता है। तब कन्नगी अपने पति को लेकर मदुरा चली जाती है। और सुहाग के नूपुर अपने पति को व्यापार के लिए दे देती है। दुर्भाग्यवश कोवलन मदुरा महाराज की पत्नी के सुहाग के नूपुर की चोरी के आरोप में फंस जाता है और मृत्युदण्ड मिलता है कन्नगी समय पर पहुँचकर अपने पति को मृत्युदण्ड से बचाती है। महाराज, कन्नगी के साहस और बुद्विमता से प्रसन्न होकर पांच लाख स्वर्ण मुद्रायें भी देते हैं।

माधवी अन्तत: एक राजपुरूष की शरण में जाती है और वेश्या बना ली जाती है। माधवी के सारे सपने चूर हो जाते हैं। इसी समय नगर भयंकर बाढ़ के कारण जलमग्न हो जाता है। माधवी विक्षिप्तावस्था में बौद्व शिविर में शरण लेती है और वहीं उसकी महाकवि इलगोवन से भेंट होती है। वह उनसे नारी के अधिकार और उसकी प्रतिष्ठा की मांग करती है। यहीं उपन्यास का अन्त हो जाता है।

वेश्या और पत्नी के विचारों में काफी अन्तर होता है। वेश्या सिर्फ पुरूष से छीनना जानती हैं, अपने हिसाब से उसका सदुपयोग करना चाहती है, और जब उसका मतलब निकल जाता है वेश्या पुरूष को दूध में मक्खी की तरह से अपने जीवन से निकालना भी अच्छी तरह से जानती है। उसका एक छोटा स्वरूप हमे सुहाग के नुपूर में कोवलन तथा माधवी के द्वारा हमारे सामने आता है। कोवलन ने कहा ''तुम्हारे लिए मैने बहुत त्याग किया है। अपनी सगी पत्नी को छोड़कर तुम्हारा बना हूँ।'' माधवी ने कहा तुमने मेरे लिए कुछ नहीं किया, जो कुछ किया अपनी पत्नी के लिए, अपनी सगी पत्नी के नहीं बने तो मेरे क्या बनोगे चले जाओ मेरे सामने से।''[१]

पर पति—.पत्नी का संबंध बहुत ही मजबूत होता है। यह रिश्ता विश्वास की डोर से बंधा होता हैं हमारा समाज इस पवित्र रिश्ते को नतमस्तक होकर स्वीकार करता है। पत्नी अपने पति के लिए हमेशा तैयार रहती है यहॉ तक कि पत्नी अपने पति के आत्म स्वाभिमान के लिए अपने प्राणों को समर्पित करने में तनिक भी हिचकती नहीं है। पति चाहे कहीं भी क्यों न चला जाए पर जब वह अपनी पत्नी के पास आता है तो उसे एक शान्ति की अनुभूति होती है।सुहाग के नुपूर उपन्यास में कोवलन को माधवी से वासना की तृप्ति भले हुई हो पर मन की आन्ति अपनी पत्नी कन्नगी के पास आने पर ही होती है। जैसा कि सुहाग के नुपूर उपन्यास में उल्लिखित है—''कोवलन चुपचाप एकटक कन्नगी को ही देखता रहा फिर कहा ''स्वर्ग कितना सुखद है। कितना आन्त है। नरक का कीड़ा इतनी स्वस्थ वायु में सांस कैसे ले सकेगा?''[२]

कोई भी स्त्री अपनी मर्जी से वेश्या नहीं बनती। वह मजबूरी में आकर या जबरदस्ती के कारण वेश्या बनती है। वेश्या का जीवन एक अंधकारमय जीवन है। हमारे हिन्दू समाज में देवी स्वरूप नारी की पूजा करते है। पर, समाज की स्त्रियों को वह लोग इज्जत नहीं देते हैं। नागर जी वेश्यावृत्ति के विरोधी थे जिस कारण उन्होंने अपने उपन्यास में लिखा है।'' चेलम्मा माधवी से कहती है ''रह— रह कर मेरा मन विद्रोह करता था। मुझ पर घर में उस दिन मार पड़ी थी जिस दिन मैं कामदेव का धनुष घोषित की गई थी, जिस दिन महाराज से लेकर बड़े—बड़े धनाधीश तक मेरे रूप और कला पर मुग्ध होकर मुझ पर अपना सब कुछ निछावर करने के लिए उतावले—बावले बने हुए थे। मैं बड़ी मार खाकर वेश्या बनी हूँ बेटा।''[३]

कुछ पुरूष अपनी कामवासना की तृप्ति तथा पैसों के कारण किसी की जिंदगी कैसे बर्बाद कर सकते हैं। उन्हें यह अधिकार किसी ने भी नहीं दिया है। उन पुरूषों का नागर जी विरोध करते हुए वेश्या चेलम्मा के द्वारा अपनी मन की बात को कहते हैं। ''चेलम्मा सोचती है ''यह पुरूष— परमेश्वर चित भी अपनी और पट भी अपनी ही रखना चाहता है। वाह रे बन्दर तेरा न्याय।'' वह हंसकर मानो पुरूष—परमेश्वर से बदला ले रही थी।''[४]

वेश्या शब्द एक नारी के जीवन का वह धब्बा है। जिसे वह चाहकर के भी नहीं धो सकती है। माधवी हमेशा पत्नी का दर्जा पाना चाहती है, इसी कारण ईर्ष्या के वशीभूत वह कन्नगी से घुंघरू बांधने को बोलती है— ''कन्नगी के मना करने पर माधवी कन्नगी से तड़पकर बोली, ''तुम अपने को उच्च और मुझे नीच समझती हो? तुम मुझसे घृणा करती होगी है न?''

कन्नगी ने कहा, ''मै तुमसे घृणा क्यों करूं बहन। तुम अपनी परिस्थितियों के कारण ऐसी हो। इसमें तुम्हारा क्या दोष?''[५]

हमारे समाज में कुछ लोगों की वजह से नारी वेश्या तो बन जाती है पर समाज उस नारी को कभी भी स्वीकार नहीं करता है। हमेशा उसको निरादर की ही नजरों से देखता है। समाज में पत्नी को जो आदर मिलता है उससे कहीं अधिक उपेक्षा वेश्या को सहन करनी पड़ती है। एक पुरूष, वेश्या को धन–दौलत तो दे सकता हैं लेकिन पत्नी की तरह सुहागिन होने का जो सुख है, वह उसे नहीं दे सकता है। नागर जी ने माधवी के जरिए इस बात को रखा है– ''माधवी के चेहरे पर निराशा की कालिमा छा गई, बोली, ''मै केवल खिलौना हूँ। प्रकृति से मानवी के सारे गुण पाकर भी मैं, समाज के अधिकारो के वंचित हूँ। मेरे प्यार का उपहार तुम्हारा प्यार नहीं हो सकता.....केवल विलास.....कोरा विलास। वाह रे तुम्हारा न्याय.....'[६]

एक वेश्या माँ तो बन जाती है पर सुहाग का सुख उसे कभी नहीं मिलता है। वह हमेशा सुहाग का सुख पाने के लिए तड़पती रहती है। इस कारण उसके मन में एक सुहागिन के प्रति ईर्ष्या आना स्वाभाविक है। एक वेश्या को समाज से जो निरादर मिलता है। वह सूद समेत उन पुरूषों पर निकालने की कोशिश करती हैं जो वासना युक्त उनके पास आते हैं। उस समय उसका सिर्फ एक मकसद होता है कि इन्हीं पुरूषों के कारण आज उनकी नरक के समान जिंदगी है तो वे पुरूष अपने परिवार में क्यों खुश रहे? जब कि वेश्या यह जानती है कि उसे बर्बाद करने में उन पुरूषों की पतियों का कोई भी हाथ नहीं है। फिर भी वेश्या के मन में सुहागिनों के प्रति ईर्ष्या आ जाती है। वे सुहागिनों से उनका पति छीनकर गर्व महसूस करती हैं यह सब कुछ उनके घावों में मरहम का काम करता है, जैसा कि नागर जी ने लिखा है– ''दम्पत्ति का वियोग ही वेश्या का इष्ट है। कल से इन्हें आमने–सामने अलग–अलग पिंजरो में देखना चाहती हूँ। सुना?'' माधवी के स्वर में आसन का तेज था।''[७]

माधवी के चरित्र में जो त्रुटि है उसकी ओर संकेत करते हुए डॉ० शिवनारायण श्रीवास्तव ने कहा है–''यदि वह वेश्या कुटट्नी कला को छोड़ संयम और सहिष्णुता से जीवन यापन करती, हिंसा और हठ पर विजय प्राप्त कर सकती तो कन्नगी कोवलन और स्वयं उसका जीवन इतना दुखद न बनता।''[८]

इस उपन्यास में उपन्यासकार ने नायक के चरित्र को चरित्रहीन दिखाया है। इलाचन्द्र जोशी के अनुसार– ''किसी उपन्यास में चरित्रहीन नायक की अवतारणा मात्र कोई अपराध नहीं है, बल्कि वर्तमान युग में सच्ची प्रगतिशीलता की पहली शर्त है, बशर्ते उपन्यासकार का उद्देश्य उस चरित्र हीनता को महिमान्वित करने का अथवा चरित्रहीनता के चित्रित अथवा विश्लेषित करने का नहीं बल्कि दुष्ट कीटाणुओं के विश्लेषण और परख द्वारा उन्हें जड़ से नष्ट करने का है।''[९]

'सुहाग के नूपुर' उपन्यास में दोनों नायिकाओं का केन्द्र बिन्दु एक ही नायक है। जो उपन्यास के अंत में बुराई पर अच्छाई की जीत को दिखाता है। दोनों ही स्त्रियों की सोच अलग–अलग है, उसे परिवर्तित नहीं किया जा सकता, क्योंकि परिवार में बच्चे को जैसे संस्कार मिलते हैं, वह बड़े होने पर भी उसे नहीं भूलता। यही संस्कार उसके व्यवहार में हमेशा दिखाई देता है। ठीक इसी तरह से दोनों ही स्त्रियों के संस्कारों में अन्तर है, अगर एक स्त्री में समर्पण की भावना है तो दूसरी में छीनने की प्रवृत्ति। इसीलिए दोनो ही स्त्रियों के विचारों में शुरू से अन्त तक अतर्द्वन्द्व दिखाई देता है और विचारों का यही अंतर्द्वन्द्व एक नारी को समाज में ऊपर उठाता है और दूसरी नारी को नीचे गिरा देता है।

नागर जी ने अपने उपन्यास में पति–पत्नी के रिश्ते को पवित्र दिखाया है। उनका मानना है कि पति–पत्नी के रिश्ते में विश्वास, निस्वार्थ प्रेम और समर्पण की भावना होनी चाहिए। तभी रिश्ता सुख पूर्वक आगे बढ़ता है, लेकिन जब रिश्ते में स्वार्थ रूपी प्रेम तथा छीनने की इच्छा जागृत हो जाती है, तो रिश्ता कभी भी नहीं निभता।

सन्दर्भ सूची

[१]*सुहाग के नुपूर* –अमृतलाल नागर, पृष्ठ संख्या २३४, राजकमल प्रकाशन, संस्करण –१९६५
[२]*वही,* पृष्ठ संख्या १८७
[३]*वही,* पृष्ठ संख्या ४३
[४]*सुहाग के नुपूर* –अमृतलाल नागर, पृष्ठ संख्या ११५, राजकमल प्रकाशन, संस्करण –१९६५
[५]*वही,* पृष्ठ संख्या ९७
[६]*वही,* पृष्ठ संख्या ६६
[७]*सुहाग के नुपूर* –अमृतलाल नागर, पृष्ठ संख्या ३६, राजकमल प्रकाशन, संस्करण –१९६५
[८]*(हिन्दी उपन्यास) सृजन और सिद्वान्त* –नरेन्द्र कोहली, पृष्ठ संख्या ४३७
[९]*वही,* पृष्ठ संख्या १४९

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,34-39**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 12 जनवरी 2017

वेद भाषा है भोजपुरी संस्कृत की लोकभाषा

संजय तिवारी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *वेद भाषा है भोजपुरी संस्कृत की लोकभाषा* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र का लेखक मैं *संजय तिवारी* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैंने शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

सृष्टि में भोजपुरी तब से है जब से इसका अस्तित्व है। मूलतः संस्कृत से लोकस्वर के रूप में उपज कर भोजपुरी में सामान्य मानव भ्यता में संवाद के माध्यम के रूप में खुद को स्थापित किया है। यह एक मात्र भाषा है जिसमें वैयाकरण की दृष्टि से संस्कृत से समानता की क्षमता है। भोजपुरी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें किसी भी क्रिया या संज्ञा का कोई पर्यायवाची नहीं है, बल्कि हर क्रिया और संज्ञा के लिए अलग शब्द हैं। यहाँ शब्दों की अद्भुत ढंग से प्रचुरता है। यही वजह है कि संवाद सम्प्रेषण की जो क्षमता भोजपुरी में है वह किसी अन्य भाषा में सम्भव ही नहीं हो सकता।

संस्कृत से ही निकली भोजपुरी

आचार्य हवलदार त्रिपाठी 'सहृदय' लम्बे समय तक अन्वेषण कार्य करके इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि भोजपुरी संस्कृत से ही निकली है। उनके कोश-ग्रंथ (व्युत्पत्ति मूलक भोजपुरी की धातु और क्रियायें) में मात्र 761 धातुओं की खोज उन्होंने की है, जिनका विस्तार 'ढ' वर्ण तक हुआ है। इस प्रबन्ध के अध्ययन से ज्ञात होता है कि 761 पदों की मूल धातु की वैज्ञानिक निर्माण प्रक्रिया में पाणिनी सूत्र का अक्षरशः अनुपालन हुआ है। इस कोशग्रंथ में वर्णित विषय पर एक नजर डालने से भोजपुरी तथा संस्कृत भाषा के मध्य समानता स्पष्ट परिलक्षित होती है। वस्तुतः भोजपुरी-भाषा संस्कृत-भाषा के अति निकट और संस्कृत की ही भांति वैज्ञानिक भाषा है। भोजपुरी-भाषा के धातुओं और क्रियाओं का वाक्य- प्रयोग विषय को और अधिक स्पष्ट कर देता है। प्रामाणिकता हेतु संस्कृत व्याकरण को भी साथ-साथ प्रस्तुत कर दिया गया है। इस ग्रंथ की विशेषता यह है कि इसमें भोजपुरी-भाषा के धातुओं और क्रियाओं की व्युत्पत्ति को स्रोत संस्कृत-भाषा एवं उसके मानक व्याकरण से लिया गया है।

* अध्यक्ष, भारत संस्कृति न्यास (नई दिल्ली) भारत

© लेखक 2017, एम0पी0ए0एस0वी0ओ0 मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहासंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

भाषा के अर्थ में 'भोजपुरी' शब्द का पहला लिखित प्रयोग रेमंड की पुस्तक 'शेरमुताखरीन' के अनुवाद (दूसरे संस्करण) की भूमिका में मिलता है। इसका प्रकाशन वर्ष 1789 है। इसके नामकरण के बारे में कई तरह के मत मिलते हैं। जिनमें से तीन मत काफी प्रचलित हैं। पहले मत के अनुसार राजा भोजदेव (सन् 1005-55 ई0) के नाम पर भोजपुर पड़ा। इस मत के समर्थक जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन उदयनारायण तिवारी आदि हैं। इस सम्बन्ध में उदयनारायण तिवारी ने लिखा है कि 'भोजपुरी बोली का नामकरण शाहाबाद जिले के भोजपुर परगने के नाम पर हुआ है। शाहाबाद जिले में भ्रमण करते हुए डॉ0 बुकनन सन् 1812 ई0 में भोजपुर आए थे। उन्होंने मालवा के भोजवंशी 'उज्जैन' राजपूतों के चेरों जाति को पराजित करने के सम्बन्ध में उल्लेख किया है। आधुनिक इतिहासकारों ने मालवा के राजा भोजदेव या उनके वंशजों के भोजपुर विजय को संदिग्ध माना है। इस पर विचार करते हुए दुर्गाशंकर सिंह नाथ ने लिखा है कि (मालवा के भोज)' भोजपुर-भोज-देव पूर्वी प्रांत में कभी नहीं आए। दूसरे मत के अनुसार इसका नामकरण वेद से जोड़ा गया है। वेद में भोज शब्द का प्रयोग मिलता है। इस मत के समर्थकों में डॉ0 ए0बनर्जी शास्त्री, रघुवंश नारायण सिंह, जितराम पाठक का नाम प्रमुख है। एक तीसरा मत भी है जिसके अनुसार भोजपुरी भाषा का नामकरण कन्नौज के राजामिहिर भोज के नाम पर भोजपुर बसा था। इस मत के पक्षधर पृथ्वी सिंह मेहता और परमानंद पांडेय हैं। परमानंद पांडेय के अनुसार- ''गुर्जर प्रतिहारवंशी राजा मिहिरभोज का बसाया हुआ भोजपुर आज भी पुराना भोजपुर नाम से विद्यमान है। मिहिरभोज का शासनकाल सन् 836 ई0 के आस-पास माना जाता है।

यहाँ केवल एक क्रिया से इसकी इस क्षमता को समझा जा सकता है -'केवाड़ी ओठगा दी/ केवाड़ी भिड़ा दी/ केवाड़ी सटा दी/ केवाड़ी बंद कर दी।'

इसी प्रकार -'बैला मरखाह ना ह, मूडिझत ह/ अन्हार नइख भइल/ अबहिन मुन्हार बा/ फरछीन हो गइल बा/ भिनुसार हो गईल/ बिहान हो गईल।'

इसी प्रकार -'थरियवा खंगार दी/ थरियवा धो दी/ थरियवा मांज दी।'

इसी प्रकार- 'धान ओसावै के बा/ धान धरियावे के बा।'

इसी प्रकार- 'खेत कोड़े के बा/ खेत झोरे के बा।'

इसी प्रकार -'बाबू ओठगल बाड़े/ बाबू लेटल बाड़े/ बाबू सुतल बाड़े।'

डॉ0 ग्रियर्सन ने भारतीय भाषाओं को अन्तरंग और बहिरंग इन दो श्रेणियों में विभक्त किया है जिसमें बहिरंग के अर्न्तगत उन्होंने तीन प्रधान शाखाएँ स्वीकार की हैं- 1. उत्तर-पश्चिमी शाखा, 2. दक्षिणी शाखा और 3. पूर्वी शाखा।

इस अन्तिम शाखा के अन्तर्गत उड़िया, असमी, बांग्ला और पुरबिया भाषाओं की गणना की जाती है। पुरबिया भाषाओं में मैथिली, मगही और भोजपुरी- ये तीन बोलियाँ मानी जाती हैं। क्षेत्रविस्तार और भाषाभाषियों की संख्या के आधार पर भोजपुरी अपनी बहनों मैथिली और मगही में सबसे बड़ी है।

नामकरण

भोजपुरी भाषा का नामकरण बिहार राज्य के आरा (शाहाबाद) जिले में स्थित भोजपुर नामक गाँव के नाम पर हुआ है। पूर्ववर्ती आरा जिले के बक्सर सब-डिविजन (अब बक्सर अलग जिला है) में भोजपुर नाम का एक बड़ा परगना है जिसमें 'नवका भोजपुर' और 'पुरनका भोजपुर' दो गाँव हैं। मध्यकाल में इस स्थान को मध्य प्रदेश के उज्जैन से आए भोजवंशी परमार राजाओं ने बसाया था। उन्होंने अपनी इस राजधानी को अपने पूर्वज राजा भोज के नाम पर भोजपुर रखा था। इसी कारण इसके पास बोली जाने वाली भाषा का नाम 'भोजपुरी' पड़ गया। भोजपुरी भाषा का इतिहास 7वीं सदी से शुरू होता है- 1000 से अधिक साल पुरानी! गुरू गोरखनाथ 1100 वर्ष में गोरख बानी लिखा था। संत कबीर दास (1297) का जन्मदिवस भोजपुरी दिवस के रूप में भारत में स्वीकार किया गया है और विश्व भोजपुरी दिवस के रूप में मनाया जाता है।

क्षेत्र विस्तार

भोजपुरी भाषा प्रधानतया पश्चिमी बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा झारखण्ड के क्षेत्रों में बोली जाती है। मुख्य रूप से भोजपुरी बोले जाने वाले जिले हैं :

बिहार; बक्सर जिला, सारण जिला, सिवान, गोपलगंज जिला, पूर्वी चम्पारण जिला, पश्चिमी चम्पारण जिला, वैशाली जिला, भोजपुर जिला, रोहतास जिला, बक्सर जिला, भभुआ जिला।

उत्तर प्रदेश; बलिया जिला, वाराणसी जिला, चन्दौली जिला, गोरखपुर जिला, महाराजगंज जिला, गाजीपुर जिला, मिर्जापुर जिला, मऊ जिला, इलाहाबाद जिला, जौनपुर जिला, प्रतापगढ़ जिला, सुल्तानपुर जिला, फैजाबाद जिला, बस्ती जिला, गोंडा जिला, बहराईच जिला, सिद्धार्थ नगर, आज़मगढ़ जिला।

झारखण्ड; पलामु जिला, गढ़वा जिला।

नेपाल; रौतहट जिला, बारा जिला, बीरगञ्ज, चितवन जिला, नवलपरासी जिला, रूपनदेही जिला, कपिलवस्तु जिला, पर्सा जिला।

भोजपुरी भाषा की प्रधान बोलियाँ

1. आदर्श भोजपुरी
2. पश्चिमी भोजपुरी
3. अन्य दो उपबोलियाँ (सब डाइलेक्ट्स) 'मघेसी' तथा 'थारू' के नाम से प्रसिद्ध है।

आदर्श भोजपुरी

जिसे डॉ0 ग्रियर्सन ने स्टैंडर्ड भोजपुरी कहा है वह प्रधानतया बिहार राज्य के आरा जिला और उत्तर प्रदेश के बलिया, गाजीपुर जिले के पूर्वी भाग और घाघरा (सरयू) एवं गंडक के दोआब में बोली जाती है। यह एक लम्बे भू-भाग में फैली हुई है। इसमें अनेक स्थानीय विशेषताएँ पाई जाती हैं। जहाँ शाहाबाद, बलिया और गाजीपुर आदि दक्षिणी जिलों में 'ड़' का प्रयोग किया जाता है वहाँ उत्तरी जिलों में 'ट' का प्रयोग होता है। इस प्रकार उत्तरी आदर्श भोजपुरी में जहाँ 'बाटे' का प्रयोग किया जाता है वहाँ दक्षिणी आदर्श भोजपुरी में 'बाड़े' प्रयुक्त होता है। गोरखपुर की भोजपुरी में 'मोहन घर में बाटें' कहते परन्तु बलिया में 'मोहन घर में बाड़े' बोला जाता है।

पूर्वी गोरखपुर की भाषा को 'गोरखपुरी' कहा जाता है परन्तु पश्चिमी गोरखपुर और बस्ती जिले की भाषा को 'सरवरिया' नाम दिया गया है। 'सरवरिया' शब्द 'सरूआर' से निकला हुआ है जो 'सरयूपार' का अपभ्रंश रूप है। 'सरवरिया' और गोरखपुरी के शब्दों- विशेषतः संज्ञा शब्दों- के प्रयोग में भिन्नता पाई जाती है।

बलिया (उत्तर प्रदेश) और सारन (बिहार) इन दोनों जिलों में 'आदर्श भोजपुरी' बोली जाती है, परन्तु कुछ शब्दों के उच्चारण में थोड़ा अन्तर है। सारन के लोग 'ड' का उच्चारण 'र' करते हैं। जहाँ बलिया निवासी 'घोड़ागाड़ी आवत बा' कहता है, वहाँ छपरा या सारन का निवासी 'घोरा गारी आवत बा' बोलता है। आदर्श भोजपुरी का नितांत निखरा रूप बलिया और आरा जिले में बोला जाता है।

पश्चिमी भोजपुरी; हम खरमिटाव कइली हा रहिला चबाय के। भेंवल धरल बा दूध में खाजा तोरे बदे।। जानीला आजकल में झनाझन चली रजा। लाठी, लोहाँगी, खंजर और बिछुआ तोरे बदे।। (तेग अली बदमाश दपर्ण)

मधेसी

मधेसी शब्द संस्कृत के 'मध्य प्रदेश' से निकला है जिसका अर्थ है बीच का देश। चूँकि यह बोली तिरहुत की मैथिली बोली और गोरखपुर की भोजपुरी के बीचवाले स्थानों में बोली जाती है, अतः इसका नाम मधेसी (अर्थात् वह बोली

जो इन दोनों के बीच में बोली जाये) पड़ गया है। यह बोली चम्पारण जिले में बोली जाती है और प्रायः 'कैथी लिपि' में लिखी जात

'थारू' लोग नेपाल की तराई में रहते हैं। ये बहराइच से चम्पारण जिले तक पाए जाते हैं और भोजपुरी बोलते हैं। यह विशेष उल्लेखनीय बात है कि गोंडा और बहराइच जिले के थारू लोग भोजपुरी बोलते हैं जबकि वहाँ की भाषा पूर्वी हिन्दी (अवधी) है। हॉग्सन ने इस भाषा के उपर प्रचुर प्रकाश डाला है।

भोजपुरी जन एवं साहित्य

भोजपुरी बहुत ही सुन्दर, सरस तथा मधुर भाषा है। भोजपुरी भाषाभाषियों की संख्या भारत की समृद्ध भाषाओं- बँगला, गुजराती और मराठी आदि बोलनेवालों से कम नहीं है। इन दृष्टियों से इस भाषा का महत्व बहुत अधिक है और इसका भविष्य उज्ज्वल तथा गौरवशाली प्रतीत होता है। भोजपुरी भाषा में निबद्ध साहित्य यद्यपि अभी प्रचुर परिमाण में नहीं है तथापि अनेक रस कवि और अधिकारी लेखक इसके भण्डार को भरने में संलग्न हैं। भोजपुरिया-भोजपुरी प्रदेश के निवासी लोगों को अपनी भाषा से बड़ा प्रेम है। अनेक पत्र-पत्रिकाएँ तथा ग्रंथ इसमें प्रकाशित हो रहे हैं तथा भोजपुरी सांस्कृतिक सम्मेलन, वाराणसी इसके प्रचार में संलग्न है। विश्व भोजपुरी सम्मेलन समय-समय पर आंदोलनात्म, रचनात्मक और बौद्धिक तीन स्तरों पर भोजपुरी भाषा, साहित्य और संस्कृति के विकास में निरन्तर जुटा हुआ है। विश्व भोजपुरी सम्मेलन से ग्रंथ के साथ-साथ त्रैमासिक 'समकालीन भोजपुरी साहित्य' पत्रिका का प्रकाशन हो रहे हैं। विश्व भोजपुरी सम्मेलन, भारत ही नहीं ग्लोबल स्तर पर भी भोजपुरी भाषा और साहित्य को सहेजने और इसके प्रचार-प्रसार में लगा हुआ है। देवरिया (यू0पी0), दिल्ली, मुंबई, कोलकाता, पोर्ट लुईस (मारीशस), सूरीनाम, दक्षिण अफ्रीका, इंग्लैंड और अमेरिका में इसकी शाखाएँ खोली जा चुकी हैं

राहुल सांकृत्यायन ने भोजपुरी को 'मल्ली' और 'काशिका' दो नाम दिया था। असल में वे प्राचीन गणराज्यों (सोलह महाजनपद) की व्यवस्था से सम्मोहित थे। वे महाजनपदों के नाम से ही वहाँ की भाषाओं का नामकरण करना चाहते थे। बिहार की दो भाषाओं अंगिका और वज्जिका का नामकरण उन्हीं का किया हुआ है। अंङ्ग नाम के महाजनपद के नाम पर वहाँ की भाषा का नाम उन्होंने अङ्गिका रखा। इसके पूर्व ग्रियर्सन ने अंगिका को मैथिली के अंतरगत रख था परन्तु इसकी स्वतंत्रता भाषिक विशेषता भी उनके ध्यान में थी। इसीलिए उन्होंने अङ्गिका को मैथिली का 'छीका-छाकी' रूप कहा है। राहुल जी द्वारा भोजपुरी का किया गया नामकरण मान्य नहीं हो सका। असल में उस समय तक भोजपुरी नाम प्रचलित हो गया था। दूसरे यह भोजपुरी को मल्ली और काशिका नाम से दो भाषाओं में बांट रही थी। भोजपुरी की उत्पत्ति मागधी प्राकृत तथा अपभ्रंशों से हुई है। यह पूर्वी परिवार की भाषा है। भाषावैज्ञानिक दृष्टि से पूरा भोजपुरी भाषी, इलका हिन्दी क्षेत्र से बाहर पड़ता है। इस मत का समर्थन जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन, सुनीति कुमार चटर्जी, उदय नारायण तिवारी आदि भाषा वैज्ञानिकों ने किया है।

भोजपुरी एक बड़े भू-भाग की भाषा है। यह पूर्वी बिहार और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के साथ-साथ झारखण्ड के कुछ क्षेत्रों के लोगों की मातृभाषा है। इसके अलावा बिहार और उत्तर प्रदेश के भोजपुरी भाषी जिलों से सटे नेपाल के कुछ हिस्सों में यह बोली जाती है। यह बिहार के पूर्वी चम्पारण, पश्चिमी चम्पारण, सारण, सीवान, गोपालगंज, भोजपुर, बक्सर, सासाराम और भभुआ जिलों में तथा उत्तर प्रदेश के बलिया, देवरिया, कुशीनगर, वाराणसी, गोरखपुर, महाराजगंज, गाजीपुर, मऊ, जौनपुर, मिर्जापुर के लोगों की मातृभाषा है। झारखण्ड में यह पलामू, गढ़वा और लातेहार जिलों के कुछ भागों में बोली जाती है। एक अनुमान के मुताबिक भारत में कुछ भागों में बोलनेवालों की जनसंख्या 26 करोड़ के आस-पास है। नेपाल के रौतहट, बारा, पर्सा, बिरग, चितवन, नवलपरासी, रूपनदेही और कपिलवस्तु में भोजपुरी बोली जाती है। वहाँ के थारू लोग भोजपुरी बोलते हैं। नेपाल में भोजपुरी भाषी लोगों की आबादी ढ़ाई लाख से अधिक है। जो वहाँ की जनसंख्या के लगभग नौ प्रतिशत है। भोजपुरी सही मायने में विश्वभाषा है। भारत और नेपाल के अलावे यह मारीशस, फिजी, सूरीनाम,

ट्रीनीडाड, नीदरलैंड जैसे कई देशों की बड़ी आबादी इसे बोलती-समझती है। रोजी-रोजगार की भाषा नहीं रहने के कारण नई पीढ़ी इससे कट रही है।

मानकीकरण

सर्वविदित है कि भोजपुरी एक विशाल भू-खण्ड की भाषा है। स्वाभाविक रूप से इसके वाचिक रूप में विविधता है। भोजपुरी के पुरोधाओं का ध्यान शुरू से इस ओर रहा है। इसके मानकीकरण के लिए तरह-तरह के प्रयास होते रहे हैं। शुरूआती दौर में भोजपुरी के पुरोधाओं का विचार था कि सभी जगहों के लेखक अपनी-अपनी भोजपुरी में लिखें। उस समय सभी लेखकों को उत्साहित करना था। धीरे-धीरे स्थिति बदली। सभी जगहों के भोजपुरी लेखकों को भोजपुरी की मान्यता और प्रचार-प्रसार के लिए मानकीकरण की जरूरत महसूस हुई। शुरूआती दौर में राहुल सांकृत्यायन, अवध बिहारी सुमन (दंडिस्वामी विमलानंद सरस्वती) जैसे कई लेखक भोजपुरी को बोलचाल के हिसाब से लिखते थे परन्तु जैसे-जैसे भोजपुरी में लेखन तेज हुआ, इसके मान्यता की बात उठी वैसे-वैसे भोजपुरी में यह आग्रह कम हुआ। भोजपुरी के हितचिंतकों का विचार बना कि भोजपुरी का स्वरूप ऐसा हो जिसमें शिक्षा, सरकारी कामकाज, संचार माध्यमों आदि का काम हो सके। भोजपुरी मानकीकरण की मुख्यतः दो प्रकार की धारा रही है। एक धारा का मानना है कि भोजपुरी एकदम गंवारू रूप में लिखी जानी चाहिये। इसके बोलचाल के ठेठ स्वरूप को किसी हाल में नहीं छोड़ा जाना चाहिये। इस धारा के हिसाब से 'श', 'ष', 'क्ष', 'त्र', 'ज्ञ' जैसे अक्षरों या संयुक्ताक्षर का प्रयोग नहीं होना चाहिये। इस विचारधारा को मानने वालों में हवलदार त्रिपाठी सहृदय, रासबिहारी पांडेय, अवधबिहारी कवि प्रमुख हैं। भोजपुरी में इस धारा को न के बराबर समर्थन मिला।

दूसरी धारा भोजपुरी में बदलते समय के अनुसार बदलाव की पक्षधर रही है। इस धारा के अनुसार कुछ लोगों का आग्रह रहता है कि भोजपुरी जैसे बोली जाती है, एकदम वैसे ही लिखी जाए। यह विचार भोजपुरी के हित में नहीं है। यहाँ इस बात का हरदम ध्यान रखना चाहिए कि बोली और भाषा में हमेशा अंतर रहता है। दुनिया की कोई भाषा जिस तरह बोली जाती है एकदम उसी तरह लिखी नहीं जाती है। अब भोजपुरी बोली भर नहीं रह गई है। यह अब सिर्फ गीत-गवनई की भाषा नहीं रह गई है। अब यह विचार और शास्त्र की भाषा बन चुकी है, जल्दी ही शासन-प्रशासन, ज्ञान-विज्ञान आदि की भी भाषा बनेगी। ऐसी स्थिति में इसके लिये देवनागरी लिपि का कोई अक्षर, संयुक्ताक्षर या मात्रा को छोड़ना ठीक नहीं होगा। इससे अभिव्यक्ति में कठिनाई होगी।

जिस चीज के लिए भोजपुरी में शब्द है बेहिचक उसे अपनाना चाहिए परन्तु हिन्दी, अंग्रेजी तथा अन्य किसी भाषा के शब्दों का भोजपुरीकरण करने के फेरे में उसकी वर्तनी बिगड़ना ठीक नहीं है। जरूरत पड़ने पर दूसरे भाषा के शब्दों को बेहिचक अपनाना चाहिये। इससे भोजपुरी समृद्ध होगी। बंगला, मैथिली आदि ने यही किया है। इससे भोजपुरी का विकास होगा। अंग्रेजी की समृद्धि का एक कारण यह भी है कि उसने अपनी जरूरत के मुताबिक किसी भाषा के शब्दों को अपना लेती है। लाठी, धोती, समोसा, गर्दा उड़ गइल- जैसे बहुत से शब्द इसके उदाहरण है। शुद्धतावादी दृष्टिकोण से हिन्दी को बहुत नुकसान हुआ है। खांटी भोजपुरी के आग्रह से बचना चाहिये। जब भोजपुरी को हर तरह की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाना है तो मुखसुख, स्थानीय प्रयोग आदि के आग्रह से ऊपर उठना होगा। अंग्रेजी सहित सभी भाषाओं का स्थानीय रूप है परन्तु उस हिसाब से लिखे नहीं जाते हैं। भू-मण्डलीकरण के दौर में इण्टरनेंट तथा अन्य नए-नए आविष्कार के प्रयोग, सूचना क्रांति से जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समृद्धि बढ़ेगी। इससे भोजपुरिया समाज के आचार--विचार, व्यवहार, जीवन-मूल्यों आदि में बदलाव होगा। चूँकि भाषा सामाजिक विकसित होती है। इसलिए समाज में हो रहे बदलावों के हिसाब से भोजपुरी को अपने-आप को ढालना पड़ेगा। इस समय समाज में कई एक कारणों से एक जगह से दूसरे जगह आना-जाना, सम्पर्क बढ़ रहा है। इसका प्रभाव भाषा पर भी पड़ता है। नहीं चाहने पर भी एक भाषा दूसरी भाषा से प्रभावित होती है। प्रत्येक भाषा का एक ग्राम रूप और एक शिष्ट रूप होता है। अब भोजपुरी सिर्फ गंवार लोगों की भाषा नहीं रह गई है। इसलिए मूर्खतापूर्ण, संस्कारहीन आदि बातों को असली भोजपुरी नहीं माना जाना चाहिये। इसे बोलने वाले हर तरह के लोग हैं।

संदर्भ ग्रंथ

AKIRA NAKANISHI (1990). *Writing Systems of the World.* Tuttle Publishing. pp. 68–. ISBN 978-0-8048-1654-0.

"Bhojpuri - definition of Bhojpuri in English". Oxford Dictionaries.

Bhojpuri at Ethnologue (18th ed., 2015)

Bhojpuri Ethnologue World Languages (2009)

"Bhojpuri" (in English). Ethnologue. तारीख 2016-10-18 के उतारल गइल

"Census of India: Abstract of speakers' strength of languages and mother tongues –2001". Censusindia.gov.in. Date : 2016-10-18

DINESCHANDRA SIRCAR (1966). *Indian Epigraphical Glossary.* Motilal Banarsidass Publ. pp. 56–. ISBN 978-81-208-0562-0.

KING, CHRISTOPHER R. (1995). *One Language, Two Scripts: The Hindi Movement in Nineteenth Century North India.* New York: Oxford University Press.

L.S.S. O'MALLEY (1 /1/ 2007). *Bihar And Orissa District Gazetteers : Saran.* Concept Publishing Company. pp. 40–. ISBN 978-81-7268-136-4.

NORDHOFF, SEBASTIAN; HAMMARSTRÖM, HARALD; FORKEL, ROBERT; HASPELMATH, MARTIN, संपा० लोग (2013). *"Bhojpuric".* Glottolog 2.2. Leipzig: Max Planck Institute for Evolutionary Anthropology.

"Nepal - Maps" (in English). Ethnologue. तारीख 2016-10-18 के उतारल गइल

PRADYOT KUMAR MAITY (1989). *Human Fertility Cults and Rituals of Bengal: A Comparative Study.* Abhinav Publications. pp. 34–. ISBN 978-81-7017-263-5.

SAROJA AGRAVĀLA (2004). Hindī ke janajātimūlaka upanyāsoṃ kī samājañśtrīya cetanā aura usakā aupanyāsika pratiphalana. Star Publications. pp. 115–. ISBN 978-81-85244-86-0.

कैरेबियन हिन्दुस्तानी at Ethnologue (18th ed., 2015)

ग्रियर्सन, जार्ज अब्राहम (1903)-*Linguistic Survey of India*, Vol. V, Part-2 [भारत क भाषा वैज्ञानिक सर्वे, खण्ड-5, भाग-2] (in English) कलकत्ता : गवर्नमेंट प्रेस, पृष्ठ संख्या 40

उपाध्याय, कृष्णदेव -*भोजपुरी लोकगीत,* इलाहाबाद : हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रेस, पृष्ठ संख्या 12

वाजपेयी, आचार्य किशोरीदास -*हिन्दी शब्दानुसान,* बनारस : नागरी प्रचारिणी सभा

त्रिपाठी, हवलदार -*व्युत्पत्ति मूलक भोजपुरी की धातु और क्रियाएँ*

भोलानाथ, तिवारी- *हिन्दी भाषा का इतिहास,* दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 107

रामविलास, शर्मा (1/9/2008) -*भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी,* भाग-1, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 189, ISBN 978-81-267-0352-4.

खबर प्रभात (2016/05/12) -*ढूँढने से भी जिले में नहीं मिल रहे कैथी लिपि के अनुवादक* (Prabhatkhabar.com)

कैथी लिपि का प्रशिक्षण शिविर 11 जुलाई से (Bhaskar.com)

भोजपुरी भाषा और साहित्य, पृष्ठ संख्या 252

भोजपुरी के काव्य और कवि, पृष्ठ संख्या 18

इमे भोजा अङ्गिरसो विरूपा दिवस्थुत्रासो, असुरस्थ वीराः। विश्वामित्राय ददतो मघानि सहस्त्रासावे प्रतिरन्तु आयुः। -ऋग्वेद, 3/53/7 (हे इन्द्र! यह भोज और सुदास राजा की ओर से यज्ञ करते हैं। यह अङ्गिरा, मेधातिथि आदि विविध रूप वाले हैं। देवताओं में अत्यन्त बली रूद्रोत्पन्न, मंरूदगण अश्वमेध यज्ञ से मुझ विश्वामित्र का महान धन दे और अन्न बढ़ावे।)

अङ्गिका और भोजपुरी भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ संख्या 5

लिग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया, जिल्द-5, खण्ड-2

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,40-43**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 04 फरवरी 2017

राष्ट्रभाषा के अमर शिल्पी

प्रो0 अंजली श्रीवास्तव*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *राष्ट्रभाषा के अमर शिल्पी* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *अंजली श्रीवास्तव* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इस छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध प्रपत्र आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

सारांश

किसी भी राष्ट्र का अस्तित्व उसकी कुछ विशिष्टताओं से जीवित रहता है और उन विशेषताओं में संस्कृति, सभ्यता, आचार–विचार की तरह राष्ट्र भाषा का भी एक प्रमुख स्थान है क्योंकि भाषा की अपनी एक शक्ति होती है जो उस राष्ट्र की जीवन धारा को प्रभावित किये बिना नहीं रहती। राष्ट्र की बुनियाद राष्ट्र की भाषा है। नदी, पहाड़ और समुद्र राष्ट्र नहीं बनाते। भाषा ही वह बंधन है, जो चिरकाल तक राष्ट्र को एक सूत्र में बांधे रखती है और इसे बिखरने, विखंडित और विभाजित होने से रोकती है।

अंग्रेजों ने भारतवासियों को राजनैतिक दृष्टि से ही गुलाम नहीं बनाया था बल्कि गुलामी का पंजा मानस जगत पर भी कसा था और यही कारण था कि जो लोग राष्ट्रभाषा के विकास में अपनी प्रतिभा का उपयोग कर सकते थे वे ही उसके विरोधी हो गये और परिणाम यह हुआ कि हिन्दी भाषा केवल बोलचाल की भाषा बनकर रह गई । १८५७ के बाद जब राष्ट्रीय चेतना जाग्रत हुई तो राष्ट्रवादी लोगों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ और तभी से आरम्भ हुई हिन्दी के विकास की प्रचंड यात्रा।

बाबू श्यामसुन्दर दास; हिन्दी की विकास यात्रा के समर्थ संवाहक थे– बाबू श्यामसुन्दर दास। १८९३ में अपने साथियों के साथ मिलकर नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना की। इस सभा का कार्य था पुराने ग्रन्थों को खोज कर प्रकाश में लाना। तुलसी, सूर, कबीर, जायसी आदि कवियों की प्रमाणिक ग्रंथावलियाँ उन्होंने तैयार करवायीं तथा तुलसीकृत रामचरितमानस को प्रकाशित कराया। चन्दवरदाई का लिखा हुआ 'पृथ्वीराज रासो' सर्वप्रथम उन्होंने ही प्रकाशित कराया। हिन्दी भाषा को उनकी तीन अमूल्य देन ऐसी हैं जिन्हें कभी विस्मृत नहीं किया जा सकेगा। पहली बार उन्होंने हिन्दी का प्रमाणिक शब्दकोश तैयार कराया और चार खण्डों में 'हिन्दी शब्दसागर' के नाम से प्रकाशित कराया, इस शब्दकोश में एक लाख शब्द हैं। दूसरा कार्य उन्होनें पं. रामचन्द्र शुक्ल से लिया। शुक्लजी उस समय मिर्जापुर में ड्राइंग मास्टर थे। बाबू साहब ने उन्हें हिन्दी साहित्य

* सहायक प्राध्यापिका, अर्थशास्त्र विभाग, शासकीय महाराजा महाविद्यालय, छतरपुर (मध्य प्रदेश) भारत

© लेखक 2017, एम0पी0ए0एस0वी0ओ0 मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहासंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

का इतिहास लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। तीसरा कार्य उन्होंने पं. कामता प्रसाद गुरु से करवाया वह था– हिन्दी भाषा का व्याकरण। इस प्रकार एक साथ तीन ऐतिहासिक कार्यों के प्रेरणा केन्द्र रहकर भी उनका श्रेय स्वयं किंचिन्मात्र भी नहीं लिया। स्वयं बाबू साहब सिद्ध हस्त लेखक थे। उन्होंने साहित्यलोचन, भाषा–विज्ञान, हिन्दी भाषा और साहित्य आदि मौलिक कृतियाँ लिखीं। उन्होंने पं. मदनमोहन मालवीय के नेतृत्व में एक ऐसा आन्दोलन भी चलाया जिसमें कचहरी और राजकाल की भाषा के रुप में हिन्दी को भी मान्यता मिली।'

स्वामी श्रद्धानन्द; मातृभाषा हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बनाने वाले वह प्रथम व्यक्ति थे। उन्होने 'गुरुकुल कांगड़ी' की स्थापना की। हिन्दी माध्यम द्वारा शिक्षा देने का यह सफल प्रयोग था। उन्होने बड़े–बड़े शिक्षा शास्त्रियों के दिल से इस बात को निकाल दिया कि हिन्दी के माध्यम से विज्ञान की उच्च शिक्षा नहीं हो सकती। गुरुकुल के अनेक स्नातकों द्वारा विज्ञान, दर्शन तथा इतिहास विषय के मौलिक ग्रन्थों की रचना की गई, साथ ही पारिभाषिक शब्दों का निर्माण किया गया। वहाँ के अनेक विद्यार्थी समय मिलने पर दक्षिण में हिन्दी का प्रचार करने जाते थे। 'श्रद्धा' मासिक पत्रिका के प्रथम अंक में उन्होंने लिखा– ''मैं देवनागरी लिपि को संसार की सब लिपियों का स्त्रोत और मनुष्य के लिए स्वाभाविक मानता हूँ।'' उन दिनों पंजाब में उर्दू का प्रचार बहुत अधिक था, उर्दू वहाँ की जन भाषा हो गई थी। अत: उन्होंने सबसे पहले अपने निवास स्थान जालंधर से ही हिन्दू संस्कृति और हिन्दी का प्रचार कार्य आरम्भ किया। उच्च पदस्थ और प्रसिद्ध व्यक्ति होते हुए भी वे हिन्दी के प्रचार के लिए जालन्धर की गलियों में प्रात:काल इकतारा बजाकर भजनों और दोहों द्वारा प्रचार करते थे। ऐसी थी उनकी लगन। १९१३ में उन्हें भागलपुर में होने वाले चौथे हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सभापति बनाया गया। अपने भाषण में स्वामी जी ने कहा– "हमारी सभ्यता के तीन प्रधान चिन्ह हैं– अहिंसा, मातृशक्ति का सत्कार और ब्राह्मणत्व। ये तीन गुण पराई भाषा द्वारा विकसित नहीं हो सकते।''

बालकृष्ण भट्ट; हिन्दी के पुनरुत्थान काल में भट्ट जी का नाम उस देदिप्यमान नक्षत्र की तरह लिया जाता है जिसका प्रकाश धरती पर वर्षों में पहुँचता है, परन्तु उसकी दीप्ति में दिनों दिन प्रखरता आती रहती है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक पूरे के पूरे युग को भारतेन्दु–युग के नाम से जाना जाता है और भट्ट जी उस काल के लौह–स्तम्भ कहे जाते हैं। उस समय, जबकि हिन्दी भाषा का कोई स्वरुप नहीं बन पाया था। वह चन्द प्रान्तों के गँवई निवासियों की भाषा थी, वह समय हिन्दी जगत में साहित्य सृजन और पत्रकारिता के विकास में नींव रखने की अवधि थी, भट्ट जी ने १८८२ में हिन्दी–प्रदीप नामक एक मासिक पत्र निकाला। इस पत्र के माध्यम से उन्होंने राष्ट्रभाषा और राष्ट्रभक्ति का निर्भीकता से प्रचार किया।

आचार्य रघुवीर; राष्ट्रभाषा हिन्दी के अनन्य शिल्पी, भारतीय संस्कृति के अनन्य उपासक आचार्य रघुवीर ने अपने जीवन काल में चार लाख नये शब्दों की रचना कर हिन्दी को समृद्ध करने का गौरवशाली कार्य पूरा किया। अनेक ग्रन्थ जो भारतवर्ष में लुप्त हो चुके थे उन्हे यूरोप और एशिया से लाकर उनका अनुवाद, सम्पादन और प्रकाशन का बड़ा भारी कार्य, जो कोई बड़ी संस्था भी नहीं कर सकती थी, उतना आपने अकेले किया। उन्होंने १९०६ में 'सरस्वती विहार' की स्थापना की और इसके माध्यम से भारतीय संस्कृति की रक्षा और हिन्दी भाषा के विकास और प्रसार का कार्य किया।

रामवृक्ष बेनीपुरी; हिन्दी के साहित्यकारों में रामवृक्ष बेनीपुरी का अपना एक स्थान है, शब्द शिल्पी के रुप में। हिन्दी साहित्य में उनकी जोड़ का कोई शब्द शिल्पी नहीं मिलता। मैथिलीशरण गुप्त उनकी लेखनी के लिए कहा करते थे– 'वह लेखनी नहीं जादू की छड़ी है जिससे वह पाठकों पर मोहन मंत्र फूँक देते हैं। बेजोड़ शब्द शिल्पी हैं बेनीपुरी जी।'

पं. पद्मसिंह शर्मा; आप साहित्य सेवियों के निर्माता थे। उन्होने परिचयहीन रहकर निष्काम साधना को अधिक महत्व दिया। रेखाचित्र और संस्मरण इन दो विधाओं का प्रवर्तन हिन्दी में उन्हीं ने किया। महाकवि अंकर उनके लिए कहा करते थे– 'स्वयं को पीछे रखकर किसी को आगे बढ़ा देने की कला कोई शर्मा जी से सीखे। स्वयं चार–चार भाषाओं के प्रकाण्ड पंडित होते हुए भी वे अपने से कम सामर्थ्यवान की प्रशांसा कर उसे अपने से अधिक यशस्वी बनाने में पीछे नहीं रहते थे।

श्रीरंगम रामास्वामी श्रीनिवास राघवन; दक्षिण भारत में पैदा होकर भी हिन्दी भाषा के प्रचार प्रसार में अनूठा योगदान देने वाले हिन्दी भक्त राघवन जी के नाम से विख्यात हुए। उन्होंने एक भाषा के सूत्र में उत्तर–दक्षिण को बांधने का महत्वपूर्ण काम हाथ में लिया। दिल्ली में १९४८ में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की एक शाखा स्थापित की और अहिन्दी भाषी प्रदेशों के भाई–

बहिनों को हिन्दी सिखाने का कार्य आरम्भ किया। वे वर्षों तक इस समिति के कोषाध्यक्ष रहे और उन्होने अपनी शाखा को पूर्णरुपेण आत्मनिर्भर व स्वायत्त सम्पन्न बना कर ही दम लिया। १४ सितम्बर को 'हिन्दी दिवस' के रुप में मनाने की प्रथा का प्रचलन भी उन्हीं ने किया।

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध जी'; हरिऔध जी को हिन्दी भाषा के उत्थान और विकास का अग्रदूत कहा जाता है। हिन्दी भाषा के प्रचार–प्रसार से लेकर उसका मौलिक स्वरुप निखारने तक में उनका बड़ा योगदान रहा। उस समय हिन्दी पाठकों की संख्या नगण्य ही थी। ऐसी स्थिति में सर्वसाधारण तक अपनी आवाज पहुँचाना बहुत दुष्कर कार्य था। हिन्दी भाषा के प्रचार और सामाजिक चेतना के जागरण इन दो कार्यों को उन्होंने एक ही प्रकार के प्रयास से बड़े अद्‌भुत ढंग से साधा था। १९१४ में उनकी सर्वोत्कृष्ट 'प्रिय प्रवास' प्रकाशित हुई। हिन्दी साहित्य में इसकी प्रतिष्ठा भागवत के समकक्ष की गई है। सभी समस्याओं, कष्ट, कठिनाइयों का एक अचूक निदान भगवद् प्रेम बताकर उन्होंने सर्वसाधारण के सामने एक अपूर्व सुझाव रखा है। समाज में व्याप्त कु–रीतियों, बाल–विवाह, वृद्ध–विवाह जैसे विषयों पर उनकी चुनी हुई कविताओं का संकलन 'काव्योपवन' ने उन्हें महाकवि के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया।

महावीर प्रसाद द्विवेदी; हिन्दी आज जिस परिष्कृत रुप में बोली और लिखी जाती है उसका बहुत कुछ श्रेय महावीर प्रसाद द्विवेदी को है। वे इलाहबाद की सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'सरस्वती' का सम्पादन करने लगे। उन्होंने स्वयं बहुत कुछ लिखा। दूसरे के लिखे को संशोधित और परिष्कृत किया। उन्होंने सबसे बड़ा काम यह किया कि अगणित नवोदित लेखकों को मार्गदर्शन एवं प्रोत्साहन देकर नौसिखिये से आगे बढ़ते हुए महान साहित्यकार बनाया। वे रद्‌दी में डाले जा सकने वाले लेखों को अपनी कलम से दुबारा लिखकर उन्हें साहित्य में ऊँचा स्थान मिलने योग्य बनाया करते थे और उनके लेखकों को व्यवहारिक रुप से यह बताया करते थे कि उनसे कहाँ भूल हुई, क्या कमी रही और किन बातों का समावेश आवश्यक है। इस प्रकार वे बिना विद्यालय खोले हुए भी 'सरस्वती' के कार्यालय में बैठकर सहस्त्रों नव–युवकों को राष्ट्र के भावी साहित्य निर्माता बनाने में लगे रहे। उनकी यह देन इतनी बड़ी है कि उसे कभी भुलाया नहीं जा सकेगा।

राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन; टंडन जी मानते थे कि किसी जाति की संस्कृति और सभ्यता की मुख्य प्रतीक और संवर्द्धनकर्ता वहाँ की भाषा होती है, इसलिए उन्होंने अपना समस्त जीवन भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी की पुष्टि और वृद्धि में लगा दिया। उनके परिश्रम तथा प्रभाव से जितने हिन्दी लेखक बने तथा हिन्दी ग्रन्थ कर्ताओं ने सहायता प्राप्त की, उनकी गिनती कर सकना सम्भव नहीं है। उनकी चर्चा करते हुए बिहार के श्रेष्ठ साहित्यकार श्री शिवपूजन सहाय ने लिखा था– 'राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन हिन्दी के लिए जिये और हिन्दी के लिए मरे। हिन्दी उनकी जिन्दगी की साँस थी। हिन्दी उनकी आँखों की ज्योति थी। हिन्दी ही उनके मस्तिष्क की चिन्तनधारा थी। अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के वे जनक, संरक्षक और सजग प्रहरी थे। उन्होंने उसके माध्यम से हिन्दी के हितार्थ जो प्रचारात्मक और रचनात्मक कार्य किये और कराये वे एतिहासिक महत्व के हैं।

स्वामी भवानी दयाल संन्यासी; स्वामी भवानी दयाल संन्यासी उन भारतीय देशभक्तों में से हैं जिनका जन्म दक्षिण अफ्रीका में हुआ किन्तु उन्होंने भारत को ही अपनी मातृभूमि समझा और उसी की सेवा में अपना सारा जीवन लगा दिया। उन्होंने प्रवासी भारतीयों पर अंग्रेजों द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों को देखा और समझा कि दक्षिण अफ्रीका में रह रहे प्रवासी भारतीयों के बीच कोई एक भाषा नहीं है इसलिए वे अत्याचार के विरुद्ध संगठित होकर मुकाबला करने में असमर्थ हैं। अत: स्वामी भवानी दयाल बारह वर्ष की आयु में हिन्दी पढ़ने के लिए भारत आ गये क्योंकि वहाँ हिन्दी पढ़ने की कोई व्यवस्था नहीं थी। भारत में हिन्दी विषय में अच्छी योग्यता प्राप्त करने के बाद वे दक्षिण अफ्रीका लौटे। वहाँ उन्होंने बच्चों को हिन्दी शिक्षा देने के लिए पाठशालायें खुलवाईं। प्रौढ़ों को हिन्दी शिक्षा देने के लिए पाठ्यक्रम चलाया। रात्रि शालायें खोलीं। उन्होंने हिन्दी में बड़ी ही रोचक, शिक्षाप्रद एवं राष्ट्रीय भावों से ओत–प्रोत छोटी–छोटी पुस्तकें लिखीं, ये पुस्तकें बच्चों को नि:शुल्क वितरित की जाती थीं। उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में कई हिन्दी संस्थाओं की स्थापना की।

देवकीनन्दन खत्री; उन्होंने हिन्दी साहित्य की सेवा के साथ हिन्दी के प्रचार–प्रसार में, उसे लोकप्रिय बनाने में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की। चौबीस भाग में प्रकाशित उनके उपन्यास 'चन्द्रकान्ता सन्तति' को लोगों ने इतना पसंद किया और उसकी इतनी चर्चा हुई कि जो लोग हिन्दी नहीं जानते थे उन्होने खत्री जी का उपन्यास पढ़ने के लिए हिन्दी सीखी।

भाषा में किसी जाति या राष्ट्र की संस्कृति निहित रहती है। विचारों और आदर्शों का स्पष्टीकरण उस राष्ट्र की भाषा के माध्यम से होता है। प्रत्येक राष्ट्र के अपने वीर पुरुष हुए हैं। जिनके कार्यों का विषद् वर्णन उस राष्ट्र की भाषा में होता है। जब कोई व्यक्ति इन व्यक्तियों के चरित्र की श्रेष्ठता के विचार बार बार पढ़ता है तो चुपचाप उसी प्रकार के संस्कार, उन्ही विचारों में विश्वास और उन्ही आदर्शों या संस्कृति की ओर उसका झुकाव होता जाता है। भाषा कोरी भाषा मात्र नही है वरन वे तो जीते जागते विचार हैं जो चेतना से चिपक जाते हैं और चरित्र को मोड़ डालते हैं ।

भारत की अतीत कालीन संस्कृति और मानवीय गुणों के विकास के लिए देववाणी संस्कृत और राष्ट्रवाणी हिन्दी की अति आवश्यकता है। इन भाषाओं में आर्य जाति के पुनीत आदर्श, मानवी गुणों के विकास और अच्छे संस्कारों के निर्माण के लिए प्रचुर ज्ञान सम्पदा भरी पड़ी है। सभ्य और सुसंस्कृत बनने का मार्ग, संस्कृत और हिन्दी साहित्य का अध्ययन है।

पारस्परिक संवाद का माध्यम भाषा है। भाषा ही वह सूत्र है जो जनों को आपस में पिरोकर एक सुन्दर मोतियों की माला बनाती एवं समाज और राष्ट्र का निर्माण करती है। इतना ही नहीं भाषा राष्ट्र की एकता को अक्षुण्ण रखने एवं निरंतर राष्ट्र जनों में पारस्परिक संवाद, एकता और भाईचारा बनाये रखने का कारण है। राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन ने १ जुलाई १९६२ को शरीर त्याग के अवसर पर कहा था– ''आज हिन्दी संविधान द्वारा राज्य भाषा बन जाने पर भी अपने मौलिक अधिकारों से वंचित है; पर वह दिन भी आयेगा जब काशी से कन्याकुमारी और गुजरात से नेफा की पहाड़ियों तक उसकी गरज सुन पड़ेगी, क्योंकि वही एक ऐसी भाषा है जिसमें हमारे विशाल देश के कोटि–कोटि निवासियों को एक सूत्र में बांधने की शक्ति है।''

संदर्भ सूची

विश्व वसुधा जिनकी सदा ऋणी रहेगी –पं. श्रीराम शर्मा आचार्य
मरकर भी अमर हो गये जो – पं. श्रीराम शर्मा आचार्य
हमारी संस्कृति : इतिहास के कीर्ति स्तम्भ –पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय
महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन (प्रसंग–१) –पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय
युग क्रान्ति, विचार क्रान्ति
भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्व –पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,44-46**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 17 फरवरी 2017

मीडिया में पेड न्यूज़ का बढ़ता प्रभाव

कमल चौहान*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *मीडिया में पेड न्यूज का बढ़ता प्रभाव* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र का लेखक मैं *कमल चौहान* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैंने शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा जाता है, लेकिन आज मीडिया एक गंभीर संकट के दौर से गुजर रहा है। ये संकट है पेड न्यूज का। पेड न्यूज के कारण आज मीडिया की विश्वसनीयता पर संकट आ गया है। मीडिया पर पैसे देकर खबर छापने के आरोप लग रहे हैं, और मीडिया अपने पाठकों के विश्वास के साथ खिलवाड़ कर रहा है। पेड न्यूज के कारण मीडिया की चारों तरफ आलोचना हो रही है। खास तौर से पिछले लोकसभा चुनावों के दौरान और फिर कुछ राज्यों में विधानसभा चुनाव के दौरान मीडिया ने खूब पेड न्यूज छापे, वो भी ऐसे समय में जब चुनावों के दौरान जनता को सही जानकारी की सख्त आवश्यकता होती है।

पेड न्यूज का संकट

उदारीकरण के दौर में मीडिया संगठनों ने पैसे कमाने की नई तरकीब खोज ली, जो अखबारों की विश्वसनीयता पर सवालिया निशान लगाती है। इस तरकीब का नाम है पेड न्यूज। नोट के बदले खबर छापने का काम क्षेत्रीय भाषा के साथ–साथ हिन्दी अखबारों में ज्यादा हुआ, लेकिन अंग्रेजी अखबार भी इससे अछूते नहीं हैं। अखबार पैसे लेकर नेताओं, कार्पोरेट कंपनियों, फिल्मी सितारों आदि के विज्ञापनों को समाचार की शक्ल में छापने लगे हैं। यानी ऐसी खबर जिसे छापने के लिए अखबार प्रबंधन ने पैसा लिया हो, वो पेड न्यूज है। दरअसल ऐसी खबर जिसे पैसे देकर कोई भी खरीद सकता हो, या छपवा सकता हो पेड न्यूज कहलाती है। इसमें सबसे सुविधानजनक बात ये है, कि इस खबर को भी पाठक उतनी ही विश्वसनीयता से पढ़ेंगे, जितनी कि वो अन्य खबरों को पढ़ते हैं। पेड न्यूज की परिभाषा की बात करें, तो ''जिस प्रवृति को पेड न्यूज कहा गया है, उसका मतलब संपादकीय सामग्री के स्थान पर छपी या दिखाई गई उस सामग्री से है, जो देखने में तो समाचार लगे, लेकिन उसके लिए अखबार ने भुगतान लिया हो'' यानि कोई समाचार जो दरअसल विज्ञापन की तरह छपना या दिखना चाहिए, लेकिन समाचार की जगह

* शोध छात्र, जयपुर नेशनल यूनिवर्सिटी, जयपुर (राजस्थान) भारत

© लेखक 2017, एम0पी0ए0एस0वी0ओ0 मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहासंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

और समाचार की तरह छपे तो उसे पेड न्यूज कहेंगे। इसे बिकी हुई खबर भी कह सकते हैं। प्रेस परिषद् ने पेड न्यूज को इस तरह से परिभाषित किया है। ''कोई समाचार या विश्लेषण अगर पैसे या किसी और तरफदारी के बदले किसी भी मीडिया में जगह पाता है, तो उसे पेड न्यूज की श्रेणी में रखा जाएगा।''

पेड न्यूज कानून अपराध से कहीं ज्यादा नैतिक प्रश्न है। हालांकि कोई मीडिया संगठन पैसे लेकर खबर छापता है, तो वो देश के किसी भी कानून को नहीं तोड़ता, लेकिन अगर मीडिया संस्थान पेड न्यूज के लेनदेन का जिक्र अपने खातों में नहीं करता, तो ऐसी स्थिति में वो आयकर कानून को तोड़ता है, और इसके लिए अखबार प्रबंधन को दोषी ठहराया जा सकता है। आमतौर पर माना जाता है, कि पेड न्यूज में सिर्फ पैसे का नकद लेन–देन किया जाता है, लेकिन बिना पैसे के भी पेड न्यूज का धंधा चलता है। कई बार कोई संपादक या अखबार मालिक किसी राजनीतिक दल के पक्ष में खबरें लिखता है, और उसे इसके बदले में राज्यसभा में भेज दिया जाता है, या कोई पुरस्कार दे दिया जाता है। यही नहीं कई बार किसी सरकारी समिति या बोर्ड का सदस्य बना दिया जाता है। कई बार पेड न्यूज का भुगतान जमीन या फ्लैट की शक्ल में या किसी अन्य तरह की छूट के रूप में भी हो सकता है। उपराष्ट्रपति हामिद अंसारी ने कहा है कि देश में आर्थिक उदारीकरण की हवा चलने के बाद बाजारवाद बहुत हावी हो गया है। इसने भारतीय मीडिया संगठनों के गुणसूत्रों (DNA) को बदल कर रख दिया है।

भारत में पेड न्यूज

हमारे देश में पेड न्यूज का जहर हालांकि बहुत पुराना तो नहीं है, लेकिन बिल्कुल नया भी नहीं। ये खेल पहले भी होता रहा है, लेकिन इस पर नजर अब जाने लगी है। ज्ञात तथ्यों के मुताबिक छत्तीसगढ़ (तत्कालीन मध्य प्रदेश) में साल १९९७ के विधानसभा चुनाव में पेड न्यूज की शुरुआत हुई। उस चुनाव में २५ हजार रुपये का पैकेज प्रत्याशी के लिए तय किया गया था, जिसमें एक सप्ताह का दौरा, तीन अलग–अलग दिन विज्ञापन के साथ मतदान वाले दिन प्रत्याशी का इंटरव्यू प्रकाशित करने का भी वादा शामिल था। इसके बाद के सालों में पंजाब, चंडीगढ़, हरियाणा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार में चुनावों के दौरान ये संस्थागत भ्रष्टाचार पैर पसारता गया। खबर के लिए भुगतान की कानूनी स्थिति साफ न होने की वजह से वजह से पेज थ्री कहे जाने वाले स्पेस में खबरें काफी समय से बेची जा रही हैं, और ये काम छिपकर नहीं किया जा रहा। परिशिष्ट में भी संपादकीय सामग्री की जगह पर प्रायोजित सामग्री को समाचार की तरह पेश करने का चलन भी सालों से चल रहा है, और अक्सर ये बात विवादों के घेरे में भी होती हैं।

हालांकि पेड न्यूज पर हुई सख्ती के बाद अब मीडिया संगठनों ने पेड न्यूज का तरीका बदल लिया है। अब चुनावों के दौरान उम्मीदवारों के पक्ष में प्रशंसात्मक खबरों के बजाय नकारात्मक या उनकी असलियत बताने वाली खबर नहीं छापने के लिए पैसे लिए जा रहे हैं। २०१४ आम चुनाव में हालांकि चुनाव आयोग ने काफी सख्ती दिखाई थी, लेकिन चुनाव आयोग ऐसे मामलों से पूरी तरह निपट पाने में नाकाम ही रहा। १९९० से पहले पेड न्यूज के काम कम थे या नहीं के बराबर थे, लेकिन जैसे–जैसे समाचार पत्रों और मीडिया में बाजारवाद हावी हुआ, उसके बाद से पेड न्यूज की व्यवस्था भी मीडिया में जड़ जमाती चली गई। पेड न्यूज भी वैश्वीकरण का ही साइड इफेक्ट माना जाता रहा है।

निष्कर्ष

पेड न्यूज पिछले २५ सालों में फली और फूली है और अधिकांश मीडिया संगठनों पर पेड न्यूज के आरोप लगते रहे हैं। हालांकि ये मामला कानूनी से ज्यादा नैतिक भ्रष्टाचार का है; क्योंकि आम जन–मानस मीडिया को ही सत्य मानकर अपनी अवधारणा बनाता है। लिहाजा न सिर्फ पेड न्यूज को लेकर सख्त कानून बनाने की जरूरत है साथ ही इसे सख्ती से लागू किए जाने की भी व्यवस्था होनी चाहिए। अन्यथा पेड न्यूज की दीमक लोकतंत्र के चौथे स्तंभ के साथ ही लोगो के विश्वास को भी चट कर जाएगी।

संदर्भ

सिंह, भूपेन (सितंबर २००९) —*मीडिया नियमन के सवाल,* समयांतर प्रेस, दिल्ली

अंसारी, हामिद (उप—राष्ट्रपति, ५ मार्च, २०१०) —*राज्यसभा में पेड न्यूज पर चर्चा के दौरान वकतव्य*

मीडिया का अंडरवर्ल्ड

पेड न्यूज पर प्रेस परिषद् द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट

रंजन, प्रमोद (२०११) —*मीडिया में हिस्सेदारी,* प्रज्ञा सामाजिक शोध संस्थान, पटना

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,47-53**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 22 फरवरी 2017

विज्ञापन में बढ़ती कामुकता/ अश्लीलता

रवि प्रकाश सिंह*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *विज्ञापन में बढ़ती कामुकता/ अश्लीलता* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र का लेखक मैं *रवि प्रकाश सिंह* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैंने शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

आजकल हर टीवी कार्यक्रमों का प्रारंभ और अंत टीवी विज्ञापन से ही होता है। जब भी हम टीवी धारावाहिक, सामाचार या फिल्में देखते हैं तो हमारा साक्षात्कार विज्ञापनों से होता है। सुबह आँख खुलते ही हम अनगिनत विज्ञापनों से घिर जाते हैं। फिर चाहे वो टूथपेस्ट हो, नहाने का साबुन हो या फिर मोबाइल फोन हम हर समय विज्ञापन की दुनिया में ही रहते हैं। अखबार खोलते ही सबसे पहले दृष्टि विज्ञापन पर ही जाती है। विज्ञापन हमारी जीवनशैली का अभिन्न अंग बन गए हैं; परन्तु अपने विज्ञापन को आकर्षक दिखाने की होड़ के चलते विज्ञापन कम्पनियाँ हर विज्ञापन में कामुकता–कामुकता परोसते नज़र आते हैं। महिला मॉडल ही नहीं वरन् पुरूष मॉडल भी कामुक भाव–भंगिमाओं में नज़र आते हैं। अपने इस लेख में मैं उस पक्ष की ओर इंगित करना चाहता हूँ जिस कारण विज्ञापनों में कामुकता की आवश्यकता होने लगी है ताकि विज्ञापन के नए पहलू को सभी के समक्ष रख सकूँ।

विज्ञापन के बारे में बात करने से पहले विज्ञापन क्या है, इसके बारे में जानना आवश्यक है। हम सभी कला के इतिहास के बारे में जानते हैं कि गुफा–चित्रों से ही कला का प्रारंभ माना जाता है। गुफा मानव अपनी भावनाओं को संप्रेषित करने के लिए ही चित्रांकन करता था। वहीं से धीरे–धीरे कला विकसित होकर आज 'विज्ञापन', एक माध्यम के रूप में हम सभी के सामने खड़ा है। कहने का तात्पर्य यह है, कि विज्ञापन एक संप्रेषण का माध्यम है जो हमें सूचनाओं व नए–नए उत्पादों से अवगत कराता है। किसी वस्तु की उपयोगिता और उसके गुण बताते हुए लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता है। लोगों/ उपभोक्ता की उत्पाद में रूचि व विश्वास जगाता है। उपभोक्ता को छूट आदि देकर उत्पाद की मांग में वृद्धि करता है। उत्पाद को स्वीकार करने व खरीदने के लिए प्रेरित करता है।

''*विलियम वेलबेकर* विज्ञापन सूचनाएँ प्रचारित करने का यह साधन है जो कि किसी व्यापारिक केन्द्र अथवा संस्था द्वारा भुगतान प्राप्त तथा हस्ताक्षरित होता है और इस सम्भावना को विकसित करने की इच्छा रखता है कि जिनके पास यह सूचना पहुँचेगी वे विज्ञापनदाता की इच्छानुसार सोचेंगे अथवा व्यवहार करेंगे।''[१]

* असिस्टेंट प्रोफेसर, नेहरू ग्राम भारती विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत। E-mail : artistrpsraja@gmail.com (आजीवन सदस्य)

© लेखक 2017, एम0पी0ए0एस0वी0ओ0 मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहासंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

ऐसा माना जाता है कि यदि किसी बात को बार–बार दोहराई जाए तो वो हमारे मन–मस्तिष्क पर अपना प्रभाव आवश्यक रूप से छोड़ देती है। यही विचार विज्ञापनों ने भी अपनाया है। विज्ञापन ही हमें जानकारी प्रदान करते हैं जिसके कारण हमें सही व गलत उत्पाद की पहचान होती है। इसलिए विज्ञापन हमारे लिए अति आवश्यक है। विज्ञापन का मूल उद्देश्य उपभोक्ता के मन पर किसी भी तरह अपने उत्पाद की छाप छोड़ना है, फिर चाहे विज्ञापन में कुछ भी दिखाया जाए परंतु उसका हेतु अपने उत्पाद की छाप छोड़ना होता है। जैसे– *हच (HUTCH)* के विज्ञापन में *चीका (CHEEKA)* कुत्ते को एक बच्चे को पीछा करते दिखाया गया है और अंत में जींगल *'Wher-ever you go our network follows'* (व्हेयर ऐवर यू गो आवर नेटवर्क फॉलोस) देकर हच के नेटवर्क की बात कही गई है। इसी प्रकार अन्य जींगल हैं– • ''मैं सिन्थाल इस्तेमाल करता हूँ। (क्या आप करते हैं?)'', • ''हमको बिन्नीज माँगता (आपको क्या माँगता?)'', • ''फेना ही लेना।'', • ''जल्दी कीजिये.....सिर्फ तारीख तक।'', • ''कोई भी चलेगा मत कहिये.....मांगिये।''[२]

विज्ञापन का उद्देश्य केवल उत्पाद बेचना नहीं बल्कि यह भी है कि उपभोक्ता को उस वस्तु की जानकारी भी दी जाए। जिस वस्तु की हमें आवश्यकता होती है उसे तो हम कहीं न कहीं से खोज ही लेते हैं पर जिन वस्तुओं की हमें आवश्यकता नहीं होती उसके बारे में देखकर या सुनकर अपना समय खराब नहीं करना चाहते। इतना ही नहीं हम तो टी.वी. का चैनल ही बदल देते हैं अगर हमें उस उत्पाद की आवश्यकता न हो तो। परंतु विज्ञापन का कार्य उत्पाद की जानकारी ऐसे लोगों तक पहुँचाना भी होता है जिन्हें उस उत्पाद की आवश्यकता नहीं लगती। विज्ञापन उत्पाद की आवश्यकता महसूस कराने का कार्य करता है। विज्ञापन हमें नए–नए उत्पादों की जानकारी देने के साथ–साथ हमारी जीवनशैली में बदलाव लाने का कार्य भी करता है।

विज्ञापन में कामुकता/ अश्लीलता विषय पर बात करने से पहले यह जान लेना भी आवश्यकता है कामुकता/ अश्लीलता का अर्थ क्या है। ऐसी भाषा या ऐसी भाव–भंगिमाए जिन्हें देखकर या सुनकर असभ्य प्रतीत हो, उन्हें हम कामुक/ अश्लील विज्ञापन कहेंगे। पर आप कहेंगे कि चित्रकला या मूर्तिकला में स्त्री को प्रकृतिक रूप में दिखाना तो कामुकता/ अश्लीलता नहीं वो तो कलाकार की अभिव्यक्ति है। सत्य है, पर विज्ञापन में किसी भी महिला को केवल उत्पाद को बेचने की दृष्टि से एक वस्तु की तरह प्रयोग करना कामुकता/ अश्लीलता कहलाती है। परन्तु विज्ञापन में केवल महिला मॉडल को ही नहीं अब तो पुरूष मॉडल को भी अश्लील भाव–भंगिमाओं के साथ दिखाया जाता है।

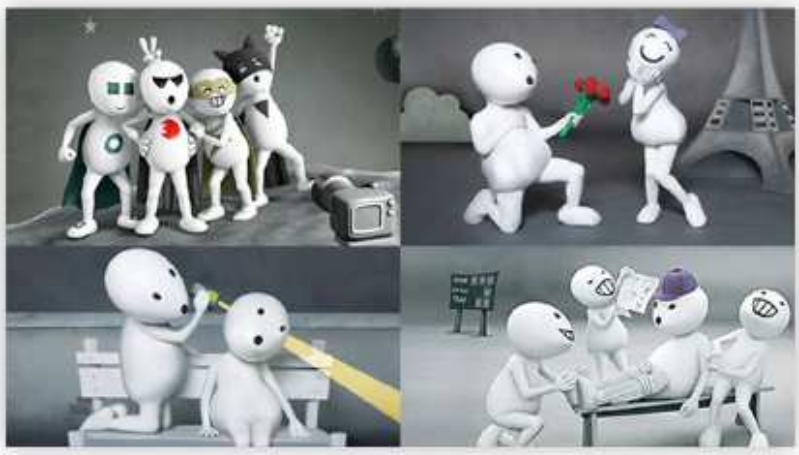

अपने उत्पाद को बेहतर व आर्कषक दिखाने के लिए नित नए–नए आविष्कार होते रहते है। जैसे– जू जू वोडाफोन, अमूल अवरली बटरली गर्ल, डिटॉल, मैगी, आदि; परंतु अपना उत्पाद को बेचने के लालचस्वरूप विज्ञापनकर्ता उत्पाद पर काम बल्कि उसकी

बिक्री के लिए अश्लीलता पर अधिक क्रय करने लगे हैं।

चाहे कोई भी विज्ञापन देख लिजिए उसमें पुरूष या महिला मॉडल कामुकता प्रचार करते ही नजर आऐंगे। हर विज्ञापन में यही दिखाने की कोशिश की जाती है कि अगर आपने इस उत्पाद को अपनाया तो महिलाए या पुरूष आपकी ओर आकर्षित होते हैं। उदाहरण के लिए अगर किसी ब्रांड का डियो लगाएगें तो महिलाएं पुरूष की ओर आर्कषित होंगी। चाहे शेव करने का ब्लेड हो, चश्मा हो, कार हो, डियोडरेंट हो, टूथपेस्ट, बनियान या सिगरेट का विज्ञापन हो, हर विज्ञापन में महिला को आकृष्ट करते हुए दिखाया जाता है।

यदि पुराने ज़माने के विज्ञापन की बात करें तो आज की तुलना में इसमें ज़मीन आसमान का अंतर आ चुका है।

''विज्ञापन ऐसी चीज है जो उत्पादन को बढ़ा देती है। उत्पादन की पहचान इससे होती है। चाहे उत्पाद कैसा भी हो। उत्पाद से जुड़ जाते हैं कलाकार, तो उनमें भी अक्स दिखने लगता है, लेकिन आजकल लगातार विज्ञापन की दुनियाँ में बदलाव आ रहे हैं। बाजार है, तो प्रोडक्ट है। प्रोडक्ट है तो विज्ञापन है। विज्ञापन है तो ग्राहक है, लेकिन अस्सी के दशक के विज्ञापनों वाली बात कहाँ?''

''जब मैं छोटा बच्चा था, बड़ी शरारत करता था, मेरी चोरी पकड़ी जाती, जब रौशन बजाज।'' इस तुकबंदी को पढ़कर आपके मुँह पर मुस्कान बिखरना अस्वाभाविक नहीं क्योंकि लम्बे समय तक बजाज का यह जिंगल लोगों के दिलो दिमाग पर छाया रहा है। बल्बों की दुनिया में असरानी सिलवानिया लक्ष्मण का विज्ञापन कुछ यूँ था– ''अरे भाई! राम–लक्ष्मण बल्ब देना। एक नहीं, छः, सारे घर के बदल डालूँगा।'' इसी तरह ''लाइफबॉय है जहाँ तन्दुरूस्ती है वहाँ।''

दरअसल, उन दिनों यानी अस्सी के दशक में अपने इकलौते दूरदर्शन पर हमाम और टीना मुनीम अभिनीत रिया साबुन के विज्ञापनों की भी धूम थी। इस दौर में कैंपा कोला के साथ ही कोल्ड ड्रिंक थ्रिल का विज्ञापन भी चर्चित रहा। इसमें रति अग्निहोत्री नाचती, गाती हुई फरमाती थी– हम–तुम और थ्रिल, गाए मेरा दिल। लिम्का का लाइम एन लेमनी लिमका जिंगल सुनकर ही मुँह में पानी आ जाता था।

विज्ञापनों की इस दुनियाँ में हाजमेदार गोली स्वाद की प्रचार पंक्तियाँ थीं – चाहे जितना खाओ, स्वाद से पचाओ।

इसी तरह लिज्जत पापड़ की ये पंक्तियाँ सबके मुँह पर थीं –सात स्वाद और सात मजे हैं, कुर्रम, कुर्रम। सर्फ के विज्ञापन में ललिता जी छाई रहीं। तो निरमा का जिंगल भी होठों पर रहता था। असल में यह वह दौर था, जब विज्ञापनों की अहमियत किसी फिल्मी गीत से कम नहीं थी; लेकिन आज बढ़ते टी.वी. चैनलों के बीच विज्ञापन जगत में भी घमासान मचा है। आज के किसी भी जिंगल में वह बात नहीं कि जुबान पर चढ़ जाए। रितिक, अमिताभ, शाहरूख, आमिर, करीना, सोनम, ऐश्वर्या, प्रियंका सहित तमाम कलाकार विज्ञापनों में भी नजर आते हैं। लेकिन हर विज्ञापन का असर कुछ दिनों तक ही रहता है और फिर लोग उन्हें भूल जाते हैं।

दरअसल, अब विज्ञापन के बोल या उनकी पंच लाइन में उतनी मेहनत नहीं की जाती। आज कम्पनियाँ यह सोचती हैं कि उनके प्रोडक्ट का विज्ञापन यदि अमिताभ, सचिन, विराट या धौनी में से कोई कर दे, तो उनकी गाड़ी चल निकलेगी। आज भी आप किसी से दशकों पुराने किसी विज्ञापन की चर्चा कर लीजिए, वह बाकायदा आपको उक्त विज्ञापन की जिंगल गाकर सुनाएगा।

आज के विज्ञापन में जल्दी से जल्दी जुबान पर चढ़ने की कोशिश होती है और वह सीधे तौर पर फिल्मों से जुड़ी होती है। जो जल्द ही सिनेमा के गानों की तरह तुरन्त जुबान पर चढ़ कर उतर भी जाता है। इसके लिये विज्ञापन कम्पनियाँ ही जिम्मेवार नहीं है बल्कि डेड लाइन फिक्स होने के कारण ऐसा होता है। अगर इसमें समय दिया जाये, तो आज भी वैसे ही विज्ञापन बनेंगे। सब जल्दी में हैं। आज एक–एक कलाकार के पास इतने एसाइनमेंट है कि वे किसी भी तरह उसे पूरा करना चाहते हैं जबकि इसी के चक्कर में पटकथा कमजोर होती जाती है और जुबान पर विज्ञापन चढ़ नहीं पाते।[३]

पहले कान्डोम का विज्ञापन आता था जिसमें दो लोगों की परछायी समुन्द्र में हाथ पकड़े बढ़ती दिखती थी और विज्ञापन खत्म हो जाता था। बच्चे समझ नहीं पाते थे और माता–पिता तक परिवार नियोजन का संदेश पहुँच जाता था। पर आज हर विज्ञापन में उत्पाद से ज्यादा यौनवृत्ति का प्रचार हो रहा है। आजकल के विज्ञापनों के प्रारम्भ से तो पता ही नहीं चलता कि आखिर है विज्ञापन किस उत्पाद का है जबतक कि उत्पाद ना दिखाया जाए।

विज्ञापनों में कामुकता दर्शाने का एकमात्र कारण यही है की आजकल की पीढी कामुकता की ओर अधिक अग्रसर होती जा रही है इसलिए विज्ञापन में भी कामुकता का ही प्रचार अधिक होने लगा है।

विज्ञापन तैयार करने से पहले विज्ञापनकर्ता के दिमाग में यह बात स्पष्ट होती है कि वह विज्ञापन किस वर्ग के उपभोक्ता के लिए बना रहा है, उसका जीवन–स्तर क्या है? उसकी आयु क्या है? वह स्त्री है या पुरूष है? उसकी शिक्षा का कैसी है? यानी शिक्षा का स्तर साधारण है या उच्च? उसकी आर्थिक स्थिति मध्यम/ निम्न/ उच्च कैसी है? जैसे, अगर किसी महिला के लिए बनाया है तो कहा जाएगा कि ''मै अपनी त्वचा के लिए कोई 'ऐसी–वैसी' क्रीम इस्तेमाल नहीं करती''। ये पंक्ति दिखने में तो साधारण सी है परंतु 'ऐसी–वैसी' शब्द का प्रयोग करके महिलाओं के मन मे अपनी त्वचा के लिए जागरूकता व अन्य उत्पादों से भय उत्पन्न करने का प्रयास किया गया है।?

विज्ञापन में आज यही दिखाया जाता है कि हमारे ब्रांड का प्रोडक्ट इस्तेमाल करने से पुरूष या स्त्री आकर्षित होते है। फिर कुछ विज्ञापन उपभोक्ता के स्तर को देखकर भी बनाए जाते है। जैसे निम्न स्तर के लोगों की मानसिकता को ध्यान में रखकर बनाए गए उत्पादों की खरीद भी जल्दी होगी। यहाँ निम्न स्तर किसी आर्थिक स्तर के लिए नहीं बल्कि मानसिकता पर कहा गया है, क्योंकि विज्ञापन का खेल मानसिकता पर प्रभाव डालना ही है। जैसे बच्चों के लिए बनाए गए विज्ञापनों की चित्र संयोजन, रंग योजना बच्चों को ललचाने के लिए की जाती है। उसी तरह बड़ो को आकर्षित करने के लिए भी उनके मानसिक स्तर के हिसाब से विज्ञापन बनाए जाते है। महिलाओं को सौंदर्य प्रसाधनों की ओर आकर्षित किया जाता है तो पुरूषों को महिलाओं की ओर, वाहनों, कार, बाइक की ओर। और ऐसे ही विज्ञापन हर स्तर, हर श्रेणी को आकर्षित करता है।

विज्ञापन का प्रयोग आकर्षण व मनोरंजन के रूप में किया जाता है कि किस प्रकार विज्ञापन को अच्छे ढंग से उपभोक्ता तक पहुँचाया जाय ताकि वो उस उत्पाद के प्रति आकर्षित हों। जैसे बच्चों के लिए बनाए गए विज्ञापन उन्हें जल्दी आकर्षित करते हैं। विज्ञापन को मुफ्त के मनोरंजन का माध्यम भी यह सकते हैं क्योंकि बहुत से विज्ञापन संदेश देने के साथ–साथ उपभोक्ताओं के मनोरंजन का भी कार्य करते हैं ताकि उपभोक्ता अधिक आकर्षित हो। इसके लिए विज्ञापनकर्ता महिलाओं के भड़कीले चित्र, शब्द, व अश्लील चित्रण का प्रयोग भी करते हैं।

अश्लील चित्रण अधिनियम के तहत विज्ञापनों में व पत्र–पत्रिकाओं में नारी अश्लील चित्रण के प्रयोग पर रोक लगा दी गई है। कुछ विज्ञापनों पर रोक लगाई गई है व कुछ विज्ञापनों का समय बदल दिया गया।

अश्लील विज्ञापन

- अश्लीलता को बढ़ावा देने में सबसे पहले टी.वी. विज्ञापन कामसूत्र १९९१ का नाम आता है। इस विज्ञापन में पूजा बेदी और मार्क रोबिन्सन को एक शॉवर में उत्तेजित अवस्था में दिखाया गया है। सबसे पहले इसे दूरदर्शन पर प्रसारित करने पर पाबन्दी लगा दी गई बाद में बाकी चैनलों ने भी इसे चलाने से मना कर दिया।
- १९९५ में जूते की कम्पनी टफ सूज्स के प्रिंट एड में तो अश्लीलता की सारी हदें पार कर दी। इसमें प्रसिद्ध मॉडल मिलिंद सोमन और मधु साप्रे को बिल्कुल नग्न अवस्था में दिखाया गया। आपत्तीजनक स्थिति में खड़े इन मॉडल के शरीर पर एक इंच कपड़े का टुकड़ा नहीं था। उनके शरीर पर अजगर को लिपटा दिखाया गया था।[४]

- विवादास्पद विज्ञापनों की लाइन में अमूल माचो, अण्डरगारमेंट्स का विज्ञापन काफी चर्चा में रहा। बाद में विज्ञापन को विज्ञापन समिति ने बैन कर दिया।

विज्ञापन को प्रतिबन्धित किये जाने का प्रमुख कारण विज्ञापन का टैगलाइन रहा। विज्ञापन की टैग लाइन था, ये तो बड़ा टाईन है। विज्ञापन में महिला एक पुरूष का अण्डरवियर धो रही है और उसको शरारत के साथ एक इशारा करते हुए दिखाया गया है। ऐसा प्रतीत होता था कि वह महिला कुछ और ही इशारे कर रही है।

यह इशारा अश्लील था। इस विज्ञापन को भारतीय इतिहास में सबसे अश्लील विज्ञापनों में से एक माना गया। हालांकि कम्पनी ने विज्ञापन के चलते सिर्फ सन् २००७, २००८ के बीच में ही २०१ करोड़ का अतिरिक्त कारोबार किया था।[५]

भारतीय प्रेस परिषद् (Press Council of India : PCI) एक संविधिक स्वायत्तशासी संगठन है जो प्रेस की स्वतंत्रता की रक्षा करने व उसे बनाए रखने, जन अभिरूचि का उच्च मानक सुनिश्चित करने से और नागरिकों के अधिकारों व दायित्वों के प्रति अभिरूचि भावना उत्पन्न करने का दायित्व निबाहता है। सर्वप्रथम इसकी स्थापना ४/७/१९६६ को हुई थी।

प्रेस परिषद्, प्रेस से प्राप्त या प्रेस के विरूद्ध प्राप्त शिकायतों पर विचार करती है। परिषद् को सरकार सहित किसी समाचार पत्र समाचार एजेंसी सम्पादक या पत्रकार को चेतावनी दे सकती है या भर्त्सना कर सकती है या निंदा कर सकती है या किसी सम्पादक या पत्रकार के आचरण को गलत ठहरा सकती है। परिषद् के निर्णय को किसी भी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती।

रूचि का अर्थ सन्दर्भ के अनुसार अलग–अलग होता है। पत्रकार के लिये इसका अर्थ है कि जिसे शालीनता अथवा औचित्य के आधार पर उन्हें प्रकाशित नहीं करना चाहिये। जहाँ एक मामले में यौन सम्बन्धी भावनाओं को भड़काने की प्रवृत्ति हो, पत्रिका में इसका प्रकाशन जनता युवा अथवा वृद्ध के लिये अवांछनीय होगा। जनरूचि को वातावरण परिस्थिति के साथ समसामयिक समाज में विद्यमान रूचि की धारणाओं के साथ परखा जाना चाहिये।

अश्लीलता का मूल परीक्षण यह है कि क्या मामला इतना अभद्र है कि यह चरित्र को बिगाड़ अथवा भ्रष्ट कर सकता है। अन्य परीक्षण यह है कि क्या प्रयुक्त भाषा और दृश्य का चित्रांकन गंदा, अश्लील, अरूचिकर अथवा कामुक समझा जा सकता है।

कोई भी कहानी अश्लील है अथवा नहीं, पत्रिका की साहित्यिक अथवा सांस्कृतिक प्रकृति और सामाजिक विषय के स्तर वस्तु जैसे कारकों पर निर्भर करेगी। एक पत्रिका अथवा समाचारपत्र के विषयगत मामले की पिक्चर का इस प्रश्न से सम्बन्ध होता है कि क्या प्रकाशित किया गया मामला जनरूचि के स्तरों सेकम है अथवा नहीं। पिक्चर जनरूचि से कम है अथवा नहीं, यह परखने के संबंद्ध कारकों में से एक पत्रिका की प्रकृति अथवा उद्देश्य होगा – क्या यह कला, चित्रकला, दवा शोध, अथवा यौन सुधार से सम्बद्ध है।

प्रेस परिषद् ने मुद्रण मीडिया में अश्लील विज्ञापनों के बढ़ते हुए उदाहरणों पर चिंता व्यक्त की। यह सेंसरशिप के विरूद्ध थी परन्तु प्रकाशन से पूर्व किसी अश्लील सामग्री की जांच हेतु निवारण सम्बन्धी उपायों का समर्थन किया गया, चूँकि ऐसे अधिकतर विज्ञापन, विज्ञापन एजेंसियों के जरिए दिये जाते हैं, परिषद् ने यह महसूस किया कि यह कार्य कठिन नहीं होगा, यदि वे एजेंसियाँ ऐसे विज्ञापनों जो कि एक औसतन नागरिक द्वारा परिवार में देखते हुए आपत्तिजनक समझा जाये, को तैयार और जारी करते समय अधिक सावधानी और समय बरतें। इन्होंने महसूस किया कि भारत की विज्ञापन एजेंसियों का संघ इन सभी विज्ञापन एजेंसियों के संरक्षक संगठन के रूप में मामले में अत्यधिक महत्वपूर्ण और सकारात्मक भूमिका निभा सकेगा और ऐसे विज्ञापन न देने में इनके सहयोग की मांग की जो कि जिनसे शीघ्र समय में देश के सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों को नुकसान पहुँचाने की सम्भावना हो। परिषद् ने समाचारपत्रों से भी अपील की कि ये विज्ञापनदाताओं से प्रत्यक्षतया अथवा विज्ञापन एजेंसियों से प्राप्त होने वाले विज्ञापनों की सावधानीपूर्वक जांच करें और अश्लील तथा आपत्तिजनक समझे जाने वाले विज्ञापनों की सावधानीपूर्वक जांच करें और अश्लील तथा आपत्तिजनक समझे जाने वाले विज्ञापनों को अस्वीकार करके आत्म संयम बरतें। अक्षेपित प्रकाशन के विरूद्ध स्वयं द्वारा बनाये गये निम्नलिखित मार्गनिर्देशों को भी इन्होंने दोहराया।

समाचारपत्रों को ऐसे विज्ञापन नहीं देने चाहिए जो कि अश्लील हों अथवा महिला को नग्नावस्था में दर्शाते हुए पुरूषों की कामुकता को उत्तेजित करे जैसे कि वह स्वयं बिक्री की वस्तु हो।

एक तस्वीर अश्लील है अथवा नहीं, यह तीन परीक्षणों के सम्बन्ध में परखा जाना चहिये, अभिधानत: –१. क्या यह अश्लील और आशालीन है। २. क्या यह केवल अश्लील लेखन का अंश है। ३. क्या इस प्रकाशन का उद्देश्य केवलमात्र से लोगों में, जिनके बीच इसे परिचालित करने का इरादा है तथा किशोरों की यौन भावनाओं को उत्तेजित करके पैसा कमाना है। दूसरे शब्दों में, क्या यह वाणिज्यिक लाभ के लिये हानिकारक शोषण है।

अन्य सम्बद्ध विचार योग्य विषय यह है कि क्या तस्वीर पत्रिका के विषयगत मामले से सम्बद्ध है। कहने का तात्पर्य यह है कि क्या इसका प्रकाशन कला, चित्रकला, दवा, शोध अथवा यौन सुधार किसी सामाजिक अथवा लोक उद्देश्य के पूर्व चिंतन की पूर्ति करता है।[६]

विज्ञापन में धीरे–धीरे अश्लीलता का चलन हो गया है। परन्तु वर्ग के आधार पर हमने ये भी जाना कि उत्पाद की बिक्री के लिए अश्लील विज्ञापनों की आवश्यकता भी है। कामुकता और ब्रांड वार के चलन की वजह से इन विज्ञापनों की आवश्यकता और भी अधिक बढ़ जाती है क्योंकि अगर अश्लील चित्रण न हो तो वो लोगों को कम आकर्षित कर पाऐंगे और जैसा कि हम जानते हैं कि विज्ञापन का एकमात्र काम ही है ग्राहक को आकर्षित करना उसे नए के प्रति जागरूक करना। इसलिए निष्कर्ष यही निकलता है कि हर विज्ञापन को देखने का सबका अपना–अपना नजरिया होता है। कोई विज्ञापन में कामुकता देखता है तो कोई उत्पाद और उसकी उपयोगिता।

संदर्भ–सूची

[1,2]*www.wikipedia.com*
[3]*www.prabhasakshi.com*
[4]*www.amarujala.com*
[5]*navbharattimes.indiatimes.com*
[6]*wikipedia.org*

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,54-58**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 31 जनवरी 2017

शिक्षा के सतत् विकास में स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा दर्शन की प्रासंगिकता

दीप्ति सजवान* एवं डॉ0 अनोज राज**

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *शिक्षा के सतत् विकास में स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा दर्शन की प्रासंगिकता* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र की लेखक दीप्ति सजवान एवं अनोज राज घोषणा करते हैं कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेते हैं, क्योंकि हमने इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देते हैं। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं हमने इसे छपने के लिये भेजा है। यह हमारी मौलिक कृति है। हम शोध प्रपत्र आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देते हैं। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देते हैं।

सारांश

स्वामी विवेकानन्द रामकृष्ण परमहंस के वास्तविक अनुयायी, भारतीय संस्कृति के पोषक, सच्चे राष्ट्र भक्त, समन्वयवादी विचारो के पोषक और जीवन पर्यन्त ज्ञान की प्यास रखने वाले विद्यार्थी रहे हैं। उनके शिक्षा सम्बन्धी विचार भारतीय शिक्षा व्यवस्था मे शिक्षक तथा शिक्षार्थी के लिये अनुकरणीय हैं। व्यवहारिक शिक्षा के सम्बन्ध में स्वामी जी के विचार प्रभावशाली रहे हैं। हम उनके शिक्षा दर्शन को कितना अपना सके हैं, यह एक आत्म चिंतन का विषय है। शिक्षा व्यवस्था मे उनके विचारों को महत्व देते हुये उनके अनुकूल परिवर्तन करना और शिक्षा का सतत विकास करना आवश्यक है।

शब्द कुन्जी: स्वामी विवेकानन्द, व्यवहारिक वेदान्त, शिक्षा की अवधारणा, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, शिक्षक, शिक्षार्थी, विद्यालय, अनुशासन, सतत् विकास हेतु संयमित जीवन।

प्रस्तावना

विद्या नाम नरस्य रूपमंधिकं। प्रच्छन्न गुप्त धनम्। विद्या भोगकारी यश: सुखकारी।। विद्या गुरूणां गुरू:।। अर्थात् विद्या मनुष्य का सुन्दर रूप है। विद्या अत्यन्त गुप्त धन है। विद्या सुखोपयोग और यशदायक है। विद्या गुरूओं की गुरू है। महान वेदान्तवादी कालजयी महापुरूष स्वामी विवेकानन्द जी विद्या रूपी इस अमूल्य धन से युक्त थे। श्री रामकृष्ण के प्रमुख शिष्य व व्यवहारिक वेदान्त के प्रणेता स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचार उनके स्वयं के दर्शन से प्रेरित है। स्वामी जी का दर्शन धर्म पर अथवा व्यवहारिक वेदान्त पर आधारित था यही कारण था कि उन्होंने अपने शिक्षा सम्बन्धी विचारों में धर्म को प्रमुख स्थान दिया।

* शोध छात्रा, शिक्षाशास्त्र विभाग, हिमगिरी जी विश्वविद्यालय, देहरादून (उत्तराखण्ड) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)
** विभागाध्यक्ष, शिक्षाशास्त्र विभाग, हिमगिरी जी विश्वविद्यालय, देहरादून (उत्तराखण्ड) भारत

© लेखक 2017, एम0पी0ए0एस0वी0ओ0 मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहासंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

भारत भूमि में सहस्त्र शताब्दियों से कई महान चिन्तक व विचारक हुये जिन्होंने शिक्षा के प्रति अपने–अपने विचार प्रस्तुत किये। परन्तु फिर भी शिक्षा का वही पुराना स्वरूप ज्यों–का–त्यों चला आ रहा है। अन्तर मात्र इतना हुआ है कि प्राचीन काल में शिक्षा का अर्थ ''सा विद्या या विमुक्तये'' था जिसमे वर्तमान समय मे परिवर्तन आया और आज शिक्षा का अर्थ ''सा विद्या या नियुक्तये'' हो गया है।

स्वामी विवेकानन्द पूर्ण मानव बनाने वाली शिक्षा का समर्थन करते थे। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में परिर्वतन की आंधियाँ तो आयी लेकिन फिर भी वर्तमान शिक्षा मानव को पूर्णता प्रदान करने में असफल है। स्वामी विवेकानन्द शिक्षा को मनुष्य के जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया मानते थे। वे मानते थे कि शिक्षा और जीवन साथ–साथ चलते है। विद्यालयी शिक्षा वास्तविक शिक्षा नहीं है।

विद्यालयी शिक्षा द्वारा बालक मात्र कुछ विषयों तक ही सीमित हो जाता है। वास्तविक शिक्षा वह है जो मनुष्य को जीवन के लिये पूर्ण रूप से तैयार करे व मानव के आन्तरिक गुणों का विकास करे। वास्तविक शिक्षा वह है जिसे मनुष्य सीखने के पश्चात् भूलता नहीं और जिसे वह भूल जाता है, वह शिक्षा नहीं है।

व्यवहारिक वेदान्त

स्वामी विवेकानन्द के दार्शनिक चिंतन पर वेद व उपनिषद् का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने भारत तथा पश्चिमी देशों में वेदान्त दर्शन को सार्वजनीन, सार्वभौमिक दर्शन के रूप में प्रचारित, प्रसारित, किया। उन्होंने वेदान्त दर्शन की पुनर्व्याख्या आधुनिक परिप्रेक्ष्य में की। स्वामी जी ने नव्य–वेदान्त दर्शन में आधुनिक पाश्चात्य वैज्ञानिक खोजों तथा समकालीन विचारों की अवहेलना नहीं की है। क्योंकि उनका विश्वास था कि आध्यात्मिक उन्नति के पूर्व देश की भौतिक उन्नति एवं समृद्धि आवश्यक है। स्वामी जी एक आदर्शवादी चिन्तक होने के साथ पकृतिवादी, यथार्थवादी, प्रयोजनवादी तथा समाजवादी चिंतक भी थे। वे प्राय: कहा करते थे मै समाजवादी हूँ। समाज के सभी व्यक्तियों को धन, विद्या और ज्ञान का उपार्जन करने के लिये समान अवसर मिलने चाहिये। जो भी सामाजिक नियम इस स्वतन्त्रता के मार्ग मे बाधक हैं वे हानिकारक हैं और उनको नष्ट करने का उपाय शीघ्रता से करना चाहिये। जिससे की सामाजिक समानता की स्थापना हो व असमानता दूर हो।

समग्र विकास के रूप में शिक्षा की अवधरणा

शिक्षा से यह अपेक्षा की जाती है कि उससे शिक्षार्थी को समग्र विकास की सामग्री मिले, जिससे शिक्षा के सत्त विकास की प्रक्रिया चलती रहे। स्वामी जी का मानना था कि ''शिक्षा मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति है।'' शिक्षा का कार्य है मानव में निहित आन्तरिक दिव्यता को विकसित कर बालक का आध्यात्मिक, सामाजिक व आर्थिक विकास करना व उन्हे शरीर से पुष्ट, विनम्र, धैर्यवान, वीर, साहसी, समाज सेवी, आत्मसंयमी व ब्रह्मचर्य धर्म पालन करने हेतु तैयार कर ध्येयवादी बनाया जाये। वास्तविक शिक्षा वही है, जिससे हम स्वयं को पहचान सकें।

सच्ची शिक्षा वही है जो विद्यार्थी को अपने आप पर विजय प्राप्त करने की सीख दे, जो आत्म चिंतन, साहस, वीरता, धीरता, सत्य, कर्म, आत्मविश्वास व नैतिक मूल्यों (सत्यम् शिवम्, सुन्दरम्) का ज्ञान दे कर बालक का जीवन निर्माण कर जीवन संघर्ष हेतु दृढ़ता प्रदान करे। बालक को इस प्रकार वीर व निर्भीक बनाया जाये कि वह संसार में इस वीर आदेश के साथ प्रवेश करे कि– ''नमयतीव गतिर: धारित्रीम्''– मानों उसके चलने से पृथ्वी दबी जा रही है।

पाठ्यक्रम

स्वामी जी मानते हैं कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में वह एक असहाय मूक प्राणी के रूप में जन्म लेता है, तथा विभिन्न विषयों के ज्ञान के द्वारा ही वह अपने को परिष्कृत करता है। उनकी मान्यता थी कि पाठ्यक्रम निर्माण का आधार धर्म व मूल्य होना चाहिये चूँकि वह मनुष्य को पूर्ण बनाने में सहयोग देते हैं, परन्तु वे पाठ्यक्रम में लौकिक विषयों को

सम्मिलित करने का समर्थन भी करते हैं। स्वामी जी ने वैदिक शिक्षा का अर्थ ''सा विद्या या विमुक्तये'' व आधुनिक शिक्षा का परिवर्तित अर्थ ''सा विद्या या नियुक्तये'' का सम्मिश्रण अपने पाठ्यक्रम में आध्यात्मिक व लौकिक विषयों के माध्यम से निम्नवत् प्रस्तुत किया है–

लौकिक पाठ्यक्रम	आध्यात्मिक पाठ्यक्रम
भाषा, विज्ञान, मनोविज्ञान, राजनीति विज्ञान, गृह विज्ञान, तकनीकी शास्त्र, उद्योग कौशल, कला, कृषि व व्यवसाय, इतिहास, भूगोल, गणित, खेलकूद, व्यवसाय।	धर्म एवं दर्शन, पुराण, उपदेश श्रवण, कीर्तन, गीत व भजन, साधु संगत।

स्वामी विवेकानन्द का मानना था कि उपर्युक्त समस्त विषय मानव को पूर्णता प्रदान करते हैं। यदि शिक्षा के पाठ्यक्रम में लौकिक विषयों को सम्मिलित किया जाये तो वह मानव का आर्थिक अथवा भौतिक विकास करने हेतु उपयोगी है और यदि आध्यात्मिक विषयों को सम्मिलित किया जाये तो वे मानव को नैतिक बल प्रदान करेंगे। जिससे की उनके आत्मबल में वृद्धि होगी। लौकिक और आध्यात्मिक पाठ्यक्रम के द्वारा ही बालक पूर्णता को प्राप्त कर सकता है।

शिक्षण विधि

स्वामी विवेकानन्द प्रचलित शिक्षण विधियों से सहमत नहीं थे। स्वामी जी की विचारधारा है कि सर्वश्रेष्ठ पद्धति ध्यान की एकाग्रता है क्योंकि इसके अभाव में किसी भी प्रकार के ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती है। स्वामी जी ने जिन शिक्षण विधियों पर विशेष बल दिया वह निम्नवत है– (i) धर्म या योग विधि, (ii) केन्द्रीयकरण विधि, (iii) उपदेश विधि, (iv) अनुकरण विधि, (v) निर्देशन परामर्श विधि, (vi) क्रियात्मक एवं व्यवहारिक विधि।

स्वामी जी धर्म या योग विधि का समर्थन करते थे क्योंकि उनका मानना था कि योग मन की शक्तियों को नियन्त्रित व एकीकृत करती है। केन्द्रीयकरण विधि के द्वारा बालक के मन को एकाग्र व केन्द्रित करना पड़ता है, जिससे उसकी चंचलता दूर हो जाये। स्वामी जी का मानना था कि यदि मुझे अध्ययन के अवसर प्राप्त हो तो मैं तथ्यों का अध्ययन न करूँ। मैं तो ध्यान करने की शक्ति और निस्पृहता का विकास करूँगा व पूर्ण साधना के द्वारा अपनी इच्छानुसार तथ्यों का संग्रह करूँगा। स्वामी जी उपदेश की विधि का अर्थ गुरू गृहवास बताते हैं। वे मानते हैं कि २५ वर्ष की अवस्था तक छात्रों को गुरूगृहवास में निवास करना चाहिये व विचार–विमर्श, तर्क–वितर्क, अंका का समाधान जैसी अनेक युक्तियाँ सीखनी चाहिये। उन्होंने सेमिनार और ट्यूटोरियल कक्षाओं पर विशेष रूप से बल दिया और अनुकरण विधि में शिक्षक को आदर्श का प्रतीक माना है जिसके द्वारा छात्र का चरित्र गठन हो सके। स्वामी जी का व्यक्तिगत निर्देशन या परामर्श शिक्षा की पूर्णता व व्यक्तित्व की पूर्णता की अनुभूति के लिये था। वह क्रियात्मक या व्यवहारिक विधियों के अन्तर्गत साधु संगति भ्रमण, सेवा–कार्य, खेल–कूद, शारीरिक शिक्षा, उद्योग, शिल्प एवं कौशलों के ऊपर बल देते थे। स्वामी विवेकानन्द ने स्वाभाविक रूप से सीखने के सिद्धान्त, स्वानुभव द्वारा सीखने तथा कर्म से ज्ञान की ओर अग्रसरित होने के सिद्धान्तों को मान्यता प्रदान की।

शिक्षक

स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षक के गुणों का वर्णन करते हुये कहा है कि अध्यापक संयमी व आत्मज्ञानी होना चाहिये। उसे धर्मग्रन्थों के सारतत्व की जानकारी होनी चाहिये। शिक्षक को निष्पाप होना चाहिये। स्वयं सत्य का ज्ञान प्राप्त कर और दूसरों को उसकी शिक्षा देने के लिये आवश्यक है कि वह हृदय से पवित्र हो जिससे उसके शब्दों का मूल्य बना रहे। उसे किसी स्वार्थवश धन के लिये या प्रसिद्धि के लिये अपने विद्यार्थी को शिक्षित नहीं करना चाहिये। बल्कि उसका भाव तो मानव–प्रेम होना चाहिये। अध्यापक को अपने विद्यार्थी के प्रति सहानुभूति रखनी चाहिये तथा बालक की प्रवृत्तियों की जानकारी होनी चाहिये। विद्यार्थी की उत्तम् वृत्तियों को सदैव प्रोत्साहित करना चाहिये। एक सच्चा शिक्षक वही है जो कुछ समय में अपने को हजारों व्यक्तियों में परिणित कर सकें। शिक्षक को सच्चे सलाहकार की भूमिका अदा करनी चाहिये। ''गुरूमुखि नांद गुरूमुखि वेद'' ध्यान से जो

ज्ञान प्राप्त होता है उसे 'नाद' तथा शास्त्रों के ज्ञान को 'वेद' कहते है। नाद तथा वेद का ज्ञान गुरू मुख से ही प्राप्त होना चाहिये।

शिक्षार्थी

स्वामी जी फ्रोबेल की भाँति बालक को शिक्षा का केन्द्र बिन्दु मानते थे। वे कहते थे कि बालक में आन्तरिक दिव्यता पायी जाती है व बालक लौकिक व आध्यात्मिक ज्ञान का भण्डार होता है। स्वामी जी बालक की उपमा एक पौधे से देते हुये कहते हैं कि जिस प्रकार बरगद के बीज में विकास करके एक बड़ा वृक्ष बनाने की शक्ति विद्यमान रहती है उसी प्रकार बालक के जीवन तत्व में बुद्धि निवास करती है। पौधे के प्राकृतिक विकास की भाँति ही शिक्षार्थी का भी अपनी प्रवृत्ति की भाँति विकास होता है।

स्वामी जी का मानना था कि बालक ब्रह्मचर्य का पालन करें। जब तक शिक्षार्थी इन्द्रिय निग्रह नही करते, उनमे सीखने के लिये प्रबल इच्छा उत्पन्न नही होती है और वे गुरू में श्रद्धा रखकर सत्य को जानने का प्रयत्न नही करते तब तक वे न भौतिक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और न आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

विद्यालय

स्वामी जी गुरू गृह–प्रणाली के समर्थक थे। परन्तु आधुनिक परिप्रेक्ष्य मे वे यह जानते थे कि अब गुरू गृह जन कोलाहल से दूर कहीं प्रकृति की सुरम्य गोद में स्थापित नही किये जा सकते इसलिये वे इस बात पर बल देते थे कि विद्यालयों का पर्यावरण शुद्ध हो और वहाँ व्यायाम, खेल–कूद, अध्ययन–अध्यापन और इन सबके साथ–साथ समाज सेवा भजन–कीर्तन एवं ध्यान की क्रियाएं भी सम्पादित हो। स्वामी जी ने विद्यालय को मठ के साथ जोड़ा है।

अनुशासन

मनुष्य जीवन के मुख्य रूप से तीन पक्ष होते हैं– प्राकृतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक। स्वामी जी इन तीनों पक्षों को महत्व देते थे, परन्तु सर्वाधिक महत्व आध्यात्मिक पक्ष को देते थे। स्वामी जी अनुशासन का अर्थ अपने व्यवहार में आत्मा द्वारा निर्दिष्ट होना मानते थे। वे कहते थे कि जब मानव अपने प्राकृतिक 'स्व' से प्रेरित होकर कार्य करता है तो हम उसे अनुशासित नहीं कह सकते हैं, जब वह अपने प्राकृतिक 'स्व' पर संयम रखकर सामाजिक 'स्व' से प्रेरित होता है तो हम उसे अनुशासित कह सकते हैं। परन्तु वास्तव में अनुशासित वह है जो आत्मा से प्रेरित होता है। स्वामी का मानना था कि यदि शिक्षक शिक्षार्थियों के सामने आत्मानुशासन का उच्च आदर्श प्रस्तुत करेंगे और फिर धीरे–धीरे वैसा सोचने और करने की विद्यार्थियों को अन्दर से प्रेरणा मिलने लगेगी व वे आत्मानुशासन की ओर बढ़ेंगे।

सतत विकास हेतु संयमित जीवन

स्वामी विवेकानन्द जी संयमित जीवन का प्रबल समर्थन करते हुये कहते थे विद्यार्थी जीवन बहुमूल्य है इस काल में संयमित जीवन शैली अपनानी चाहिये। संयम मे रहकर तथा अपने आचार–विचारों में पवित्रता लाकर किसी भी प्रकार की सफलता को प्राप्त किया जा सकता है। स्वामी विवेकानन्द जी ने ब्रह्मचर्य व्रत का प्रबल समर्थन करते हुये कहा कि ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुये कोई भी मनुष्य विभिन्न प्रकार की शक्तियों का अर्जन कर सकता है। जो शिक्षा के विकास को निरन्तरता प्रदान करने में सहयोग करेगा। स्वामी जी ने इन्द्रिय प्रशिक्षण को महत्व दिया और सह–शिक्षा का विरोध किया। स्वामी जी का मानना था कि सह–शिक्षा लक्ष्य प्राप्ति में बाधक सिद्ध होती हैं। अत: आवश्यकता है बालक की इन्द्रियों को प्रशिक्षित कर उन्हे ध्येयवादी बनाने की जिसके द्वारा शिक्षा की गतिशील प्रक्रिया सफलता पूर्वक आगे बढ़ती रहे।

निष्कर्ष

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रतिपादित शिक्षा दर्शन एक उच्च कोटि का शिक्षा दर्शन था जो मनुष्य के शारीरिक, सामाजिक, चारित्रिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक विकास के लिये आधार स्वरूप है। डॉ० काटजू ने उनसे प्रभावित होकर सही कहा है, ''हम अपने राष्ट्र सम्मान के लिये उनके ऋणी है और वही आत्म–सम्मान है जो बाद में गाँधी जी के स्वतन्त्रता आन्दोलन की नींव बनी।'' स्वामी जी ने शिक्षा की व्यापक एवं आधुनिक परिभाषा देते हुये कहा– ''शिक्षा व्यक्ति की अन्तर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति है।'' यह वेदान्त दर्शन पर आधारित विचार है। इसका अर्थ है कि मानव में ईश्वरीय पूर्णता पायी जाती है और पूर्णता की अभिव्यक्ति का नाम शिक्षा है।

स्वामी जी पुस्तकीय ज्ञान के विरोधी थे उनका मानना था कि जिस प्रकार बीज को कोई उगा नहीं सकता, केवल उगाने में उसकी मद्द कर सकता है, उसी प्रकार बालक अपना विकास स्वयं करता है। स्वामी जी प्रचलित शिक्षा प्रणाली के प्रबल विरोधी थे। उनका मन्तव्य था कि प्रचलित शिक्षा प्रणाली छात्रों को रट्टू तोता बना रही है जबकि रटने से छात्र की तार्किक शक्ति का ह्रास होता है। यह अमनोवैज्ञानिक है। इस प्रचलित परिपाटी को समाप्त किया जाना चाहिये। ऐसे गुरूओं के सानिध्य में छात्रों का विकास होना चाहिये जिनके जीवन का सिद्धान्त– ''आत्मनोमोक्षार्थ जगद्विताय च'' हो। गुरू–शिष्य का सम्बन्ध पिता– पुत्र जैसा होना चाहिये। शिक्षण प्रक्रिया में गुरू व शिष्य दोनों को योग्य होना चाहिये। स्वामी जी कहते है गुरू तो लाखों मिलते है, पर शिष्य एक भी पाना कठिन है। छात्रों को अपने गुरू को परामर्शदाता, दार्शनिक, सुहृद तथा पथ प्रदर्शक के रूप में अंगीकार करना चाहिये।

भारतीय संस्कृति के पुनरूत्थान हेतु वे शैक्षिक संस्थाओं का विकास प्राचीन भारतीय गुरूकुल प्रणाली को नवीन परिवेश देकर करना चाहते थे। वे कहते थे– ''शिक्षा का अर्थ है– गुरू गृहवास।''

निष्कर्षत: शिक्षा के प्रति भारतीय दृष्टिकोण रखने वाले, भारतीय संस्कृति के अनन्य पोषक, नव भारत के अग्रदूत, शिक्षा मे राष्ट्रवाद का प्रबल समर्थन करने वाले स्वामी विवेकानन्द जी ने जिस प्रकार अपने ओजस्वी विचारों से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को आलोकित कर भारत व पाश्चत्य जगत में क्रान्ति उत्पन्न कर दी थी। वर्तमान समय मे स्वामी जी को युवाओं के आदर्श के रूप मे प्रस्तुत कर स्वंय उनके आदर्शो का पालन करते हुये तटस्थ, अपरिवर्तनशील व ओजस्वी विचारों के धनी भारतवर्ष के वर्तमान प्रधानमंत्री नरेन्द्र दामोदर दास मोदी ने अपने कार्यो के द्वारा भारतवर्ष के साथ–साथ पाश्चात्य देशों में क्रान्ति उत्पन्न कर दी है। इन ओजस्वी विचारो के माध्यम से स्वामी जी का विचार स्मृति पटल पर उभर आता है, हर अच्छे श्रेष्ठ और महान कार्य में तीन चरण होते हैं प्रथम उसका उपहास उड़ाया जाता है। दूसरा चरण उसे समाप्त या नष्ट करने की हद तक विरोध किया जाता है और तीसरा चरण है स्वीकृति और मान्यता। जो इन तीनों में बिना विचलित हुये अडिग रहता है वह श्रेष्ठ बन जाता है और उसका कार्य सर्व स्वीकृत होकर अनुकरणीय माना जाता है। राष्ट्र को ऐसे महान विचारों की आवश्यकता निरन्तर रहेगी। शिक्षा की सतत प्रक्रिया के माध्यम से इन ओजस्वी विचारों की गरिमा को बनाया रखा जा सकता है व नये विचारों को जन्म दिया जा सकता है। स्वामी जी ने अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली का प्रबल विरोध करके वैदान्तिक साम्यवाद की भविष्यवाणी की। उनका मानव निर्माणकारी शिक्षा दर्शन शिक्षा की व्यापक एवं आधुनिक परिभाषा प्रस्तुत कर शिक्षा के सतत विकास हेतु संजीवनी का कार्य कर सकता है।

सन्दर्भ सूची

लाल, आर०बी० और तोमर, जी०सी० (२००४) –विश्व के श्रेष्ठ शैक्षिक चिंतक, मेरठ : आर०लाल० बुक डिपो, पृष्ठ संख्या ३०१
पाण्डेय, आर० (२००८) –विश्व के श्रेष्ठ शिक्षाशास्त्री, आगरा : अग्रवाल पब्लिकेशन, पृष्ठ संख्या २९१
पाण्डेय, डॉ० आर० और कपूर, डॉ० बी०(२००८) –शिक्षा के दार्शनिक आधार, आगरा : विनोद पुस्तक मन्दिर, पृष्ठ संख्या १५९
सिंह, एन०पी० (२००९) –शिक्षा के दार्शनिक आधार, मेरठ : आर०लाल बुक डिपो, पृष्ठ संख्या २४४
सिंह, डॉ० आर० और सिंह, यू० (२०१०) –शिक्षा तथा उदीयमान भारतीय समाज, आगरा : श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, पृष्ठ संख्या १२६
सक्सेना, डॉ० एस०(नवीन संस्करण) –शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार, आगरा : साहित्य प्रकाशन, पृष्ठ संख्या ६०
शर्मा, ओ०पी० (२००८) –शिक्षा के दार्शनिक आधार, आगरा : विनोद पुस्तक मन्दिर, पृष्ठ संख्या १६३

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,59-61**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 06 जनवरी 2017

स्त्री शिक्षा में संगीत

डॉ0 पौलमी चटर्जी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *स्त्री शिक्षा में संगीत* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *पौलमी चटर्जी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इस छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध प्रपत्र आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

भूमिका

स्त्री अर्थात् औरत, नारी, आधी दुनिया। कहते हैं कि समाज के सम्पूर्ण विकास के लिये स्त्रियों का विकास आवश्यक है और यह कार्य शिक्षा के माध्यम से सम्भव है। स्त्री शिक्षा में संगीत की भूमिका पर विचार करने से पूर्व स्त्री शिक्षा पर चर्चा करना समीचीन होगा।

स्त्री शिक्षा

स्त्री शिक्षा 'स्त्री' और 'शिक्षा' को अनिवार्य रूप से जोड़ने वाली अवधारणा है। इसका एक रूप शिक्षा में स्त्रियों को पुरूषों की भांति सम्मिलित करने से सम्बन्धित है, जबकि दूसरे रूप में यह स्त्रियों के लिये बनायी गयी विशेष शिक्षा पद्धति को संदर्भित करता है। भारत में मध्य और पुनर्जागरण काल के दौरान स्त्रियों को पुरूषों से अलग प्रकार की शिक्षा देने की धारणा विकसित हुई थी। वर्तमान समय में यह बात सर्वमान्य है कि स्त्री को भी उतना ही शिक्षित होना चाहिये जितना कि पुरूष को। यह सिद्ध सत्य है कि यदि माता शिक्षित न होगी तो देश की सन्तानों का कल्याण सम्भव नहीं होगा (नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति मातृ समोगुरू:)।

शिक्षा वयस्क जीवन के प्रति स्त्रियों के विकास के लिये एक आधार के रूप में विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस प्रकार स्त्री शिक्षा राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय विकास में सहायता करती है। साथ ही आर्थिक विकास तथा एक अच्छे समाज के निर्माण में भी यह सहायक है।

* भूतपूर्व शोध छात्रा, गायन विभाग (संगीत एवं मंचकला संकाय) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी एवं संगीत शिक्षिका, केन्द्रीय विद्यालय, पीलीभीत (उत्तर प्रदेश) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक 2017, एम0पी0ए0एस0वी0ओ0 मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहासंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

स्त्री शिक्षा का महत्त्व

पहले भी स्त्रियाँ पुरूषों के समान शिक्षा प्राप्त करती थीं। वह अपनी विद्वत्ता व संस्कारों के लिये प्रसिद्धि और यश प्राप्त करती थीं। किन्तु समय के साथ–साथ समाज में पुरूषवादी मानसिकता अपनी जड़ें जमाती चली गयी और स्त्रियों को दबाया–कुचला जाने लगा।

हाल के वर्षों में समाज में एक जागृति आयी है। वैचारिक स्वतंत्रता ने सामाजिक पुरूषवादी सोच की जड़ों को झकझोर डाला है और लोग स्त्री शिक्षा के महत्त्व को समझने लगे हैं। हालांकि अभी भी कुछ लोग हैं जो यह मानते हैं कि स्त्रियों का कार्यक्षेत्र घर की परिधि के भीतर ही सीमित होना चाहिये और स्त्री शिक्षा लाभ से अधिक हानि देती है। फिर भी इन नकारात्मक विचारों को दरकिनार कर स्त्री शिक्षा दिन–प्रतिदिन विकासोन्मुख हो रही है।

नारी और संगीत : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

नारी, शिक्षा और कला (विशेषत: संगीत) का सम्बन्ध नया नहीं है। आदि पाषाण युग से लेकर वर्तमान समय तक इतिहास का कोई कालखण्ड ऐसा नहीं है जब नारी ने अपनी कलाप्रियता और सृजन क्षमता का परिचय न दिया हो। पत्थरों, कौड़ियों, सीपियों, हड्डियों के आभूषण, घास–फूस व मिट्टी की कलाकृतियाँ, भित्ति चित्र एवं हर युग में रचे गये लोकगीत, उनकी धुनें और उन पर थिरकते पैर इस कहानी को स्वयं ही बयान करते हैं। इस श्रृंखला में मोहनजोदड़ो की अनाम नर्तकी, वैदिक काल की कलाकार, मंत्र रचने व गाने वाली ऋषिकाएँ, यज्ञ के समय नृत्य करने वाली स्त्रियाँ, उत्तर वैदिक काल की राजकुमारी उषा को उसकी कल्पना के राजकुमार का चित्र बनाकर दिखाने वाली चित्रलेखा, रामायण काल की उर्मिला, महाभारत काल की विराटराज की कन्या, बौद्ध व जैन काल की अनुपमा और रंभल देवी, आगे चलकर चित्रलेखा की तरह ही छवि चित्रों के लिये प्रसिद्ध चंचला, 'गीतगोविंद' की चित्रमाला की चित्रकार मनकू, मुगलकाल की साहिफा बानू, उन्नीसवीं सदी के कांगड़ा शैली के चित्रों की कलाकार पारो आदि अनेक नाम गिनाए जा सकते हैं।

वीणा, बिगुल, मृदंग बजाती प्रस्तर–मूर्तियों और उर्वशी, मेनका आदि अप्सराएँ भी आदि काल की उत्कृष्ट संगीत कला और स्त्रियों की कला मर्मज्ञता को प्रमाणित करती हैं। बाद के इतिहास में भी माधवी संगीत विशेषज्ञ थी, आम्रपाली कुशल वीणावादिका, मदुपलानी तंजौर दरबार की मुख्य गायिका। अभिनय में अवंति सुंदरी, आंतला देवी, वसंतसेना, वासवी, रूपणिका आदि नाम प्रसिद्ध हैं। लोकगीतों का विपुल भण्डार तो मुख्यत: स्त्रियों की ही देन है।

नारी और संगीत : वर्तमान अवधारणा

विभिन्न उपलब्ध तथ्यों से यह ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में नारी के कलाप्रेम व संगीत साधना को काफी प्रश्रय मिला। परन्तु मध्यकाल में पर्दा प्रथा के कारण स्त्रियों की संगीत में भागीदारी प्रभावित हुई। मध्ययुग के पश्चात् पुन: स्त्री शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया गया और उसमें संगीत को भी विषय रूप में सम्मिलित किया गया। नृत्य और संगीत में स्त्रियों की सदा से ही रूचि रही है। अत: स्त्रियाँ फिर से संगीत शिक्षा प्राप्त करने लगीं। घरानेदार संगीत शिक्षा प्राप्त करने वाली अनेक स्त्रियों ने संगीत जगत में विभिन्न विधाओं में नाम उज्जवल किया। ऐसी ही कुछ प्रमुख नारी कलाकारों के नाम इस प्रकार हैं :

१. *गायिकाएँ/ लोक गायिकाएँ;* गौहर जान, जानकी बाई, रसूलनबाई, असगरी बेगम (ध्रुपद–धमार), बड़ी मोतीबाई, केसरबाई केरकर, हीराबाई बड़ोदेकर, मोगूबाई कुर्डीकर, बेगम अख्तर (गजल), सुब्बलक्ष्मी, दामल कृष्णास्वामी पटम्माल (कर्नाटक संगीत), एम०एल० बसंतकुमारी, गंगूबाई हंगल, सिद्धेश्वरी देवी, सुमति मुटाटकर (ध्रुपद–धमार), गिरिजा देवी, किशोरी अमोनकर, प्रभा अत्रे, अन्नो खुराना (भारतीय 'ओपेरा' की अग्रणी कलाकार), सुलोचना बृहस्पति, नैना देवी, ओभा गुर्टू, अल्लाह जिलाईबाई (मांड), अकीला बानो भोपाली (कव्वाली), गुलाबबाई (नौटंकी), विंध यवासिनी देवी, तीजनबाई, शुभा मुद्गल, मालिनी अवस्थी, कौशिकी चक्रवर्ती, लता मंगेशकर इत्यादि।

२. *वादिकाएँ;* शरन रानी (सरोद), अन्नपूर्णा देवी (सितार व सुरबहार), एन० राजम् (वायलिन), कल्याणी राय (सितार), आबान मिस्त्री (तबला), बागेश्वरी देवी (शहनाई), कृष्णा चक्रवर्ती (सितार) इत्यादि।

३. *नृत्यांगनाएँ;* टी० बाला सरस्वती (भरतनाट्यम), रूक्मिणि अरूंडेल (कला–क्षेत्र की संस्थापिका), मृणालिनी साराभाई ('सृजन –संगीत' नृत्य की प्रणेता), इंद्राणी रहमान, दमयंती जोशी (कथक), शांता राव (कथकली), सितारा देवी (कथक), संयुक्ता पाणिग्रही (देवदासी नृत्य), झावेरी बहनें (मणिपुरी), कमला लक्ष्मण, ऋता देवी, यामिनी कृष्णमूर्ति, सोनल मानसिंह, उमा शर्मा (कथक), स्वप्न सुंदरी, कनक रेले (मोहिनी अट्टम), सरोजा वैद्यनाथन (गणेश नाट्यालय की संस्थापक), राधा रेड्डी (कुचिपुडि), माधवी मुद्गल (ओडिसी), शोभना नारायण (कथक) इत्यादि।

घरानेदार संगीत के अतिरिक्त संस्थागत संगीत शिक्षण के अन्तर्गत भी आज असंख्य महिलाएँ संगीत की शिक्षा ग्रहण कर रही हैं।

स्त्री शिक्षा में संगीत की भूमिका

संगीत को भावाभिव्यक्ति व व्यक्तित्व विकास का सशक्त माध्यम माना गया है। अत: स्त्री शिक्षा के एक अंग के रूप में संगीत स्त्रियों के भाव सम्प्रेषण का माध्यम तो बनती ही है, साथ ही यह स्त्रियों के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों को अधिक विकसित कर उसे विकास की दिशा में आगे बढ़ाती है।

संगीत शिक्षा स्त्री के भावों (मनोभावों) को व्यक्त करने में उसकी सहायता करती है। संगीत शिक्षा द्वारा स्त्रियों का बौद्धिक व मानसिक विकास भी सम्भव होता है और एक बौद्धिक व मानसिक रूप से सबल व संतुलित स्त्री परिवार, समाज व देश के विकास में भागीदार बन सकती है। प्राय: बौद्धिक विकास के अभाव में हमारी माताएँ गृहस्थी की समुचित व्यवस्था व उसकी देखभाल तक नहीं कर पाती हैं। उन्हें यह भी ज्ञात नहीं होता कि मानव–जीवन की समस्याएँ क्या हैं और उनका किस प्रकार समाधान किया जा सकता हैं। ऐसे में स्त्रियाँ अपने आवश्यक कर्तव्यों का पालन करते हुए भी अपनी रूचि, इच्छा–शक्ति और सुविधानुसार, साहित्य, गृह कला, कला कौशल व विशेष रूप से संगीत का ज्ञान प्राप्त करके गृहस्थ जीवन को समुन्नत बना सकती हैं।

संगीत शिक्षा स्त्रियों की मानसिक के साथ ही नैतिक शक्ति का विकास करती है जिससे वह मनुष्य जीवन को सफल बनाने में अपना अमूल्य सहयोग दे सकती है। जिस स्त्री को बौद्धिक विकास करने का अवसर न मिला हो उसके व्यवहार में भी कभी सरसता न आ सकेगी। जिस अभिव्यक्ति की उनसे कामना की जाती है, शिक्षा के अभाव में वह वे दे नहीं पाएंगी। यह सरसता प्राप्त करने के लिये और स्त्रियों को अपने दायित्व का कुशलतापूर्वक निर्वहन करने के लिये उन्हे शिक्षित व स्वावलम्बी बनाना आवश्यक है। यह कार्य संगीत शिक्षा भली प्रकार कर सकती है। आज संगीत के विविध क्षेत्रों में रोजगार की अपार सम्भावनाएँ हैं। संगीत की विधिवत् शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् स्त्रियाँ इसकी किसी भी विधा से जुड़कर अपना करियर (प्रदर्शन, अध्यापन आदि में) बना सकती हैं, आर्थिक रूप से अत्मनिर्भर बन सकती हैं और स्वयं के अतिरिक्त समाज के विकास में भी योगदान कर सकती हैं।

निष्कर्ष

स्त्रियों को संगीत शिक्षा अथवा स्त्री शिक्षा में संगीत– दोनों ही प्रकार से संगीत शिक्षा स्त्रियों के बौद्धिक, मानसिक, नैतिक, सामाजिक व आर्थिक विकास में सहायक है।

संदर्भ

व्होरा, आशारानी (२००८) –'नारी कलाकार', ज्ञान गंगा, दिल्ली

शर्मा, भगवतीशरण (२००१) –'भारतीय संगीत का इतिहास', संगीत कार्यालय, हाथरस

शुक्ला, मनीषा –'अनवद्या : स्त्री समग्र एक संग्रह ग्रंथ', एम०पी०एस०ए०वी०ओ०, वाराणसी।

articles.blogspot.com

https://hi.m.wikipedia.org.

literature.awgp.org

shodhganga.inflibnet.ac.in

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,62-64**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 27 जनवरी 2017

स्त्रियों के प्रति अम्बेडकर का योगदान

डॉ0 धनञ्जय कुमार*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *स्त्रियों के प्रति अम्बेडकर का योगदान* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र का लेखक मैं *धनञ्जय कुमार* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैंने शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

प्रस्तुत लेख में अम्बेडकर द्वारा भारतीय स्त्रियों के प्रति किए गए कार्यों एवं स्त्रियों के हित के लिए अम्बेडकर के योगदान का मूल्यांकन किया गया है। भारतीय नारी को स्वतंत्रता, समानता, सम्पत्ति में उत्तराधिकार, तलाक, विधवा विवाह, बाल विवाह निषेध, गर्भवती महिलाओं को प्रसूति अवकाश जैसे अधिकार अम्बेडकर के ही प्रयासों से प्राप्त हुआ। उन्होंने भारत के प्रथम विधिमंत्री के रूप में हिन्दू कोड बिल बनाकर संसद के समक्ष प्रस्तुत किया, जिसका पुरूषवादी मानसिकता वाले लोगों ने भारी विरोध किया। जिसका परिणाम यह हुआ कि अम्बेडकर द्वारा प्रस्तुत हिन्दू कोड बिल को तत्कालीन परम्परावादी नेताओं ने पास नहीं होने दिया।

लेकिन अम्बेडकर ने भारतीय संविधान में नारियों की दासता की बेड़िया काटने एवं उन्हे समानता का अधिकार दिलाने संबंधी कुछ विधान अवश्य बना दिए। प्रस्तुत लेख में विशेष विवाह अधिनियम (१९५४), हिन्दू विवाह अधिनियम(१९५५), हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम (१९५६), हिन्दू दत्तक तथा भरण–पोषण अधिनियम (१९५६), खान प्रसूति लाभ अधिनियम (१९४५), भारतीय खान अधिनियम (१९४६), खान श्रमिक कल्याण कोष (१९४४), समान कार्य समान वेतन (१९४४), स्त्री शिक्षा और हिन्दू कोड बिल (१९४७) के माध्यम से अम्बेडकर का स्त्रियों के प्रति योगदान की चर्चा की गई है। जिसके लिए भारतीय संविधान के अनुच्छेद १४, १५, १६, ३९ और ४२ विशेष महत्त्वपूर्ण हैं।

विशेष विवाह अधिनियम[१] द्वारा विभिन्न धर्मों को मानने वाले लोगों को अपना धर्म परिवर्तन किए बगैर अन्य धर्म में भी विवाह करने का अधिकार दिया गया। इससे भारतीय स्त्री अपने धर्म के अलावा दूसरे धर्म के पुरूष से भी विवाह कर सकती हैं। इसमें लड़के की उम्र २१ वर्ष एवं लड़की की उम्र १८ वर्ष होना अनिवार्य है। यह अम्बेडकर का प्रयास था कि इस अधिनियम के तहत एक विधवा स्त्री को अपनी संतान और उत्तराधिकारी होते हुए भी संपत्ति का तीसरा भाग प्राप्त करने का अधिकार मिला।

हिन्दू विवाह अधिनियम[२] के द्वारा स्त्री को पहली बार स्वतंत्रता का बोध हुआ, जिसके तहत स्वयं स्त्री भी अपने पति से तलाक ले सकती है। प्राचीन परम्पराओं के तहत हिन्दू अपनी–अपनी धार्मिक रीति–रिवाजों से ही विवाह करते हैं। उसी विवाह

* पूर्व-शोध छात्र, इतिहास विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2017, एम0पी0ए0एस0वी0ओ0 मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहासंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

को ठीक भी माना गया है, जो पवित्र अग्नि के सामने एक साथ वर–वधू सात फेरे (सप्तपदी) के साथ पूर्ण होता हैं। हिन्दू समाज में अपनी जाति या धर्म से बाहर तो क्या सगोत्र विवाह भी निषेध था। हिन्दू विधि में पिता की ओर से पांचवे और माता की ओर से तीसरे वंशक्रम के लोगों में विवाह आपस में नही हो सकता था। इसको सपिण्ड संबंध कहा जाता था। हिन्दू समाज में बहु–पत्नी प्रथा पर प्रतिबंध भी नहीं था और स्त्री को तलाक का अधिकार भी नहीं था। एक बार स्त्री पति की डोरी में बंध गई, तो कभी भी अलग नहीं हो सकती थी। लेकिन अम्बेडकर के प्रयासों से इस अधिनियम के द्वारा स्त्रियों के लिए एक पत्नी प्रथा को सार्वभौमिकता का नियम बना दिया गया और एक से अधिक विवाह करने वाले व्यक्ति को संविधान में अपराधी ठहराया गया। यदि विवाह के पश्चात् पुरूष बलात्कार या अपशिष्टता का अपराधी पाया जाता हैं, तो स्त्री स्वयं अपने पति से तलाक अपने नजदीकी न्यायलाय के माध्यम से ले सकती है। इसमें अम्बेडकर ने इस बात पर भी बल दिया कि जब तक तलाक का मुकदमा न्यायालय में चलेगा, तब तक स्त्री को अपने जीवन निर्वाह के लिए पुरूष की ओर से खर्चा भी दिया जाएगा।

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम[3] के द्वारा स्त्री को संपत्ति का उत्तराधिकार है। पहले यह अधिकार उसके जीवन निर्वाह तक ही सीमित रहता था। लेकिन अम्बेडकर के प्रयासों से ही भारतीय स्त्रियों की सुरक्षा की दृष्टि से स्त्रियों को भी अपनी संपत्ति का हस्तांरण करने का अधिकार प्राप्त हुआ। इतना ही नहीं उस संपत्ति को अब वह बेच भी सकती है और आवश्यकता पड़ने पर गिरवी भी रख सकती है।

हिन्दू प्राचीन परम्पराओं में किसी स्त्री को गोद लेने का अधिकार नहीं था, क्योंकि पिता की आत्मा की मुक्ति एवं शांति के लिए लड़के द्वारा ही पिण्डदान का रिवाज था। इसलिए लड़का तो गोद लिया जा सकता था। लेकिन लड़की को गोद नहीं लिया जा सकता था। अम्बेडकर के प्रयासों से ही हिन्दू दत्तक तथा भरण–पोषण अधिनियम[4] के द्वारा लड़की को भी गोद लिया जा सकता है। इससे भारतीय समाज को यह लाभ हुआ कि जिस पुरूष के पास केवल पुत्र ही थे और कन्या नहीं थी। अब वे भी इस अधिनियम के तहत किसी कन्या को अपनी पुत्री बना सकते हैं।

जो स्त्रियाँ कोयला खानों में काम करती थीं, उनके प्रसूति लाभ में बहुत कमियाँ थी। जो अम्बेडकर के प्रयासों से ही खान प्रसूति लाभ अधिनियम[5] के द्वारा दूर किया गया। उनके प्रयासों से ही खान में काम करने वाली महिलाओं को चार सप्ताह के सवेतन प्रसूति अवकाश का पूर्ण लाभ प्राप्त हुआ। जो बाद में उन्हीं के प्रयासों से छत्तीस सप्ताह हुआ। जिसमें छब्बीस सप्ताह अनिवार्य रखे गए और दस सप्ताह आंशिक रूप से। इस अवधि में छ: रूपये प्रति सप्ताह के हिसाब से प्रसूति लाभ देना तय किया गया।[6] साथ ही यह सारा समय अधिकृत अवकाश माना गया। ताकि कोई नियोजक किसी महिला श्रमिक को काम पर से हटा न सके।

भारतीय खान अधिनियम के अन्तर्गत कोयला खानों में (पिट हेड़स) स्त्री श्रमिकों के लिए भी पुरूषों की तरह अलग से सुविधायुक्त स्नानघर बनाने का प्रावधान अम्बेडकर द्वारा किया गया। ताकि महिला श्रमिक भी पुरूष श्रमिक की तरह नहा–धोकर साफ कपड़ों में अपने घर जा सके। इतना ही नहीं महिला श्रमिकों के लिए तेल, साबुन की व्यवस्था का भी प्रावधान किया गया। यदि कोई खान मालिक निर्धारित समय में यह सुविधा उपलब्ध नहीं कराता है, तो सरकार अपनी ओर से ऐसी सुविधाएँ उपलब्ध कराके उसका पूरा खर्च खान मालिक से ले सकती है।

अम्बेडकर के प्रयासों से खानों में काम करने वाली समस्त महिलाओं के लिए खान श्रमिक कल्याण कोष अध्यादेश लागू किया गया। इस कोष के लिए राशि की व्यवस्था खानों से रेलगाड़ी द्वारा बाहर जाने वाले कोयले पर कर लगा कर किया जाता था। अम्बेडकर ने खानों में काम करने वाली महिला श्रमिकों को भी पुरूष श्रमिकों की तरह ही समान कार्य का समान वेतन[7] पाने का अधिकार दिया। उनके अनुसार उस समय(१९४४) खान में काम करने वाली महिला श्रमिकों की संख्या पन्द्रह हजार थी।

अम्बेडकर तत्कालीन शिक्षा की स्थिति से बहुत दुखी थे। वह चाहते थे कि लड़कों के साथ लड़कियों को भी शिक्षा दी जाएगी, तो अपने देश की प्रगति जोरदार होगी। उन्होंने स्त्री शिक्षा की शुरूआत अपने घर से ही की थी। अपनी अशिक्षित पत्नी रमाबाई को शिक्षित किया। नारी शिक्षा को वे कितना महत्त्व देते थे कि इसे एक उदाहरण से समझा जा सकता है। औरंगाबाद (महाराष्ट्र) के मिलिन्द कालेज की माली हालत ठीक नहीं थी, फिर भी उन्होनें मात्र चार छात्राओं के लिए अलग से विद्यालय खोलवाया। जिसमें पढ़ने वाली चारों छात्रायें सवर्ण हिन्दू समाज की थीं।

वे महिला अधिकारों के लिए हिन्दू कोड बिल[८] के निर्माता थे। स्त्री समानता के लिए उनका रूख हमेशा समाजवादी था। वह बताते हैं कि यदि महिलाएँ आश्वस्त हो जाए, तो वे भारतीय समाज की दशा सुधार सकती हैं। मुझे खुशी होगी जब मैं असेंबली में स्त्री–पुरूष दोनों को समान प्रगति करते हुए देखूँगा। वही प्रगति हमारे समाज की सच्ची प्रगति होगी। अप्रैल १९४७ में यह बिल सदन में पेश किया गया, परन्तु सहमति नहीं बन पायी। इस पर वह आगे बताते हैं कि हिन्दू कोड बिल की हत्या कर दी गई, जिस पर किसी ने आँसू भी नहीं बहाया। यह बिल मुख्यतया हिन्दू स्त्रियों की परिस्थिति में प्रगतिशील परिवर्तन था। इसी दृष्टि से यह तैयार किया गया था। आज महिला विधेयक के संदर्भ में अम्बेडकर की प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है।

इस प्रकार अम्बेडकर के प्रयासों के कारण अपने संवैधानिक हक प्राप्त कर सकने में सक्षम महिलाएँ कानून का संरक्षण लेकर स्व–सम्मान के साथ जी रही हैं और वह स्व–निर्भर होकर स्वतंत्र जीवन बिता रही हैं। उन्हीं की बदौलत आज भारतीय नारी अपने अधिकारों सहित सम्मानपूर्वक जीवन जी रही हैं। आज उसको भी भारतीय धन पर पूर्ण स्वामित्व प्राप्त है। आज विधवा को पहले की भांति उपेक्षित एवं पीड़ित होकर अपना शेष जीवन नहीं बिताना पड़ता है। वह जीवन पर्यंत उस संपत्ति की अधिकारी होती हैं, जो उसे अपने पति के हिस्से से प्राप्त होती है। अम्बेडकर ने अपने प्रयासों से उपरोक्त के अतिरिक्त अनेकों अधिनियम (दहेज प्रतिबंध अधिनियम, मातृत्व हित लाभ अधिनियम, बाल विवाह प्रतिबंध अधिनियम आदि) पारित कराए। जिससे वास्तव में भारतीय नारी एक सुरक्षित जीवन बिता सकती है। उन्होंने भारतीय नारी की उन्नति के सभी द्वार खोल दिए। सदियों के उत्पीड़न की व्यथा झेल कर अब नारी इस निष्कर्ष पर पहुँची है कि वह देवी के रूप में नहीं, बल्कि एक मानव की तरह जीना चाहती है और मानव की तरह जीने का अधिकार अम्बेडकर ने संविधान में दे दिया। इस तरह आज भी अम्बेडकर भारतीय नारी के एक उद्धारक के रूप में राष्ट्र के सम्मुख खड़े हैं।

संदर्भ ग्रंथ

[१]अंजनी कान्त –महिला एवं बाल कानून, सेन्ट्रल ला पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, २००५, पृष्ठ संख्या १६
[२]डा. पारस दीवान –आधुनिक हिन्दू विधि की रूपरेखा, इलाहाबाद ला एजेंसी पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, २००३, पृष्ठ संख्या ४१५
[३]डा. पारस दीवान –आधुनिक हिन्दू विधि की रूपरेखा, इलाहाबाद ला एजेंसी पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, २००३, पृष्ठ संख्या ३९७
[४]डा. पारस दीवान –आधुनिक हिन्दू विधि की रूपरेखा, इलाहाबाद ला एजेंसी पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, २००३, पृष्ठ संख्या ४०७
[५]*अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय* भाग–२१, प्रकाशन डा. अम्बेडकर प्रतिष्ठान कल्याण मंत्रालय, नई दिल्ली, १९९८, पृष्ठ संख्या १५
[६]कुसुम मेघवाल –भारतीय नारी के उद्धारक डा. अम्बेडकर, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, २००५, पृष्ठ संख्या १३६
[७]डा. जयनारायण पाण्डेय –भारत का संविधान, सेन्ट्रल ला एजेंसी, इलाहाबाद, २००८, पृष्ठ संख्या ३६८

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,65-70**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 14 फरवरी 2017

इलाहाबाद जनपद की अभिलेखिक एवं मुद्रा सम्पदा

डॉ0 विजया तिवारी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *इलाहाबाद जनपद की अभिलेखिक एवं मुद्रा सम्पदा* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *विजया तिवारी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इस छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध प्रपत्र आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

गंगा, यमुना, सरस्वती की संगम स्थली इलाहाबाद का जहॉ एक ओर सांस्कृतिक महत्व है वहीं पुरातात्विक अन्वेषणों के कारण इसने अपने आपको विश्व के पुरातात्विक मानचित्र पर भी प्रतिष्ठित किया। पिछले पाँच दशकों में इलाहाबाद के कई इलाकों में पुरातात्विक सर्वेक्षण का कार्य हुआ है। वर्तमान कौशाम्बी जनपद में स्थित कोसम नामक पुरास्थल इलाहाबाद के महत्वपूर्ण पुरास्थलों में से एक है। इलाहाबाद जनपद अभिलेख व मुद्रा सम्पदा की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है। समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति इलाहाबाद के अभिलेखों में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। जिसे राजकवि हरिषेण द्वारा लिखा गया है। मुद्रायें एवं सिक्के भी इलाहाबाद से प्राप्त हुये हैं। अधिकांश मुद्रायें कौशाम्बी नामक स्थान से प्राप्त हुयी हैं। यहाँ से कुषाणनरेशों की मुद्रायें तथा मघशासकों की मुद्रायें और अन्य मुद्रायें प्राप्त हुयी हैं। इलाहाबाद संग्रहालय में भी कौशाम्बी से प्राप्त मुद्रायें रखी हैं। कौशाम्बी से जो सिक्के मिले हैं वे गोलाकार, आयताकार, पंचमार्क या आहत सिक्के, चौकोर सिक्के, हैं। भीटा से भी विभिन्न मुद्रायें मिली हैं जो इलाहाबाद संग्रहालय में दर्शनार्थ रखी हुयी हैं।

बौद्धिक चिन्तन की दृष्टि से भारतवर्ष का अतीत अत्यन्त गौरवमय रहा है। भारतवर्ष में वेद, आरण्यक, उपनिषद्, वेदांग, स्मृतियाँ तथा पुराण आदि विविध कोटि के ग्रन्थों की रचना हुई। प्राचीन भारतीय इतिहास के ज्ञानार्जन में दो परम्पराएं सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं– 'शाब्दी–परम्परा' तथा 'पदार्थी परम्परा'। पदार्थी परम्परा पुरातत्व से ज्ञात विविध उपकरणों के रूप में उपलब्ध है। पुरातात्विक साक्ष्य अपने अविकल रूप में प्राप्त होने के कारण अधिक विश्वसनीय माने जाते हैं।[1]

इतिहास निर्माण की दृष्टि से उपयोगी समग्र पुरातात्विक सामग्री को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है– अभिलेख, स्मारक तथा मुद्रायें।

अभिलेखों के प्रमुख प्रकार

प्राचीन भारतीय व्यवस्थाकारों ने अभिलेखों को मुख्यत: दो वर्गों में विभक्त किया है– राजकीय अभिलेख एवं जानपद अभिलेख[2], व्यवहारमयूख[3] में जानपद अभिलेख को लौकिक अभिलेख का नाम दिया गया है। वशिष्ठ[4] एवं शुक्र[5] ने भी राजकीय एवं लौकिक

* विभागाध्यक्ष प्राचीन भारतीय इतिहास, पी0जी0 कॉलेज (उपरदहा) बरौत, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2017, एम0पी0ए0एस0वी0ओ0 मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहासंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

लेखों का उल्लेख किया है। राजाओं तथा उनके सामन्तों द्वारा उत्कीर्ण लेख राजकीय लेख की श्रेणी में आते हैं। दूसरी ओर लौकिक अभिलेख से आशय ऐसे अभिलेखों से है जो शासकों के द्वारा न लिखे जाकर नागरिकों, विशेषत: गण, पूग, व्रात आदि व्यापारिक संगठनों के प्रमुखों के द्वारा लेखबद्ध कराये जाते थे।

राजकीय अभिलेखों को 'शासन', 'जयपत्र', 'आज्ञापत्र', 'प्रज्ञापनपत्र', चार भागों में विभक्त किया गया है[६]। प्राचीनकाल में शासकगण दानशील प्रवृत्ति के होते थे। वे स्वयं तो विविध अवसरों पर दान देते ही थे, उनकी राजमहिषी, उप–पत्नियाँ, राजपुत्र आदि भी समय–समय पर दान किया करते थे। इस अवसर पर शासक भूमिदान करके भावी राजाओं की स्मृति के लिए कपड़े अथवा ताम्रपत्र पर स्वराजमुद्रांकित लेख लिखवाते थे, जिसमें उनका वंशवृक्ष, प्रशस्ति, दानग्रहीता का नाम, दान का परिणाम, भूमि का वर्णन, तिथि एवं उनका हस्ताक्षर होता था। इसे 'शासन' कहा जाता था।[७] शासक के द्वारा नीतिगत निर्णय देना ही 'जयपत्र' है, जिसका मुख्य उद्देश्य प्रजा में निर्णय का दृष्टान्त के रूप में प्रचार प्रसार करना था।[८]

यदा–कदा राजा अपने सामन्तों, भृत्यों एवं राष्ट्रपालों को कार्यादेश प्रकाशित करके उसे किसी वस्तु पर लेखबद्ध कराकर चतुष्पथों (चौराहों) पर प्रजा में प्रकाशित करा देता था। ऐसे राजकीय लेख को 'आज्ञापत्र' की संज्ञा दी गई है।[९] कभी–कभी ऋत्विक, पुरोहित, आचार्य, वेदज्ञ, ब्राह्मण अथवा मान्य जनों के लिए लिखित प्रार्थनाएं की जाती थीं तथा राज्य की ओर से इसे भी लेखबद्ध करा दिया जाता था, इसे 'प्रज्ञापनपत्र' कहा गया है।[१०]

बृहस्पति ने राजकीय लेखों के अन्तर्गत ही 'प्रसाद लेख' का भी उल्लेख किया है। जब शासक अपने किसी सैनिक अथवा किसी अन्य पदाधिकारी का सेवा या शौर्य आदि से सन्तुष्ट होकर प्रसाद (पुरस्कार) देता था तो इसे लेखबद्ध भी कराता था। ऐसे लेखों को प्रसाद लेख की संज्ञा प्रदान की गई है।[११] 'सरस्वती विलास' में शासकीय लेख को पॉच प्रकार का बताया गया है– 'शासन', 'जयपत्र', 'आज्ञापत्र', 'प्रज्ञापनपत्र' एवं 'प्रसादपत्र'।[१२]

इतिहास के पुनर्निर्माण में जानपद लेखों का भी योगदान महत्वपूर्ण रहा है। व्यास ने जानपद लेखों की विशिष्टताओं का उल्लेख करते हुए लिखा है– किसी प्रसिद्ध स्थान के लेखक को राजा के वंशक्रम, वर्ष, मास, पक्ष अथवा दिवस से युक्त जानपद लेख लिखना चाहिए।[१३]

लेखन आधार एवं विषय–वस्तु के आधार पर अभिलेखों का वर्गीकरण

गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा[१४] एवं राजबली पाण्डेय[१५] ने अभिलेखों का वर्गीकरण दो दृष्टियों से किया है– लेखन आधार की दृष्टि से एवं विषय–वस्तृ की दृष्टि से। लेखन आधार की दृष्टि से अभिलेखों को स्तम्भलेख, शिलालेख, प्रतिमालेख, गुहालेख, पात्र एवं स्तूपलेख, ताम्रपत्रलेख एवं मोहरलेख की श्रेणी में तथा विषय–वस्तु के आधार पर अभिलेखों को व्यापारिकलेख, तांत्रिकलेख, धार्मिकलेख, प्रशासनिकलेख, प्रशस्तिलेख, संकल्पित अथवा समर्पित लेख, दानात्मक लेख, संस्मरणात्मक लेख एवं साहित्यिक लेख की श्रेणी में विभक्त किया गया है।

इलाहाबाद के अभिलोखों में समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति का विशेष स्थान है।

समुद्रगुप्त की प्रयाग–प्रशस्ति

गुप्तवंश के शक्तिशाली शासकों में 'पराक्रमांक' समुद्रगुप्त का नाम श्रद्धा के साथ लिया जाता है, जिसके शासनकाल की प्रयाग–प्रशस्ति अत्यन्त महत्वपूर्ण है। गुप्तवंश की यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रशस्ति समुद्रगुप्त के 'सान्धिविग्रहिककुमारामात्यमहादण्डनायक', ध्रुवभूतिपुत्र हरिषेण की कालजयी रचना है, जिसमें समुद्रगुप्त के शासनकाल की प्राय: समस्त उपलब्धियों एवं महत्वपूर्ण कृत्यों का विषद उल्लेख किया गया है इस अभिलेख से उसकी सामरिक उपलब्धियों के साथ ही उसके व्यक्तित्व के विविध पक्षों पर श्लाघनीय प्रकाश पड़ता है। यदि इस अभिलेख को पृथक कर दिया जाय तो समुद्रगुप्त की उपलब्धियों एवं व्यक्तित्व के विषय में हमारा ज्ञान शून्य हो जायेगा।

इस लेख को प्रकाश में लाने का श्रेय ए० ट्रायर[१६], डब्लू०एच० मिल[१७], प्रिंसेप फ्लीट[१८], डी०सी० सरकार[१९], के०पी० जायसवाल[२०], फादर हेरास[२१], बी०सी० छाबड़ा[२२], राजबली पाण्डेय[२३] आदि इतिहासकारों को है। यह अभिलेख सम्प्रति इलाहाबाद

के किले में संरक्षित है। मूलरूप में यह अभिलेख कौशाम्बी में स्थित था। उल्लेखनीय है कि यह अभिलेख देवानांप्रिय सम्राट अशोक के ३५ फुट ऊँचे एक प्रस्तरस्तम्भ, जिस पर वह कौशाम्बी के महामात्रों को आदेश देते हुए उल्लिखित है, के नीचे उत्कीर्ण किया गया है। इस स्तम्भ पर मुगलशासक जहाँगीर के काल का भी एक लेख प्राप्त होता है, जो समुद्रगुप्तकालीन लेख के नीचे उट्टंकित है। इससे यह अनुमान लगता है कि मुगलसम्राट अकबर अथवा जहाँगीर के राज्यकाल में यह अभिलेख कौशाम्बी से स्थानान्तरित होकर इलाहाबाद के किले में गंगा की शोभा की अभिवृद्धि हेतु लाया गया होगा।[२४]

यद्यपि इस लेख में तिथि का अभाव है किन्तु वर्ण्य–विषय के आधार पर यह अनुमान लगता है कि यह अभिलेख समुद्रगुप्त के जीवनकाल के उत्तर भाग में उट्टंकित किया गया होगा। इसकी तिथि लगभग ३७०ई० मानी जा सकती हैं। प्रिंसेप[२५] तथा जे० एस० फ्लीट[२६] ने प्रयाग–प्रशस्ति को एक मरणोत्तरीय लेख माना है एवं इस लेख के उट्टंकन का श्रेय समुद्रगुप्त के पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय को दिया है, जिसने समुद्रगुप्त की मृत्योपरान्त इसे उत्कीर्ण कराया। परन्तु अधिकांश इतिहासकार[२७] यह स्वीकार करते हैं कि यह लेख स्वयं समुद्रगुप्त के जीवनकाल में उत्कीर्ण किया गया।

जिस समय इस अभिलेख का उट्टंकन किया गया, उस समय प्राय: सम्पूर्ण भारतवर्ष समुद्रगुप्त की छत्रछाया में आ चुका था। वाकाटक राज्य ही इसका अपवाद था। इस अभिलेख में समुद्रगुप्त की महत्वपूर्ण विजयों का उल्लेख है। विजयों के सम्बन्ध में उसने विविध नीतियॉ अपनाई जो निम्न है– १. प्रसभोद्धरण (समूल उच्छेदन), २. ग्रहण मोक्ष, ३. अनुग्रह, ४. परिचारकी–करण, ५. प्रत्यर्पण, ६. भ्रष्टराज्योत्सन्नराजवंशप्रतिष्ठापन आदि, ७. सर्वकरदान, ८. आज्ञाकरण, ९. प्रणामागमन, १०. आत्मनिवेदन, ११. कन्योपायनदान, १२. गरूत्मदंड.स्वविषयभुक्ति शासन याचन आदि।

सम्भवत: हरिषेण ने प्रयाग स्तम्भ लेख के ७वें श्लोक से समुद्रगुप्त द्वारा अन्य राज्यों पर प्राप्त विजयों का वर्णन किया है। इस अंश में लिखा है कि समुद्रगुप्त ने युद्ध में अच्युत (अहिच्छत्रा का राजा) नागसेन (पद्यमावती नरेश) तथा गणपतिनाग (मथुरा नरेश) को उन्मूलित किया। अपनी सेना को भेजकर 'कोतकुलज' को बन्दी बनवाया तथा पुष्पनगर में क्रीड़ा की।

इस युद्ध के वर्णन के बाद हरिषेण ने ४ सूचियों में उन सब राजाओं तथा राज्यों को गिनाया है जिन्हें समुद्रगुप्त ने उन्मूलित किया अथवा न्यूनाधिक रूप ने अपने आधीन किया। दक्षिण भारत के १२ राजाओं की सूची निम्न प्रकार है– कोशल के महेन्द्र, महाकान्तार के व्याघ्रराज, कोरल के मण्टराज, विष्टपुर के महेन्द्रगिरि, कोट्टूर के स्वामिदत्त, ऐरण्डपल्ल के दमन, काँची के विष्णुगोप, अवमुक्त के नीलराज, वैंगी के हस्तिवर्मा, पलक्क के उग्रसेन, देवराष्ट्र के कुबेर, कु–स्थलपुर के धनन्जय, आदि सभी दक्षिणापथ नरेशों को पकड़ने तथा छोड़ देने तथा उन पर अनुग्रह दिखाने के परिणामस्वरूप उत्पन्न प्रताप से जिसकी महान समृद्धि और बढ़ गयी है। प्रयाग स्तम्भ लेख में इन राजाओं को दक्षिणापथ राज कहा गया है।

प्रयाग स्तम्भ–लेख की २१वीं पंक्ति में उत्तर भारत के (आर्यावर्त) ९ राजाओं के उल्लेख मिलते हैं जिन्हें जीतकर उसने अपने राज्य में मिला लिया था। समुद्रगुप्त की यह नीति 'प्रसभोद्धरण' नीति के नाम से जानी जाती है।[२८]

समुद्रगुप्त की इस प्रशस्ति में अश्वमेघ यज्ञ का उल्लेख न होना निश्चय ही आश्चर्यजनक है। अश्वमेध यज्ञ समुद्रगुप्त के जीवनकाल का एक महत्वपूर्ण कर्म है, जिसकी स्मृति में समुद्रगुप्त ने अश्वमेध प्रकार की मुद्राओं का प्रचलन करवाया। गुप्त अभिलेखों में समुद्रगुप्त के लिए 'चिरोत्सन्नाश्वमेधहर्त' विरूद का प्रयोग किया गया है। इस आधार पर सामान्यत: विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि अश्वमेध यज्ञ का सम्पादन इस अभिलेख के उट्टंकनकाल तक नहीं हुआ था परन्तु कुछ विद्वानों ने यह सिद्ध किया है कि इस अभिलेख को स्वयं समुद्रगुप्त के द्वारा अश्वमेध यज्ञ के सम्पादन के अवसर पर उत्कीर्ण किया गया है। इस अभिलेख के प्रारम्भिक अंश पद्यवत् हैं, शेषांश गद्य में है। सम्पूर्ण अभिलेख में प्रारम्भ में आठ एवं अन्त में एक श्लोक प्राप्त होता है, जो शैलीगत् दृष्टि से चम्पू शैली (गद्यपद्यमयंकाव्यचम्पूरित्यमिधीयते) के अन्तर्गत आता है। अभिलेख संस्कृत भाषा एवं गुप्तकालीन ब्राह्मी लिपि में उल्लिखित है। इस अभिलेख की महत्वपूर्ण साहित्यिक विशेषता है कि यद्यपि यह अभिलेख ३११/२ पंक्तियों में उत्कीर्ण है परन्तु व्याकरण की दृष्टि से ये पंक्तियाँ एक वाक्य हैं।

चन्द्रगुप्त द्वितीय का गढ़वा अभिलेख

यह अभिलेख इलाहाबाद जनपद के करछना तहसील में अरैल के पास स्थित गढ़वा नामक ग्राम से प्राप्त हुआ है। यह लेख एक प्रस्तरखण्ड पर उत्कीर्ण है, जो एक घर की दीवार में जड़ा हुआ था। १६ पंक्तियों में उत्कीर्ण यह लेख दो भागों में विभक्त है।

अधिकांश पंक्तियाँ क्षतिग्रस्त हैं। दोनों लेखों की भाषा संस्कृत है तथा लिपि प्रयाग–प्रशिस्त के समान ब्राह्मी है। इन लेखों का पता १८७२ ई० में राजा शिवप्रसाद ने लगाया था। इन्हें सर्वप्रथम कनिंघम[२९] ने प्रकाशित किया तथा फ्लीट[३०] ने इसका सम्पादन किया।

लेख से ज्ञात होता है कि गढ़वा में एक दानगृह था, जहाँ ब्राह्मणों के लिए नि:शुल्क भोजन एवं निवास की सुविधा थी। लेख के प्रथम भाग के अनुसार मातृदास नामक किसी व्यक्ति ने ब्राह्मणों के सहायतार्थ इस दानगृह को १० दीनार का दान दिया था। लेख के दूसरे भाग के अनुसार पाटलिपुत्र के किसी गृहस्थ की भार्या ने पुण्यकार्य हेतु इस दानगृह को १० दीनार का दान दिया था। लेख के द्वितीय भाग में शासक को 'परमभागवत' कहा गया है। लेख के खंडित होने के कारण शासक का नाम शेष नहीं रह गया है, परन्तु लेख के द्वितीय भाग में संवत्सर ८८ (४०७ ई०) का उल्लेख है।

कुमारगुप्त प्रथम का गढ़वा प्रस्तर अभिलेख

कुमारगुप्त प्रथम के उत्तर प्रदेश से प्राप्त अभिलोखों में इलाहाबाद जिले के करछना तहसील में स्थित गढ़वा से प्राप्त चार लेखों का स्थान महत्वपूर्ण है। इन लेखों का पता १८७२ ई० में राजा शिवप्रसाद ने लगाया था, जिन्हें कनिंघम महोदय ने प्रकाशित किया। ये लेख संस्कृत भाषा तथा ब्राह्मी लिपि में है।

प्रथम लेख के अधिकांश भाग नष्ट हो चुके हैं। इसमें तिथि का अभाव है। इस लेख से कुमारगुप्त प्रथम के शासनकाल में प्रजा के धर्मदान में रूचि का ज्ञान प्राप्त होता है।

कुमारगुप्त प्रथम का मानकुँवर पाषाण प्रतिमा लेख (गुप्त संवत १२९–४४८ ई०)

कुमारगुप्त प्रथम के काल का यह प्रतिमालेख उत्तर प्रदेश के प्रयाग जिले के करछना तहसील के अरैल से लगभग १३ किमी० पर यमुना के दाहिने तट पर स्थित मानकुँवर ग्राम से प्राप्त बुद्ध पाषाण प्रतिमा के आसन पर उट्टंकित है। इस लेख को सर्वप्रथम १८७० ई० में भगवानलाल इन्द्रजी[३१] ने प्रकाशित किया। १८८० ई० में कनिंघम[३२] ने तथा तदन्तर फ्लीट[३३] ने भी सम्पादित किया।

यह लेख गुप्त संवत १२९ अर्थात् ४२८ ई० का है, जो संस्कृत भाषा तथा ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण है। यह लेख भिक्षु बुद्धमित्र द्वारा स्थापित बुद्ध प्रतिमा, जो आसन मुद्रा में है, की स्थापना की विज्ञप्ति है।[३४] लेख बुद्ध की पूजा से प्रारम्भ होता है।[३५]

कौशाम्बी प्रतिमा लेख:– कौशाम्बी लेख, जिस पर भीम वर्मा नामक किसी सामन्त का लेख उत्कीर्ण है, पर अंकित वर्ष १३९ को गुप्त सम्वत् में तिथित मान कर आर०के० मुखर्जी, जे०एन० बनर्जी आदि स्कन्द गुप्त के शासन काल का मानते हैं।[३६]

स्कन्दगुप्त का गढ़वा अभिलेख (वर्ष १४८–४६७ ई०)

प्रस्तुत अभिलेख इलाहाबाद के करछना तहसील के गढ़वा नामक ग्राम के दशावतार मन्दिर के अवशेळा से प्राप्त हुआ है, जो अब कलकत्ता के इण्डियन म्यूजियम में संरक्षित है। खण्डित अवस्था में प्राप्त होने के कारण राजा का नाम नहीं मिलता परन्तु लेख की तिथि १४८ गुप्तसंवत – ४६७ ई० के आधार पर यह लेख स्कन्दगुप्त के काल का सिद्ध होता है।

मुद्रायें एवं सिक्के

जहाँ तक इलाहाबाद की मुद्रा सम्पदा का प्रश्न है यह मुद्रायें कौशाम्बी, भीटा तथा विभिन्न स्थानों से प्राप्त हुई हैं।

कौशाम्बी से प्राप्त मुद्रायें एवं सिक्के:– प्रस्तुत नगर के प्राचीन अवशेष आधुनिक इलाहाबाद जनपद से ३२ मील दक्षिण–पश्चिम दिशा में प्राप्त हुए हैं। ये अवशेष उत्तुंग टीलों के रूप में उन गाँवों से घिरे हैं, जिन्हें सम्प्रति कोसम खिराज, गढ़वा, कोसम इनाम तथा ऑवा कुँआ की संज्ञा दी जाती है। कौशाम्बी वत्स जनपद की राजधानी थी। शुंग शासन के उपरान्त ही यहाँ के शासकों ने अपने–अपने नामों से स्वतन्त्र सिक्कों का प्रचलन प्रारम्भ कर दिया था। यहाँ के सिक्कों पर वृष मुख्य

प्रतीक के रूप में अंकित है। इसके साथ–साथ कुछ लघु–चिन्ह, घेरे में वृक्ष, नन्दी, ब्राह्मीलिपि में शासक का नाम इत्यादि अंकित है। कनिंघम ने कुछ सिक्कों पर ज्येष्ठमित्र, देवमित्र, अश्वघोष इत्यादि नामों को सुपाठ्य बनाया है। इसके अतिरिक्त बंबघोष, सूरमित्र, राधामित्र, पोठमित्र, राजनिमित्र, प्रजापतिमित्र, सत्यमित्र, वरूणमित्र, इन्द्रदेव, सुदेव इत्यादि शासकों का अभिज्ञान भी मुद्राओं से संभव हो सका है। वरूणमित्र का शिलालेख भी कौशाम्बी से प्राप्त हो चुका है। इस पर लेख 'राज्ञो गोतीपुतसवरूणमितसें' अंकित है। वरूण मित्र के सिक्के अहिच्छत्र में भी मिले हैं। इसी प्रकार कौशाम्बी नरेश वृहस्पति मित्र के सिक्के भी कौशाम्बी के अतिरिक्त अहिच्छत्र में भी मिले हैं।[३७]

कौशाम्बी के घोषिताराम बिहार से उत्खनित कुषाणनरेशों की मुद्राओं के संग्रह भी इस नगर को कुषाणों की सत्ता में अन्तर्निहित होने की संभावना को साकार बनाते हैं। ये मुद्राएँ कुषाणों के अतिरिक्त अन्य मुद्राओं के साथ मिश्रित रूप में प्राप्त हुई है। प्रथम–संग्रह में ५४ मुद्राएँ सम्मिलित हैं जिनमें ५ का निर्मातृ–सम्बन्ध निम्नोक्त कृषाण–शासकों से सम्बन्धित है। (१) कनिष्क –१, (२) हुविष्क–३, (३) वासुदेव–१। दूसरे संग्रह में १३६ मुद्राएँ सम्मिलित हैं, जिनमें केवल एक पतली ताम्र–मुद्रा, जिस पर कुषाणकालीन ब्राह्मी का ''म'' टंकित है, कुषाण शासकों के साथ सम्बन्धित की जा सकती है। तृतीय संग्रह में १७१ मुद्राएँ सम्मिलित हैं, जिनमें ४ का निर्मातृ–सम्बन्ध कुषाणों से माना जा सकता है, तथा शेष मघशासकों की प्रतीत होती है।[३८]

कुछ मुख्य सिक्के :

- गोलाकार सिक्के जिसके मुख भाग पर राजध्वज अंकित है तथा नीचे राजमितस।
- गोलाकार सिक्के जिसके मुख भाग पर मारवाड़ का श्री मलयवर्मदेव अंकित है। प्रतीक अस्पष्ट है।
- मुख भाग पर महाराज श्री चन्द्रगुप्त लिखा है तथा लक्ष्मी की प्रतिमा बनी है और दाहिनी ओर हाथी का चित्र अंकित है।
- एक व्यक्ति दण्ड लेकर खड़ा है।
- मोटा पंचमार्क सिक्का मिला है जो आयताकार है, यह तांबे का है। दूसरी ओर प्रतीक चिन्ह है।
- गोलाकार सिक्के जिसके मुख भाग पर शेर का अंकन है तथा अश्वघोष लिखा है। नीचे बैल का चित्र है।
- गोलाकार सिक्के जिसके मुख भाग पर ऊपर नन्दी पद का अंकन है और नीचे अगिमितस लिखा है। दूसरी ओर एक खड़ा हुआ बैल अंकित है।
- बृहस्पति मित्र के सिक्के– मुख भाग पर बहसतिमि (त स) अंकित है। पृष्ठ भाग पर दाहिनी ओर बैल बना है।
- तांबे के गोल सिक्के– जिस पर कंशबकनं (कौशाम्बिकानां) तथा नन्दिपद प्रतीक बना है।
- छोटे गोल सिक्के– इस पर (व) रूनमितस अंकन है।[३९]
- एक विशेष सिक्का– 'लैंकी–बुल' (Lanky Bull) प्रकार का सिक्का– यह सिक्का कौशाम्बी से प्राप्त हुआ है।[४०]
- कौशाम्बी से प्राप्त विभिन्न चिन्हों से अंकित प्रस्तर मुद्रा लगभग तृतीय शती ई०।
- कौशाम्बी से प्राप्त 'कुलक्षर' अंकित मृण्मुद्रा लगभग द्वितीय शती० ई०।[४१]

भीटा से प्राप्त मुद्रा :

- भीटा से प्राप्त 'आयुक्तक अधिकरणस्य' अंकित मृण्मुद्रा पांचवी शताब्दी ई०।
- भीटा से प्राप्त 'शर्मानकस' अंकित मृण्मुद्रा लगभग तृतीय शती०ई०।
- (महाश्व) पति दण्डनायक पादानुग्रहीत कुमार अंकित मृण्मुद्रा लगभग पांचवी शती ई०।[४२]

सन्दर्भ सूची

[१]राव राजवन्त –प्राचीन भारतीय मुद्राएं, पृष्ठ संख्या ३

[२]*राजकीयं जनपदं लिखितं द्विविधं स्मृतम्।* (–याज्ञ०, २.८४)

[३]*व्यव०म०,* पृष्ठ संख्या २४

[४]*लौकिकम् राजकीयम् च लेख्यम् विद्यात द्विलक्षणम्।* (–वशिष्ठ० (स्मृति चन्द्रिका III पृष्ठ संख्या १२५)

[५]*शुक्र०, ४.५,* पृष्ठ संख्या १७०–१७१।

[६]*शासनं प्रथमं ज्ञेयं जयपत्रं तथाऽपरम्। आज्ञाप्रज्ञापनापत्रं राजकीयं चतुर्विधम्।।* वशिष्ठ० (व्यवहारप्रकाश, पृष्ठ संख्या १४७ पर उद्धृत)

[७]*यो वा ताम्रपट्टे वा स्वमुद्रोपरिचिह्नितम्/ अभिलेख्यात्मनो वंश्यानात्मानं च महिपतिः/ प्रतिग्रहपरीमाणं दानच्छेदोपवर्णनम्/ स्वहस्तकालसम्पन्न शासनं कारयेत्स्थिरम्।* (—याज्ञ० १. ३१९—३२०)

[८]*व्यवहारान् स्वयं दृष्टवा श्रुत्वा प्राडविवाकतः/ जयपत्रं ततो दद्यात परिज्ञानाय पार्थिवः।* (—वशिष्ठ० (स्मृतिचन्द्रिका २, पृष्ठ संख्या ५५ एवं व्यवहारमयूख, पृष्ठ संख्या २८)

[९]*सामन्तेष्वधभृत्येषु राष्ट्रपालादिकेषुवा/ कार्यमादिश्यते येव तदाज्ञापत्रमुच्यते।* (—वशिष्ठ०, उपर्युक्त)

[१०]*ऋत्विक पुरोहिताचार्य मान्येस्वभ्यर्दितेषु च/ कार्य निवेद्यते येन पत्रं प्रज्ञापनाय तत्।* (—वशिष्ठ०, उपर्युक्त)

[११]*देशादिकं यस्य राजा लिखितं तु प्रयच्छति/ सेवाशौर्यादिना तुष्टः प्रसादलिखितं हि तत्।* (—बृहस्पति०, १.६.२५)

[१२]*सरस्वती विलास,* पृष्ठ संख्या १११—११३

[१३]*लिखेज्जानपदं लेख्यं प्रसिद्ध स्थान लेखकः/ राजवंशक्रमयुत वर्षमासार्द्धवासरैः।* (—व्यास, स्मृति०, व्यवहार १.१४)

[१४]*प्राचीन लिपिमाला,* पृष्ठ संख्या १५९

[१५]*भारतीय पुरालिपि,* पृष्ठ संख्या १११

[१६]*जे०बी०ए०एस०,* ३, पृष्ठ संख्या ११८

[१७]उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या २५७

[१८]*का०इ०इ०,* ३, पृष्ठ संख्या १

[१९]*सेलेक्टेड इंशक्रिप्शन,* पृष्ठ संख्या २६२

[२०]*जे०बी०उ०आर०एस०,* १८ (१९३२), पृष्ठ संख्या २०७

[२१]*ए०बी०ओ०आर०आई०एस०* १८(१९३२), पृष्ठ संख्या २०७

[२२]*आई०एच०क्यू०,* २४ पृष्ठ संख्या १०४

[२३]*हि०लि०इ०,* पृष्ठ संख्या ७२

[२४]राय, उदय नारायण —*गुप्त साम्राट व उनका काल,* पृष्ठ संख्या ८३

[२५]*जे०ए०एस०पी०,* ६ पृष्ठ संख्या ६६९

[२६]*का०इ०इ०,* ३

[२७]इस सन्दर्भ में विस्तृत अध्ययन के लिए दृष्टव्य— गोयल श्रीराम —*गुप्तकालीन अभिलेख,* पृष्ठ संख्या १८; राय, उदय नारायण —पूर्वोक्त, पृष्ठ संख्या ८३—८४; रायचौधरी हेमचन्द्र —*पो०हि०ए०इ०,* पृष्ठ संख्या १७१

[२८]भट्ट, डॉ० उदय नारायण —*गुप्त सम्राट व उनका काल*

[२९]*ए०एस०आई०,* ३, पृष्ठ संख्या ५५

[३०]*का०इ०इ०,* ३, पृष्ठ संख्या ४६

[३१]*जे०बी०बी०आर०ए०एस०,* १६ (१८८५), पृष्ठ संख्या ३५४

[३२]*ए०एस०आर०,* १०, पृष्ठ संख्या ७

[३३]*का०इ०इ०,* ३, पृष्ठ संख्या ४५

[३४]*गुप्त मुद्राओं एवं अभिलेखों में प्रतिबिम्बित देव मण्डल,* शोध प्रबन्ध, पृष्ठ संख्या ४९

[३५]उपर्युक्त

[३६]पाण्डेय, डॉ० आर०एन०, पृष्ठ संख्या ५४

[३७]सिंह, डॉ० आनन्द शंकर —*भारत की प्राचीन मुद्राएं,* पृष्ठ संख्या ७१—७२

[३८]उपर्युक्त।

[३९]*इलाहाबाद संग्रहालय,* स्वयं अवलोकित।

[४०]शर्मा, जी०आर० —*मेमोरीज ऑफ द आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, एक्जवेशन्स एट कौशाम्बी,* पृष्ठ संख्या १८

[४१]*टेराकोटागैलरी,* इलाहाबाद संग्रहालय, १८.१२.२०१३ की विजिट में स्वयं अवलोकित।

[४२]उपर्युक्त।

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,71-73**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 06 जनवरी 2017

काशी की संगीत परम्परा : गायन के विशिष्ट संदर्भ में

डॉ0 पौलमी चटर्जी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *काशी की संगीत परम्परा : गायन के विशिष्ट संदर्भ में* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *पौलमी चटर्जी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इस छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध प्रपत्र आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

भूमिका

गंगा नदी के तट पर स्थित, भगवान शिव की पावन स्थली के रूप में पूजित तथा बनारस व काशी जैसे विविध नामों से सम्बोधित की जाने वाली पवित्र वाराणसी नगरी प्राचीन काल से ही अपनी समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर के कारण न केवल भारत–वर्ष में, अपितु सम्पूर्ण विश्व में अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

जैसा कि सर्वविदित है, संगीत किसी भी स्थान की संस्कृति का एक अविच्छिन्न अंग होता है। काशी की समृद्ध संस्कृति के अन्तर्गत भी अन्य कलाओं के साथ ही यहाँ के संगीत का भी विशेष स्थान है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

वाराणसी की संगीत परम्परा नगर के इतिहास जैसी प्राचीन है। वेदों व बौद्ध ग्रन्थों में ऐसे प्रमाण प्राप्त होते हैं जो यह सिद्ध करते हैं कि वैदिक काल से ही इस अत्यन्त प्राचीन नगर में संगीत की अविरल धारा प्रवाहित होती चली आ रही है। वाराणसी में संगीत की यह धारा समय के साथ–साथ विभिन्न रूपों में प्रवाहमान रही है चाहे वह परम्परागत लोक संगीत के रूप में हो, मन्दिरों व घाटों में पुष्पित – पल्लवित धार्मिक संगीत परम्परा के रूप में हो अथवा प्रतिष्ठित शास्त्रीय घराने के रूप में हो जिसे 'बनारस घराना' के नाम से जाना जाता है। बनारस घराने के अन्तर्गत भी गायन, वादन तथा नृत्य के भिन्न–भिन्न घराने अस्तित्व में आये जिनकी वंशावली लिखित व मौखिक परम्पराओं से प्राप्त होती है। यद्यपि यहाँ की संगीत परम्परा तथा घरानों की प्राचीनता इत्यादि के सम्बन्ध में सटीक लिखित जानकारी अत्यन्त अल्प मात्रा में प्राप्त होती है, तथापि प्राप्त मौखिक प्रमाणों व लिखित

* भूतपूर्व शोध छात्रा, गायन विभाग (संगीत एवं मंचकला संकाय) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी एवं संगीत शिक्षिका, केन्द्रीय विद्यालय, पीलीभीत (उत्तर प्रदेश) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक 2017, एम0पी0ए0एस0वी0ओ0 मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहासंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

तथ्यों के आधार पर यह ज्ञात होता है कि वाराणसी की गायन परम्परा गोंडा बलरामपुर से, वादन परम्परा जिला जौनपुर से तथा नृत्य परम्परा इलाहाबाद के हड़िया ग्राम से आरम्भ होती है।

महाजनपद युग में बनारस शिक्षा व व्यापार के साथ ही संगीत के क्षेत्र में भी अग्रणी था जैसा कि जातकों से पता चलता है। 'गुट्टिल जातक' में कहा गया है कि बनारस संगीत–विद्या का केन्द्र था। एक ऐसा समय था जब यहाँ वीणावादन की प्रतियोगिता भी होती थी।

बनारस संगीत परम्परा का नाम लेते ही तबले के बोलों के साथ ध्रुपद, धमार, ख्याल, ठुमरी, टप्पा से लेकर कजरी, चैती, पूर्वी के सरस गायन, सारंगी, शहनाई के तैरते सुरों तथा नूपुरों की झंकार की अनुगूंज रसिक श्रोता के कानों में मिठास घोल देती है। संगीत की कोई भी शैली, विधा एवं पक्ष अछूता अथवा अव्यवस्थित नहीं है। इस दृष्टि से बनारस की संगीत परम्परा शायद सबसे अधिक समृद्ध मानी जा सकती है।

बनारस की वर्तमान संगीत परम्परा लगभग तीन–चार सौ वर्ष प्राचीन है जिसका सम्पूर्ण एवं क्रमबद्ध विवरण उपलब्ध नहीं है। बनारसी वर्तमान गायकी की परम्परा का आरम्भ १९वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से माना जा सकता है।

बनारस में गायन संगीत के घराने

बनारस में गायन के कई घराने हैं जिनमें प्रमुख रूप से प्रचलित घराने निम्न हैं :

१. *पियरी घराना;* इस घराने के प्रवर्तक पं० दिलाराम मिश्र हैं। आपका समय काल सोलहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है। आपके पूर्वज गोण्डा के बलरामपुर में वैष्णव धर्म प्रचारक थे। मुगल सम्राट बाबर ने इनके पूर्वजों को समाप्त कर दिया। व्यथित दिलाराम अपने परिवार सहित वृन्दावन की ओर गये। वहाँ आप पाँचों भाईयों ने राधावल्लभ सम्प्रदाय के विद्वान संगीतज्ञ श्री १०८ हित हरिवंशजी से ३०–३५ वर्षों तक संगीत शिक्षा प्राप्त की। विशेषत: ध्रुपद शैली पर विशेष अधिकार प्राप्त किया। आपने 'सेवक' उपनाम से सैकड़ों ध्रुपदों की रचना की। इसके पश्चात् आप सभी भाई संगीत के प्रचार–प्रसार हेतु भिन्न–भिन्न दिशाओं की ओर चल पड़े। पं० दिलाराम बनारस चले आये।

पं० दिलाराम से पं० ठाकुर दयाल मिश्र तक इस घराने में छन्द, प्रबन्ध, विष्णु–पद, ध्रुपद आदि गायन शैली की परम्परा प्रचलित थी। इस घराने के गायकों में श्री दामोदर मिश्र, छोटे रामदास मिश्र, हुस्नाबाई, शिव कुमार शास्त्री, जद्दन बाई, विधाधरी, पं० विष्णु दिगम्बर पलुस्कर, पं० डी०वी० पलुस्कर, अनन्त मनोहर जोशी आदि हुए।

इसी वंश परम्परा में श्री रामसेवक मिश्र के शिष्य श्री पशुपति सेवक मिश्र, श्री रामा जी भट्ट, श्री रामकृष्ण मिश्र, श्री भानुसेवक मिश्र आदि हुए। इसके अतिरिक्त पियरी घराने के शिष्य बनारस से कलकत्ता, पूर्व व पश्चिम बंगाल तक संगीत की श्रृंखलाबद्ध कड़ी में फैले हुए हैं।

२. *पं० शिवदास प्रयाग जी घराना;* पं० शिवदास एवं प्रयाग जी के पिता श्री प्रहलाद मिश्र मूलत: बनारस से मिर्जापुर सीमा के समीप गुतमन खैरवगहा ग्राम के निवासी थे। आप दोनों भाईयों को संगीत शिक्षा आपके मामा रामप्रसाद मिश्र से प्राप्त हुई। आपके पिता कूचबिहार स्टेट के सूबेदार थे। बाद में आप लोग काशी आ गये। आप दोनों काशी नरेश ईश्वरी नारायण के दरबारी गायक थे। आपके घराने की वंश परम्परा व शिष्य परम्परा में श्री घिन्नू मिश्र, श्री जालपा प्रसाद मिश्र, श्री मिठाईलाल, श्री जगन्नाथ मिश्र, श्री कमल मिश्र, श्री घीरेन बाबू, श्री मग्गन मिश्र, हुस्नाबाई, बड़ी मोतीबाई, पं० श्री चन्द्र मिश्र, श्री दाऊ जी मिश्र आदि कलाकार हुए।

३. *श्री जगदीप मिश्र घराना;* श्री जगदीप मिश्र आजमगढ़ जिले के मौजा हरिहरपुर ग्राम के मूल निवासी थे जो कालांतर में बनारस आ गये। आप ठुमरी के विशेष गायक थे। आपकी बहुमुखी प्रतिभा थी जो नेपाल आदि देशों तक ख्यातिरत रही। आपके बाद शिष्य परम्परा में मौजुद्दीन खां बनारस ठुमरी गायन के प्रतिनिधि के रूप में रहे।

४. *श्री जयकरन मिश्र (बेतिया) घराना;* श्री जयकरन मिश्र बेतिया के मूल निवासी थे। आप बेतिया दरबार के ध्रुपदाचार्य रहे। आप बेतिया से काशी के कबीरचौरा मुहल्ले में आकर बस गये। आपकी वंश परम्परा में पं० बड़े रामदास मिश्र, शिष्यों में प्रसिद्ध ध्रुपद गायक वेणीमाधव भट्ट, भोलानाथ भट्ट आदि हुए।

पं० बड़े रामदास मिश्र की वंश परम्परा में श्री लक्ष्मीराम मिश्र, श्री कुन्तन मिश्र, श्री शिवनन्दन मिश्र, रामसेवक मिश्र (सजीले जी), पं० महादेव प्रसाद मिश्र, श्रीमती सिद्धेश्वरी देवी, हनुमान प्रसाद मिश्र, श्री गोपाल मिश्र, गणेश प्रसाद, श्री जालपा प्रसाद मिश्र, अमरनाथ–पशुपतिनाथ, राजेश्वर प्रसाद मिश्र, राजन–साजन मिश्र आदि हुए हैं।

५. *श्री बख्तावर मिश्र;* श्री बख्तावर मिश्र बेतिया के दरबारी गायक थे। काशी नरेश ईश्वरी नारायण सिंह के विशेष आग्रह पर आप राजदरबारी गायक के रूप में बनारस आये और ध्रुपद गायक के पद पर प्रतिष्ठित हुए।

६. *श्री दरगाही मिश्र;* आपके वंशज मूलत: आजमगढ़ जिले के निवासी थे। कालान्तर में आप कबीरचौरा में रहने लगे। आप भी काशी राजदरबार के कलावन्त थे। आपको संगीत की शिक्षा पियरी घराने के श्री शिव सहाय मिश्र से प्राप्त हुई।

७. *श्री ठाकुर प्रसाद;* ठाकुर प्रसाद मिश्र मूलत: बनारस के ही निवासी थे। आपकी शिक्षा–दीक्षा भी पियरी घराने के श्री शिव सहाय मिश्र जी से हुई। आप टप्पा गायन शैली के मूर्धन्य कलाकार थे। आपकी शिष्य परम्परा में पं० छोटे रामदास मिश्र, गोपाल मिश्र, बड़ी राजेश्वरी बाई, हुस्ना बाई, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, भैरो प्रसाद मिश्र, बैजनाथ प्रसाद मिश्र, श्री दामोदर मिश्र, ताराबाई, श्री शिव कुमार शास्त्री आदि हैं।

८. *श्री मथुराजी मिश्र;* श्री मथुरा जी मिश्र मूल देवरिया के मझौलीराज के निवासी थे जो 'पयासी के मिसिर' नाम से प्रसिद्ध थे। आपके पिता श्री दरगाही मिश्र थे। आप मझौली राजदरबार के गायक थे। कुछ समय बाद आप काशी में विजयानगरम् राजदरबार के दरबारी कलावन्त हुए। आप ध्रुपद, धमार, ख्याल, टप्पा, ठुमरी आदि सभी गायन शैलियों के निपुण कलाकार थे। आपके पुत्र श्री मनमोहन मिश्र भी कुशल गायक थे। श्री मनमोहन के एकमात्र पुत्र श्री राम प्रसाद मिश्र (रामू जी) भी अपने समय के प्रसिद्ध टप्पा–ठुमरी के गायक हुए।

९. *तेलियानाला घराना;* सेनिया घराने की वंश परम्परा में प्रसिद्ध कलावन्त उस्ताद सादिक अली, वारिस अली, अकबर अली (टप्पा गायक), निसार अली (ध्रुपद गायक) आदि मुगल कालीन शाही दरबार के संगीतज्ञ थे। अंग्रेजों के आधिपत्य के पश्चात् शाही दरबार के सभी लोगों के साथ संगीतज्ञ भी दिल्ली को छोड़कर चल पड़े। इसी समय सादिक अली का परिवार बनारस आ गया और वे यहीं बस गये। आप भी उदारमना काशी नरेश के दरबारी गायकों में से थे। बनारस के तेलियानाला (शिवाला) मुहल्ले में आप रहते थे और आपकी अपार कला साधना से इस घराने का नाम तेलियानाला पड़ गया। इस घराने की वंश तथा शिष्य परम्परा में उस्ताद आशिक अली खां, श्री निखिल बनर्जी, श्री देवव्रत चौधरी, श्री राम चक्रवर्ती, श्रीमती कृष्णा चक्रवर्ती, रोशन खां आदि हुए।

निष्कर्ष

काशी प्राचीन काल से ही संगीत का गढ़ है। यहाँ संगीत का आदान–प्रदान प्रारम्भ से ही रहा है जिससे यहाँ का संगीत अधिकाधिक समृद्ध हुआ है। न जाने कितने ही मूर्धन्य कलाकार काशीवासी होने का गौरव पा चुके हैं। यहाँ के घरानों व उनकी परम्परा, मंदिरों में संगीत की परम्परा तथा संगीतिक मंचों ने यहाँ के संगीत को विश्वविख्यात बनाया है। प्राचीन काल से अविरल मुक्तधारा में प्रवाहित होती चली आ रही संगीत की यह धारा आशा है भविष्य में भी प्रवाहित होती रहेगी।

संदर्भ

जौहरी, रेनू (प्रथम संस्करण : २००४) –'भारतीय सांगीतिक जगत में वाराणसी का योगदान', क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, २८, शॉपिंग सेण्टर, करमपुरा, नई दिल्ली – ११००१५

मिश्र, कामेश्वर नाथ (१९९७) –'काशी की संगीत–परम्परा : संगीतजगत् को काशी का योगदान', भारत बुक सेण्टर, लखनऊ

मिश्र, महेन्द्र कुमार, शोध–प्रबन्ध (अप्रकाशित), काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

रॉय, जया, शोध–प्रबन्ध (अप्रकाशित), काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

www.ignca.nic.in

www.mciieiitbhu.org >kashi-katha-2016

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,74-76**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 17 जनवरी 2017

भारत और एशियाई प्रान्त क्षेत्र : एक मूल्यांकन

डॉ0 सीमा रानी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *भारत और एशियाई प्रान्त क्षेत्र : एक मूल्यांकन* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *सीमा रानी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इस छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध प्रपत्र आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

एशिया प्रशान्त क्षेत्र आर्थिक और सामरिक दृष्टि से ग्लोबलाइजेशन की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। भारत इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा हैं। खासकर आसियान देशों के साथ भारत का १९६५ से ही विशेष सम्बन्ध रहा है। मलेशिया के मिग–२९ विमानों के मरम्मत एवं रखरखाव का काम भारत रूस द्वारा संयुक्त रूप से किया गया। वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में एशिया प्रशान्त क्षेत्र का महत्व कई कारणों से है। आर्थिक दृष्टि से यह क्षेत्र बहुत समृद्ध है। चावल, टिन, रबड़ और पेट्रोल यहाँ प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। म्यांमार–थाईलैण्ड और हिन्दचीन में अन्न का विशाल उपजाऊ क्षेत्र है। मलाया में इतना अधिक टिन और रबड़ है कि वह अकेले संसार की आवश्यकता पूर्ति कर सकता है। इण्डोनेशिया और उत्तरी ब्रूनेई में तेल के विशाल भण्डार है।[1]

आर्थिक रूप से इतना समृद्ध होने के कारण भारत इस क्षेत्र की ओर आकर्षित हुआ। १९९० में भारत ने आर्थिक बदहाली का सामना किया। स्वतंत्रता के समय अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में उसकी भागीदारी २.५ प्रतिशत थी जो १९९० में ०.४ प्रतिशत रह गयी। वास्तव में इसका कारण भारत में तेल की बढ़ती हुई मांग थी जिसकी पूर्ति भारत ने कर्ज लेकर की। १९९९ तक भारत में इसने आर्थिक संकट का रूप ले लिया। अत: भारतीय अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए उसका मौलिक रूप से पुन: निर्माण आवश्यक था। एशिया प्रशान्त ने इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारत द्वारा एशिया प्रशान्त क्षेत्र के देशों के साथ अपने सम्बन्धों को विकसित किया गया। इन सम्बन्धों का विकास केवल आर्थिक क्षेत्र में ही नहीं था वरन् सुरक्षा के क्षेत्र में भी था। इस शक्तिवर्द्धक निरन्तर उन्नति से भारतीय अर्थव्यवस्था नई ऊंचाईयॉ छूने लगी तथा भारत के एशिया क्षेत्रों से शक्तिशाली सम्बन्धों की भी स्थापना हुई।[2]

शीत युद्ध के समय में भी भारत ने अनुभव किया कि वे अकेला पड़ गया है। उसने अनुभव किया कि उसके लिए ईसी/ ईयू और नॉर्थ अमरीकन मुक्त व्यापार समझौता (नाफ्टा) देशों के साथ व्यापार करने का मार्ग बन्द हो गया है। इसलिए उसने एशिया प्रशान्त क्षेत्र की ओर देखना प्रारम्भ किया और वह इस क्षेत्र के क्षेत्रीय संगठनों दक्षिण–पूर्वी एशियाई राष्ट्र संघ (आसियान) तथा

* असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीतिशास्त्र विभाग, दमयन्ती राज आनन्द राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय (बिसौली) बदायूँ (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2017, एम0पी0ए0एस0वी0ओ0 मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहासंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

एशिया पैसेफिक इकोनॉमिक कोपरेशन फोरम (एपेक) और विभिन्न सुरक्षा प्रबन्ध जैसे कि आसियान रीजनल फोरम (एआरएफ) में व्यस्त हो गया। भारत के लिए एपेक और अन्य एशिया पैसेफिक संगठनों में अपनी स्थिति को मजबूत करने के लिए आसियान में अपनी स्थिति मजबूत करना आवश्यक था। यद्यपि एकता की समस्या से जूझने के कारण आसियान देशों ने भारत में रूचि नहीं दिखाई। परन्तु नई दिल्ली उनसे अपने सम्बन्धों का विकास करना चाहती थी क्योंकि सोवियत संघ के विघटन के बाद उसका कोई ठोस मित्र नहीं रह गया था। इसके अतिरिक्त उसके आर्थिक सुधार भी यही मांग कर रहे थे।[३]

धीरे–धीरे नई दिल्ली के दक्षिण–पूर्वी एशिया क्षेत्र के देशों के साथ सम्बन्ध विकसित होने लगे तथा आसियान के साथ भी अच्छे व्यवहार का परिचय दिया। भारत का दक्षिण–पूर्वी एशिया क्षेत्र में व्यापार तेजी से बढ़ने लगा। उदाहरण के लिए भारत का निर्यात इस क्षेत्र में १९९२ और १९९३ के मध्य ३०० प्रतिशत बढ़ गया।[४]

भारत ने कम्बोडिया में पुन: स्थापित वियतनाम शासन को मान्यता दे दी तथा भारत–मलेशिया सम्बन्ध भी पुन: उन्नति करने लगे। भारत और मलेशिया ने १९९३ में एक रक्षा समझौते पर हस्ताक्षर किए। भारत ने मलेशिया द्वारा खरीदे गये अट्ठारह मिग–२९ वायुयानों का उसके वायु चलाकों को प्रशिक्षण दिया। मलेशिया ने भी इसके बदले में आसियान में भारत की स्थिति का समर्थन किया। यह समर्थन उस समय किया गया जब भारत ने आसियान देशों के साथ व्यापार करने की इच्छा व्यक्त की।[५]

भारत ने सिंगापुर से भी घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किए। इसका कारण यह था कि टेक्निकल क्षेत्र में विशेषरूप से सॉफ्टवेयर विकास में सिंगापुर ने अत्यन्त उन्नति की थी। इसके अतिरिक्त सिंगापुर शासन भारत का प्रयोग चीन के विरूद्ध करना चाहता है।[६] अत: सिंगापुर ने यह निश्चय किया कि वह भारत में अपनी उच्च प्रौद्योगिकी का प्रयोग करेगा। इसका परिणाम यह हुआ कि दोनों देशों के मध्य ४२ संयुक्त समझौते सम्पन्न हुए। दोनों देशों के द्विपक्षीय व्यापार में भी २० प्रतिशत की वृद्धि हुई और वह १९९४ में + ३.१ विलियन हो गया।[७] १९९४ में दोनों देशों द्वारा चार दिन तक एएसडब्लू (ASW) समुद्री अभ्यास किया गया।[८]

यद्यपि आन्तरिक रूप से देखा जाये तो भारत के दक्षिण–पूर्वी एशियाई देशों से परम्परागत रूप से घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं रहे वरन् भारत ने अपने आर्थिक हितों के कारण दक्षिण–पूर्वी एशिया की ओर देखा तथा उनसे अपने सम्बन्धों को विकसित किया। दक्षिण पूर्वी एशिया क्षेत्र चीन के लिए भी बहुत महत्वपूर्ण था। थाईलैण्ड की चीन से निकटता बढ़ रही थी जो उसे वियतनाम के विरूद्ध एक शक्तिशाली मित्र के रूप में दिखा। जब भारतीय प्रधानमंत्री राव ने १९९३ में थाईलैण्ड की यात्रा की तो राव ने वर्मा में चीन की गतिविधियों के मुद्दे को उठाया जो वर्तमान में नवीन विचार विमर्श का विषय था। इस यात्रा के दौरान दोनों देशों का द्विपक्षीय व्यापार ४०० मिलियन से १ विलियन पहुँच गया।[९] इसके अतिरिक्त एक थाई सैनिक प्रतिनिधिमण्डल भी भारत की यात्रा पर आया और उसने भारत से सैनिक हथियार खरीदने की इच्छा व्यक्त की।[१०] वास्तव में आसियान देशों ने भी अपने आर्थिक हितों के कारण भारत के साथ मजबूत सम्बन्धों की स्थापना की। चूँकि भारत में इनके लिए एक विशाल मध्यवर्गीय बाजार विद्यमान था जो इन राष्ट्रों को व्यापार के लिए अपनी ओर आकर्षित कर रहा था। इसके अतिरिक्त भारत के तकनीकी रूप से प्रशिक्षित व्यक्तियों ने उच्च प्रौद्योगिकी नियोजकों को अपनी ओर आकर्षित किया। धीरे–धीरे भारतीय और अन्य दक्षिण एशियाई लोगों ने दक्षिण–पूर्व एशिया में अपनी स्थिति को मजबूत किया। अत: इस क्षेत्र से भारत को भेजा जाने वाला धन यू०एस० + २.५ विलियन हो गया।[११] दोनों देशों द्वारा संयुक्त रूप से समुद्री अभ्यास किए गए। रक्षा उद्योग के क्षेत्र में भी सम्बन्ध स्थापित किए गये (यद्यपि निम्न स्तर पर)। इसके अतिरिक्त दोनों क्षेत्रों के लोगों के मध्य द्विपक्षीय यात्रायें भी सम्पन्न हुई, व्यापार में उन्नति हुई तथा दोनों क्षेत्रों के लोगों ने एक दूसरे के देशों में निवेश भी किया। इस क्षेत्र के विशाल प्रादेशिक समूहों में भी भारत की स्थिति मजबूत है जैसे एपेक (APEC)[१२]।

आसियान देशों ने भी भारत को अपना आंशिक सहयोगी बना लिया है। भारत को सहयोगी बनाए जाने की घोषणा सिंगापुर के प्रधानमंत्री गोह चोक टोंग ने की।[१३]

वर्तमान में एशिया प्रशान्त क्षेत्र में भारत की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है। एशिया प्रशान्त के राष्ट्रों के लिए भारत की अनदेखी करना बहुत कठिन है क्योंकि भारत एक बहुत ही सम्भावित बाजार हैं। इसके अतिरिक्त व्यापारिक रूप से भारत के लिए भी यह क्षेत्र बहुत महत्वपूर्ण है। यही कारण है कि भारत इस क्षेत्र में अपनी गतिविधियॉ बढ़ा रहा है। इस क्षेत्र में भारत के आर्थिक, प्रौद्योगिकी और व्यापारिक हित है जो उसकी सुरक्षात्मक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। यद्यपि स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद भारत

ने इस क्षेत्र को इतना महत्व नहीं दिया परन्तु हाल के वर्षों में उसने इस क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है। वर्तमान में भारत हिन्द महासागर और एशिया प्रशान्त क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण राजनीतिक और आर्थिक खिलाड़ी है।

संदर्भ ग्रंथ

[1]डॉ० बी०एल० फड़िया –*''अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध',* २०००, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, पृष्ठ संख्या ४९१

[2]सेन्डे गॉर्डन –*''इण्डिया एण्ड एशिया पैसेफिक सिक्यूरिटि'' इन गेरी क्लीनवर्थ,* ''एशिया–पैसेफिक सिक्यूरिटि लेस अनसर्टेनटि, न्यू ऑपचुनटिइ?''१९९६, सेन्ट मार्टिनज प्रेस, न्यूयार्क, पृष्ठ संख्या ६५–६६

[3]*देखें,* वही संदर्भ

[4]*''इण्डिया सीकज मोर इनवेस्टमेन्ट इन साउथ–ईस्ट एशिया''* रियूटर्स न्यूज सर्विस, आर्ट नं. ०००४५९३२६१५५, २५ मई, १९९४

[5]सेन्डे गॉर्डन –*''इण्डिया एण्ड एशिया पैसेफिक सिक्यूरिटि'' इन गेरी क्लीनवर्थ,* ''एशिया–पैसेफिक सिक्यूरिटि लेस अनसर्टनटि, न्यू ऑपचुनटिइ?'' १९९६, सेन्ट मार्टिनज प्रेस, न्यूयार्क, पृष्ठ संख्या ६५–६६

[6]*सिंगापुर के वरिष्ठ अधिकारियों से वार्ता,* दिसम्बर १९९३

[7]*''सिंगापुर हेल्स रिजल्टस ऑफ रीजनल ट्रेड पुश'',* रियूटर्स न्यूज सर्विस, आर्ट नं० ०००५८४६४२०७७, १० फरवरी १९९५

[8]एम सतीश –*'' 'मिलिटरि टाइज विद आसियान ने शन्स इमप्रूविंग'',* द इकोनॉमिक टाइम्स, २३ मार्च १९९४

[9]*''इण्डिया थाईलैण्ड टू स्टेप अप ट्रेड'',* हिन्दुस्तान टाइम्स, २६ मई १९८९, ''इण्डिया क्लब'' फॉर ईस्टर्न इकोनॉमिक रिव्यू, २२ अप्रैल १९९३, पृष्ठ संख्या ९

[10]एम. सतीश –*'' 'मिलिटरि टाइज विद आसियान ने शन्स इमप्रूविंग'',* द इकोनॉमिक टाइम्स, २३ मार्च १९९४

[11]रोबिन आब्रु –*''पिक ऑफ द ईस्ट'',* इण्डिया टूडे, ३१ जुलाई १९९४, पृष्ठ संख्या ९८–९९

[12]सेन्डे गॉर्डन –*''इण्डिया एण्ड एशिया पैसेफिक सिक्यूरिटि'' इन गेरी क्लीनवर्थ,* ''एशिया–पैसेफिक सिक्यूरिटि लेस अनसर्टनटि, न्यू ऑपचुनटिइ?'' १९९६, सेन्ट मार्टिनज प्रेस, न्यूयार्क, पृष्ठ संख्या ७४

[13]डा० बी०एल० फड़िया –*''अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध'',* २०००, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, पृष्ठ संख्या ४९३

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,77-80**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 21 फरवरी 2017

''लोकतंत्र का विकास व सफलता की शर्तें तथा भारतीय लोकतंत्र की वर्तमान स्थिति''

पंकज राठौड़*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *''लोकतंत्र का विकास व सफलता की शर्तें तथा भारतीय लोकतंत्र की वर्तमान स्थिति''* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *पंकज राठौड़* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इस छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध प्रपत्र आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

सारांश

लोकतंत्र का व्यापक अर्थ सामाजिक एवं आर्थिक रूप में लोकतंत्र को लागू करना है। लोकतंत्र जीवन शैली का आशय दूसरों के विचारों के प्रति सहिष्णु होना है। लोकतांत्रिक शासन प्रणाली के अन्तर्गत बहुमत का शासन प्रतिनिधित्व, उत्तरदायी तथा सहमति पर आधारित शासन को स्वीकार किया जाता है। जॉन मिल के अनुसार –''दूसरों के विचारों का सम्मान करना है लोकतांत्रिक जीवन शैली है।'' अत: लोकतंत्र को केवल राज्यों की शासन प्रणाली के साथ जोड़ना पर्याप्त नहीं है, अपितु इसका प्रयोग वैश्विक होना चाहिए। इसलिए वैश्विक संस्थाओं और अन्तर्राष्ट्रीय संघठनों के लोक–तांत्रिकरण पर बल दिया गया है। भारत में लोकतंत्र सफल है लेकिन वर्तमान संकुचित प्रवृत्तियाँ इसे भीड़तंत्र में परिणत करने को कटिबद्ध प्रतीत होती है, समय रहते इसका उपचार करना आवश्यक है। लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था में प्रेस की अहम भुमिका होती है यह जनता के अधिकारों और स्वतंत्रताओं का प्रहरी है। लोकतांत्रिक राष्ट्रों में प्रेस का स्वतंत्र होना अति आवश्यक है, इसके अभाव में न तो विभिन्न प्रकार के विचारों की अभिव्यक्ति हो सकती है, न ही सरकार की नीतियों का प्रकाशन होता है और न ही राष्ट्र के लिए जनमत का निर्माण होता है। लोकतंत्र में मतदाता चुनाव के द्वारा अपने प्रतिनिधि चुनते है और वे चुने हुए प्रतिनिधि संसद में बैठकर कानून बनाते हैं उन कानूनों के द्वारा शासन चलाते हैं। अत: इस शासन प्रणाली में शासन जन सहमति पर आधारित होता है।

लोकतंत्र का अर्थ एवं परिभाषा

लोकतंत्र को आधुनिक काल में शासन का सर्वश्रेष्ठ रूप माना जाता है। लोकतांत्रिक विचारों का इतिहास इतना ही पुराना है, जितना की राजनीतिक विवादों का इतिहास। वर्तमान शताब्दी में लोकतंत्र ने अपने को एक आदर्श रूप में स्थापित कर लिया है। अत: आज प्रत्येक व्यक्ति तथा राज्य अपने आपको लोकतांत्रिक होने का दावा करता है। लोकतंत्र शब्द की उत्पति (डेमोक्रसी)

* शोध छात्रा, राजनीतिशास्त्र विभाग, मोहन लाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान) भारत

© लेखक 2017, एम0पी0ए0एस0वी0ओ0 मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहासंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

शब्द यूनानी भाषा के 'डेमोस' तथा 'क्रेशिया' से मिलकर बना है। जिसमे प्रथम का अर्थ है 'लोग' दूसरे का अर्थ है शासन इस प्रकार लोकतंत्र का शाब्दिक अर्थ है 'जनता का शासन'।[1]

अब्राहम लिंकन ने लोकतंत्र की जो परिभाषा दी है जो इसके शब्दार्थ के बहुत निकट है। इसके अनुसार लोकतंत्र जनता का जनता द्वारा और जनता के लिए शासन प्रणाली है।

जेम्स ब्राइस के अनुसार – लोकतंत्र शब्द का प्रयोग हेरोडोटस के जमाने से ही ऐसी शासन प्रणाली का संकेत देने के लिए होता है जिसमे कानून की दृष्टि से राज्य का नियामक सत्ता किसी विशेष वर्ग या वर्ग के हाथों में नहीं रहती बल्कि समुदाय के सभी सदस्यों में निहित होती है। इस परिभाषा का मूल अभिप्राय यह है कि लोकतंत्रिय प्रणाली में शासन या सत्ता का अंतिम सूत्र जन–साधारण के हाथों में रहता है ताकि सार्वजनिक नीति जनता की इच्छा के अनुसार और जनता के हित–साधन के उद्देश्य से बनाई जाए और कार्यान्वित की जाए।[2]

लोकतंत्र का विकास

अरस्तु के अनुसार जब एक व्यक्ति के शासन को, जिसका उद्देश्य सामान्य हित साधना हो, जिसे अरस्तु ने 'राजतंत्र' कहा है। इसके अतिरिक्त उस शासन को जिसमें शासन एक से अधिक पर बहुसंख्यक लोगों के हाथों में न हो कुछ लोगों के हाथों में हो और उसका उद्देश्य सार्वजनिक हित साधन हो, उसे अरस्तु ने 'कुलीनतन्त्र' कहा है। जब शासन नागरिको के द्वारा संचालित होता है और उसका उद्देश्य सार्वजनिक हित साधन होता है, तो शासन को संवैधानिक शासन, या लोकतंत्र के साधारण नाम से पुकारा जाता है। अरस्तु के अनुसार शासन के तीन प्रकारों में से तीसरा सर्वोतम प्रकार का लोकंतत्र है। लोकंतत्र अथवा संवैधानिक शासन, की परिभाषा अरस्तु ने उस राज्य के रूप में की है, जिसमे अधिकांश नागरिक अपन सार्वजनिक हितों व सार्वजनिक कल्याण का प्रबन्ध करते हैं। सवैधानिक शासन–स्वतन्त्रता व सम्पति सम्बन्धित दो सिद्वान्तों के समझौतो के रूप में है तथा उसके अन्तर्गत निर्धनों की स्वतंत्रता और धनिकों की सम्पति को इस प्रकार एक सूत्र में बाधने का प्रयत्न निहित है कि किसी भी एक को प्रधानता प्राप्त न हो अरस्तु ने यह माना है कि यह सिद्धान्त कुछ आम व्यक्तियों की तुलना में बहुसंख्यक को उच्चतर माना जाना चाहिए, जब बहुसंख्यक साधारण लोग आपस में मिलते हैं, तो उनकी सामुहिक बुद्धि और अनुभव कुछ लोगों की बुद्धि व अनुभव से उसी प्रकार उच्चतर हो सकती है, जिस प्रकार अनेक लोगों के योगदान से किया हुआ भोज किसी एक व्यक्ति की जेब से तैयार किया गया भोज से कहीं बढ़कर होता है।[3]

लोकतंन्त्र के विचार का विकास

प्राचीन यूनान के शहरी राज्य, एथेन्स में जो पश्चिम में लोकतंन्त्र के होने का पहला उदाहरण है। महान यूनानी दार्शनिक प्लेटो ने लोकतंन्त्र के विभिन्न पहलुओं की आलोचना की। उनके अनुसार केवल अक्लमंद लोगों को शासन करना चाहिए, सबको नही क्योंकि अक्लमंद लोग ही सही फैसले कर सकते हैं। प्लेटो का कहना था कि लोकतंन्त्र का बुनियादि आधार समानता, अप्राकृतिक है, क्योंकि लोगों की क्षमताएँ और प्रतिभाएँ भिन्न–भिन्न होती हैं अत: उनका आदर्श गणतन्त्र, कुछ भिन्न सिद्धान्तों पर आधारित है। बिट्रेन का सवैधानिक इतिहास व्यक्ति की आजादी, राजा और उसके मन्त्रियों सहित पूरे शासन पर लोक–नियंन्त्रण ओर बाद में मतदान का अधिकार देने के लिए जनता के लम्बे सघर्ष की कहानी है। मैग्नाकार्टा ने बिट्रेन में लोकतंत्र की जड़ें मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। लोकतंत्र एक आदर्श समानता है। फ्रांस की क्रान्ति में यह आदर्श काफी स्पष्ट रूप से देखने को मिला है। उनका नारा था, स्वतंन्त्रता, समानता और भाईचारा। अमेरिकी क्रान्ति में स्व–शासन के सिद्धान्त पर जोर दिया गया और स्वतंन्त्र राष्ट्र संयुक्त राज्य अमेरिका की स्थापना की, जिसका नारा था प्रतिनिधित्व के बिना कोई कर नहीं।[4]

पामर एवं पार्किन्स का कहना है राष्ट्रवाद किसी राष्ट्र के सदस्यों को, राजनीतिक, प्रादेशिक दृष्टि से राज्य के संगठन में एकीकृत करने का प्रयास करता है। जब यह कार्य सम्पन्न हो जाता है, धरती पर कब्जा करने का संघर्ष छिड़ जाता है। इसके बाद साम्राज्यवाद दलित लोगों अथवा उनके भागों में राष्ट्रवाद की ज्वाला भड़का देता है।[5]

लोकतंत्र की सफलता की शर्ते

लोकतंत्र में जनता शिक्षित, संवेदनशील और उत्तरदायित्व की भावना से परिपूर्ण होनी चाहिए। जनता में ये गुण विकसित करना जरूरी है। दूसरे शब्दों में लोकतांत्रिक राज्य को सार्वजनिक शिक्षा का विस्तृत प्रबंध करना चाहिए और जनसंपर्क के साधनों की सहायता से जनता में मानवीय मूल्यों के प्रति आस्था जगानी चाहिए। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि लोकतंत्र उन्ही देशों में सफल हुआ है जहाँ स्वस्थ लोकतंत्रीय परम्परा रही है। जिन देशों में लोकतन्त्र के लिए अनुकूल संस्कृति की नीव रखे बिना केवल लोकतंत्र का राजनीतिक ढांचा खड़ा कर दिया गया वहाँ लोकतंत्र अधिक दिनों तक नहीं टिक पायेगा। लोकतंत्र सार्थक रूप से तभी कार्य कर पाता है, जब देश में शान्ति और व्यवस्था का वातावरण हो। यदि देश में उपद्रव या संकट उपस्थित हो तो लोकतंत्र को तब तक स्थगित रखना जरूरी होगा, जब तक स्थिति सामान्य न हो जाए। यही कारण है कि लोकतंत्रीय सविधानों में प्राय: आपातकालीन व्यवस्थाएँ रखी जाती हैं। जिससे देश के बाहर या भीतर कोई खतरा पैदा होने पर शासन को प्राय: असीम शक्तियाँ प्राप्त हो सकें और जब तक सामान्य स्थिति न हो तब तक वह अधिक से अधिक प्रभावशाली शासन के रूप से कार्य कर सके। लोकतंत्र की सफलता के लिए आर्थिक समानता और सामाजिक न्याय की स्थापना भी आवश्यक है यदि समाज की आर्थिक व्यवस्था घोर विषमता को जन्म देती है तो उस पर 'राजनीतिक लोकतंत्र' का पर्दा डालकर वंचित वर्गो को ज्यादा दिन तक गुमराह नहीं किया जा सकता। अत: लोकतंत्र की सफलता के लिए यह भी आवश्यक है कि सामाजिक स्तर पर विभिन्न वर्गो को विविध विशेषाधिकार न मिलें हो न ही किसी वर्ग को नीची निगाह से देखा जाता हो।[६]

भारतीय लोकतंत्र की वर्तमान स्थिति

भारत भले ही दुनियाँ की सबसे पुरानी सभ्यता हो पर राष्ट्र के तौर पर काफी युवा है। भारत दुनियाँ का सबसे बड़ा लोकतान्त्रिक देश है। भारत में लोकतंत्र तब आया जब २६ जनवरी १९५० को भारत का संविधान लागू हुआ। यह संविधान विश्व का सबसे लम्बा लिखित संविधान है। भारत के संविधान की प्रस्तावना में भारत को एक लोकतांत्रिक गणराज्य बनाने, सभी नागरिकों को समानता, स्वतंत्रता और न्याय का उल्लेख किया है।[७]

भारतीय स्वाधीनता के अर्द्धशतक से अधिक गुजर जाने के बाद भी देश के बदहाली पर तरस आती है। राजनीतिक आर्थिक और सामाजिक स्थितियाँ ऐसी है जो इस प्रकार है – १. देश का सिर्फ ५२ फीसदी जनता ऐसे मकानों में रहती है जिनकी दीवारें और छत पक्की हैं, २. केवल ५६ फीसदी जनता के घरों में कहने के लिए पानी है, ३. केवल ३८ फीसदी जनता को ही पानी उपलब्ध है, ४. भारत में विकलांगो की संख्या करोड़ों में है, ५. राष्ट्रीय बजट का तीन चौथाई हिस्सा फालतू और नकारा नौकरशाहों पर खर्च हो रहा है, ६. बजट का अधिकांश भाग, विकास योजनाओं के नाम पर, भ्रष्टतंत्र में चला जाता है, ७. भारत में कम से कम १० हजार बेरोजगार हैं, ८. ४० करोड़ निरक्षक हैं, ९. लोकतांत्रिक शासन जनता का जनता द्वारा और जनता के लिए शासन है लेकिन भारत में यह शासकों का, शासक द्वारा, शासकों के लिए हो गया है, १०. भारत देश की अखण्डता केवल नारों में ही सुनाई देती है। जम्मू–कश्मीर से लेकर पूर्वोत्तर राज्यों तक घुसपैंठियों की दया पर लोग जिन्दा है। देश की सीमाएँ सुरक्षित नहीं हैं।[८]

लोकतंन्त्र में राजनीतिक, आर्थिक क्षेत्र में अवसरों की अधिकाधिक समानता अन्तर्निहित है। व्यक्ति द्वारा अपनी योग्यताओं तथा क्षमताओं का विकास तथा अन्य व्यक्तियों के प्रति सहिष्णुता का भाव लोकतंन्त्र का मूलाधार है। राज्य द्वारा प्रत्येक नीति पर जनता का समर्थन प्राप्त करना लोकतंन्त्र की धुरी है। यदि जनता का परमाधिकार छीन लिया जाय तो स्वाधीनता की समाप्ति होगी। राष्ट्रवाद की दृष्टि से आक्रामक राष्ट्रवाद विश्व के लिए खतरा है। लोकतांत्रिक पद्धति पर आधारित जीवन सहिष्णुता का पाठ सिखाता है। वही सहिष्णुता राष्ट्रीय जीवन के लिए भी आवश्यक है। रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने संकीर्ण राष्ट्रवाद का विरोध कर जिस विश्व बन्धुत्व की बात कही है। वही वास्तविक राष्ट्रवाद है। गाँधी जी ने भी अपने आपको राष्ट्रवाद कहा है, किन्तु उनका राष्ट्रवाद न तो संकीर्ण राष्ट्रवाद रहा है और न आक्रामक राष्ट्रवाद रहा है। राष्ट्रवाद की दृष्टि से राष्ट्रीय एकता सबसे बड़ी चुनौती है। भारत में हिन्दू और मुसलमान के दो ऐसे बडे समुदाय हैं, जो लम्बे समय से साथ रहते आये हैं। इन दोनों के मध्य साम्प्रदायिक वैमनस्य समाप्त करके ही धर्म निरपेक्ष लोकतांत्रिक सविधान को स्थापित किया जा सकता है।[९]

आज लोकतांत्रिक व्यवस्था में अपहरण और हत्या की राजनीति चल रही है। धर्म का राजनीतिकरण और राजनीति का धार्मिकीकरण किया जाता है। उसी तरह भाषा और जाति का राजनीतिकरण कर दिया गया है। राजनीतिक हिंसा के साथ घरेलू हिंसा भी बढ़ती जा रही है परिवार में न केवल बहुएँ एवं बेटियाँ भी प्रताड़ित होती हैं बल्कि नौकर–नौकरानियों के साथ अमानवीय व्यवहार भी किए जाते हैं।[१०]

हमारा लोकतंन्त्र अभी रूप ग्रहण कर रहा है अर्थात् संविधान लोकतांत्रिक जरूर है, लेकिन सामाजिक और राजनीतिक मानदंडो का अभी परिवर्तन होना है। हमारा राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में है, यह गतिशील प्रक्रिया है और उसे स्थिर बताना गलत है।[११]

भारत में अनेक और विदेशों में कुछ लोग ऐसे भी हैं जो भारतीयों और भारतीय राजनीतिक नेतृत्व के एक बड़े भाग में लोकतान्त्रिक भावना की ताकत में विश्वास करते हैं।[१२]

संदर्भ ग्रंथ सूची

[१]सतोष कुमार सिह एवं मधुलिका सिह (प्रकाशक) डी.पी.सिह –संघ एवं राज्य लोक सेवा आयोग (राजनीति विज्ञान), पृष्ठ संख्या ५१

[२]ओम प्रकाश गाबा –'राजनीति सिद्वान्त की रूपरेखा', मयूर पेपर बैक्स – नोएडा २००४, पृष्ठ संख्या २२९

[३]डॉ. महेन्द्र कुमार मिश्रा –आधुनिक राजनीतिक विचारक, पृष्ठ संख्या १५, १७, आर. बी. एस. ए. पब्लिशर्स जयपुर, २००९

[४]डॉ. राजकुमार – शासन ओर राजनीति, पृष्ठ संख्या ५२, ५३, अर्जुन पब्लिशिग हाऊस, नई दिल्ली २००६

[५]शैलेन्द्र सेगर –राजनीतिक विज्ञान के सिद्वान्त, पृष्ठ संख्या ६७६, एटलाटिल पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली २००८

[६]ओम प्रकाश गाबा –राजनीति सिद्वान्त की रूपरेखा, पृष्ठ संख्या २४० मयूर पेपर बेक्स – नोएडा २००७

[7]*http://hindi.mapsofindia.com/*my-india/india/democracy-india-success-failure

[८]कर्नल शिव शंकर राय –भारतीय लोकतन्त्र पर सामूहिक बलात्कार, जानकी प्रकाशन, पटना २००५

[९]प्रकाश नारायण नाटाणी –आधुनिक भारत के राजनीतिक विचारक, पृष्ठ संख्या १८६,२७०, पोइन्टर पब्लिशर्स जयपुर २००३

[१०]रामजी सिह –राष्ट्रीयता धर्म और राजनीति, पृष्ठ संख्या ३१ अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली २०१०

[११]राम पुनियानी –साम्प्रदायिक राजनीति तथ्य एवं मिथक, पृष्ठ संख्या २१५, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली २००५

[१२]विपिनचन्द्र –लोकतंन्त्र आपातकाल और जय प्रकाश नारायण, पृष्ठ संख्या ३२६, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली २००७

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,81-83**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 27 दिसम्बर 2016

भ्रष्टाचार : देश के लिए नासूर

डॉ0 सीमा रानी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *भ्रष्टाचार : देश के लिए नासूर* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *सीमा रानी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इस छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध प्रपत्र आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

भ्रष्टाचार का रोग उतना ही पुराना है जितना मानव इतिहास। परन्तु आज इस रोग ने भयंकर रूप धारण कर लिया है। ये हमारे देश के लिए नासूर बन चुका है। यदि आज भारत को घोटालों का देश कहा जाए तो कोई अतिशोक्ति न होगी। चाहे वह राष्ट्र–मण्डल खेलों में घोटाला हो, मुम्बई की आदर्श आवास सोसायटी में गोलमाल या टू–जी स्पेक्ट्रम के आंवटन में बंदरबांद देश की छवि को धूमिल करते हैं। यद्यपि इससे पहले भी अनेक घोटाले हुए परन्तु टू–जी स्पेक्ट्रम घोटाले ने सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था को हिला कर रख दिया और परिणाम वही ढाक के तीन पात। विपक्ष का संसद न चलने देना, जांच कमेटियों का गठन एवं दोषी लोगों को सजा का आश्वासन।

यदि हम भ्रष्टाचार को अपने अतीत में देखें तो झूठ बोलना, लाभ के लिए गलत होने देना और छल का सहारा लेना हमारी पौराणिक कथाओं का हिस्सा रहा है। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में भी भ्रष्टाचार की चर्चा है।[1] परन्तु वर्तमान में भ्रष्टाचार अपने चरम पर पहुँच चुका है। देश की उन्नति से सम्बन्धित अधिकतर योजनायें भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ जाती है। यू०पी० का खाद्यान्न घोटाला इसका जीता जागता उदाहरण है। हाल ही में मनरेगा में भी भ्रष्टाचार की खबरे मीडिया की सुर्खिया बनी।

वामपंथी दल २००८ के प्रारम्भ से ही इसकी ओर ध्यान खींचते आए है कि २जी आबंटन में सरकारी खजाने का एक नहीं, तीन–तीन पहलुओं से नुकसान हुआ है– २००८ में नए बोली लगाने वालो को दिए गए १२२ नए लाइसेंसों में हुआ नुकसान, दोहरी प्रौद्योगिकी के लाइसेंस दिये जाने में हुआ नुकसान और जीएसएम ऑपरेटरो द्वारा अपने वैध हिस्से से ज्यादा स्पेक्ट्रम पर कब्जा बनाए रखे जाने से हुआ नुकसान। यह नुकसान कुल मिलाकर १.९ लाख करोड़ रूपये बैठता था, जबकि कैग ने यह नुकसान १.७६ लाख करोड़ से कुछ ऊपर आंका।[2] यही कारण है कि विपक्ष लगातार इस घोटाले के लिए संयुक्त संसदीय समिति (जेपीसी) की मांग कर रहे थे। सरकार और विपक्ष के बीच का यह गतिरोध कई मायनों में अभूतपूर्व था। ऐसा १९८९ में हुआ था जब समूचे विपक्ष ने बोफोर्स तोप दलाली मामले में जेपीसी का वहिष्कार कर दिया था और विपक्षी सांसदों ने लोकसभा से एक साथ इस्तीफा दे दिया था। तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी विपक्ष के निशाने पर थे और उन्हें तय समय से कुछ महीने

* असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीतिशास्त्र विभाग, दमयन्ती राज आनन्द राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय (बिसौली) बदायूँ (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2017, एम0पी0ए0एस0वी0ओ0 मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहासंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

पहले ही चुनाव कराना पड़ा था। १९९५ में सुखराम के दूरसंचार घोटालें ने भी पूरे सत्र को अपनी चपेट में ले लिया था और फिर जैन कमीशन की रिपोर्ट आने के बाद १९९७ के शीतकालीन सत्र में कांग्रेस ने संसद नहीं चलने दी थी।[३] सरकार और विपक्ष के बीच इन तीनों गतिरोधों के बाद चुनाव हए थे। परन्तु अब ऐसी स्थिति नहीं थी वास्तव में इस घोटाले से भाजपा को संजीवनी मिल गई थी और वह सिर्फ कांग्रेस को घेरने की रणनीति पर काम कर रही थी। हालाकि अपने सम्बन्धियों को भूमि आवंटित करने वाले कर्नाटक के मुख्यमंत्री बी०एस० येदियुरप्पा को हटाने का फैसला न कर पाने के कारण भ्रष्टाचार जैसे मुद्दे पर भाजपा का दोहरा चरित्र उजागर हो रहा था। इधर वर्तमान कांग्रेस सरकार भी अपनी जबावदेही से बचने के लिए स्पेक्ट्रम घोटाले की जांच २००१ से कराने का ऐलान कर चुकी थी जिस पर सुप्रीम कोर्ट ने भी अपनी सहमति दे दी थी।[४] अत: इस मुद्दे पर सभी पार्टियॉ अपनी राजनीतिक रोटियॉ सेकने पर लगी हुई थी।

यद्यपि कांग्रेस सरकार अपनी साख बचाने की पुरजोर कोशिश कर रही थी। सरकार ने पीएसी के अलावा सीबीआई, फेरा निदेशालय से भी जांच के आदेश दिए थे। सरकार ने सुप्रीम कोर्ट के एक रिटायर जज की अध्यक्षता में कमेटी बनाकर इस मामले की जांच शुरू करा दी थी। संसद की स्थायी समिति अलग से जांच कर रही थी और इन सबके ऊपर सुप्रीम कोर्ट पूरे मसले की अलग से निगरानी कर रही थी।[५] परन्तु फिर भी संसद का पूरा शीतकालीन सत्र संयुक्त संसदीय समिति (जेपीसी) की मांग की भेंट चढ़ गया।

लोकलेखा समिति (पीएसी) स्पेक्ट्रम घोटाले की जांच पिछले काफी समय से कर रही थी और यह सर्वविदित है कि पीएसी मूलत: घोटालों के लेखा–जोखा से जुड़ी है और उसे जांच के दौरान पूछताछ के लिए किसी मंत्री तक को बुलाने का अधिकार नहीं है। यही नहीं, इसकी सिफारिश मानने के लिए संसद और सरकार जिम्मेदार नहीं है। इसके विपरीत संयुक्त संसदीय समिति (जेपीसी) शासन और जवाबदेही से जुड़ी जांच होती है और इसके निष्कर्ष संसद और सरकार के लिए बाध्यकारी होते है।[६] यही कारण है कि सरकार निरन्तर जेपीसी की मांग को ठुकरा रही थी। वास्तव में इस मुद्दे पर खुली चर्चा की आवश्यकता थी। जिस पर चर्चा करने से विपक्ष और सरकार दोनों ही बच रहे थे क्योंकि जब चर्चा होती तो किसी का भी दामन पाक साफ न निकलता।

राहुल गाँधी कहते हैं कि आज दो हिन्दुस्तान है एक गरीब, तो दूसरा खुशहाल। अब दोनों हिन्दुस्तानों को जोड़ने की जरूरत है और यह काम सिर्फ कांग्रेस पार्टी ही कर सकती है।[७] राहुल गाँधी की दो हिन्दुस्तान की बात सही है लेकिन इस सवाल का जबाव कौन देगा कि यह खाई बढ़ी कैसे? आजादी के बाद शासन सत्ता ज्यादातर कांग्रेस के हाथ में रही है। तो यह खाई को पाटने का काम कौन भला करेगा? हर मामले में बोलने वाले राहुल आखिर क्यों भ्रष्टाचार के मामले में चुप है? बिहार जाकर मनरेगा के भ्रष्टाचार के खिलाफ आवाज उठा सकते हैं, लेकिन कॉमनवेल्थ गेम्स पर खामोश है। वह आदर्श हाउसिंग सोसायटी पर चुप है क्या इसलिए कि उन्हें डर है कि इन मामलों में उनके अपने लोग ही फंसेगे।

मंत्री पद से हटाए गए ए राजा के यहाँ पड़े छापे को अगर विपक्ष अपनी रणनीति की जीत या सरकार अपनी ईमानदार मंशा का प्रमाण बताती थी तो इसे राजनीतिक जुमलेबाजी से अधिक कुछ नहीं का जा सकता। सीबीआई द्वारा ३४ स्थानों पर छापे मारे गए थे जिसमें केन्द्रीय मंत्री ए राजा के भाई–बहन, कारोबारी दोस्त, पूर्व नौकरशाह, हवाला कारोबारी, द्रमुक सांसद और करूणानिधि की पुत्री कमिमोझी का एनजीओ, एक चर्चित तमिल पत्रकार और कारपोरेट लॉबिस्ट नीरा राडिया का आवास सम्मिलित थे।[८] अत: ये छापे राजनीतिक भ्रष्टाचार की व्यापकता के साथ–साथ आक्टोपस की तरह दूसरे क्षेत्रों के सारे लोगों को भी अपने जाल में समेटने जैसा एहसास दिलाता है।

जब भी भ्रष्टाचार के विरूद्ध कदम उठाने की बात होती है गाज हमेशा राजनेताओं पर गिरती है। यह शायद सत्य भी है। परन्तु आज देश का कौन सा ऐसा संस्थान है, जो भ्रष्टाचार के इस नासूर से मुक्त है? निचली अदालतों में भ्रष्टाचार की बात तो कही जाती रही है, पर अब न्याय के उच्च मंदिर भी ऐसी चर्चाओं से मुक्त नहीं है। सम्पूर्ण राष्ट्र सरहदो की रक्षा और समय आने पर जीवन बलिदान करने वाले सैनिकों के प्रति गहरी कृतज्ञता अर्पित करता है लेकिन रक्षा सेवा के वरिष्ठ अधिकारियों के भ्रष्टाचार में लिप्त होने के बढ़ते मामलों से भारतीय सेना की छवि धूमिल हुई है। इसी प्रकार लोकतंत्र का प्रहरी मीडिया भी यदि इस रोग का शिकार होता है तो हमारा लोकतंत्र खतरे में है। जब पत्रकार चर्चित व्यक्तियों की तरह व्यवहार करते है और राजनेताओं तथा वरिष्ठ नौकरशाहों से मेलजोल रखने लगते हैं, तो पत्रकारिता की ईमानदारी धूमिल हो जाती है और वे राडिया टेप जैसे खुलासे के बाद उत्पन्न विवादों में उलझ जाते हैं।

यद्यपि भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिए हमारे संविधान में 'भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम १९८८' के रूप में केन्द्रीय अधिनियम सं० ४९—९ सितम्बर, १९८८ को अधिनियमित किया गया है।[९] परन्तु यह कारगर सिद्ध नहीं हो पाया है क्योंकि हमारी न्यायिक व्यवस्था बहुत धीमी गति से कार्य करती है। अत: आज आवश्यकता है कुछ ऐसे सख्त कदमों की जो इस कैंसर को जड़ से मिटा सके। जैसे— दोषी व्यक्तियों को तत्काल सजा। इसके लिए विशेष अदालतों का गठन किया जाए जिसमें केवल भ्रष्टाचार के ही मामले चले तथा मुकदमा सौ दिनों में निपट जाए तथा फैसले के विरूद्ध कहीं भी अपील न हो। मीडिया को भी जिम्मेदारी पूर्ण भूमिका निभानी होगी तथा उसे ऐसे भ्रष्ट लोगों के खिलाफ सक्रिय नहीं होना चाहिए।

भ्रष्टाचार के विरूद्ध जनता की भी महत्वपूर्ण भूमिका होनी चाहिए। केवल सरकार इस पर अंकुश नहीं लगा सकती। यह जंग हमें परिवार और स्कूल स्तर पर प्रारम्भ करनी होगी जहाँ भावी पीढ़ी जीवन का पहला पाठ पढ़ती है। क्या आज माता—पिता, शिक्षक बच्चों को ईमानदारी, सच्चाई, करूणा, नैतिकता तथा सादा जीवन उच्च विचार की भावना का पाठ पढ़ाते है। नहीं! आज के भौतिकतावादी एवं प्रतियोगितावादी युग मे बच्चों को अंधी दौड़ में धकेल दिया जाता है जहाँ शिक्षा का उद्देश्य केवल पैसा कमाना रह गया है। अत: इस मानसिकता को हमें समाप्त करना होगा।

आज ईमानदार व्यक्ति स्वयं को उपेक्षित अनुभव करते है अत: हमें उनकी ईमानदारी को पुरूस्कृत करना होगा तभी हम भ्रष्टाचार जैसे नासूर से मुक्ति पा सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ

[१] *''समाज की सफाई''* —अमर उजाला, मुरादाबाद, ०९ दिसम्बर २०१०

[२] *''घोटालों पर परदा''* —अमर उजाला, मुरादाबाद २३ दिसम्बर, २०१०

[३] *''जेपीसी की जिद''* —अमर उजाला, मुरादाबाद, १० दिसम्बर २०१०

[४] *''गड़बड़ी के तार एनडीए से जुड़े है''* —अमर उजाला, मुरादाबाद १८ दिसम्बर, २०१०

[५] *''संसदीय मर्यादा का हनन''* —दैनिक जागरण, ११ दिसम्बर २०१०

[६] *''जेपीसी की राह पीएसी की चाह''* —अमर उजाला, मुरादाबाद, २९ दिसम्बर २०१०

[७] *''शुक्रवार पत्रिका'' १३ से १९ नवम्बर २०१०,* पृष्ठ संख्या २२—२३

[८] *''छापों के पहले छापों के बाद''* —अमर उजाला, १६ दिसम्बर २०१०

[९] *''प्रतियोगिता दर्पण,* नवम्बर २०००, पृष्ठ संख्या ६६३

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,84-89**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 07 फरवरी 2017

प्राचीन भारतवर्ष में शल्य प्रसव द्वारा श्री कृष्ण जन्म

डॉ0 डी0पी0 सिंह* एवं डॉ0 शरदेन्दु बाली**

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *प्राचीन भारतवर्ष में शल्य प्रसव द्वारा श्री कृष्ण जन्म* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र की लेखक डी0पी0 सिंह एवं शरदेन्दु बाली घोषणा करते हैं कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेते हैं, क्योंकि हमने इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देते हैं। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं हमने इसे छपने के लिये भेजा है। यह हमारी मौलिक कृति है। हम शोध प्रपत्र आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देते हैं। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देते हैं।

सारांश

गर्भवती स्त्री के गर्भस्थ शिशु को शल्य क्रिया से प्राप्त करने की विधि को "शल्य जनन" परिभाषित किया गया है। यह शल्य जनन की प्राचीन विधि ग्रीस एवं रोम साम्राज्य में काफी समय से चली आ रही है। यद्यपि पुरातन काल की इस विद्या का वर्णन प्राचीन साहित्य में बहुत कम मिलता है, परन्तु लोक कथाओं में इस प्रकार के औदरिक शल्य जनन की चर्चा सम्पूर्ण विश्व में विधमान हैं। भारत वर्ष के धार्मिक ग्रन्थों में ऐसा वर्णित है कि महात्मा बुद्ध का जन्म इनकी माता के उदर के दायें भाग से हुआ था। देव ब्रह्मा जी का जन्म भी इनकी माता की नाभि से ही हुआ था। भारत के प्राचीन महर्षि सुश्रुत ने अपनी रचना "सुश्रुत संहिता" में गर्भवती नारी के मरणोपरान्त शव विच्छेदन कर जीवित शिशु को प्राप्त करने का पूर्ण विवरण दिया है। इस मरणोपरान्त शव विच्छेदन कर शिशु को प्राप्त करने की विधि प्राचीन रोम एवं ग्रीस में भी विद्यमान थी। आधुनिक पाश्चात्य "शल्य जनन" (सीजेरियन) प्रक्रिया की नींव इसी प्राचीन विधि पर आधारित है।

व्याख्या शब्द : शल्य जनन, सुश्रुत सहिंता, कृष्ण जन्म, सीजेरियन

प्रस्तावना

ईसा मसीह काल से बहुत समय पहले प्राचीन काल में शल्य प्रक्रिया द्वारा शल्य जनन प्रचलित था। यदि गर्भवती नारी गम्भीर रूप से अस्वस्थ रहे या अन्य किसी असाध्य रोग से पीड़ित होकर मरणासन्न अवस्था में प्रवेश कर जाये तो ऐसी परिस्थिति में समकालीन शल्य चिकित्सक शल्य प्रसव कर दिया करते थे। इसका एक मात्र उद्देश्य शिशु को जीवित अवस्था में प्राप्त करना होता था। इस प्रकार का शल्य जनन ग्रीस, रोम, बेबी लोन एवं भारत खण्ड में सर्वप्रचलित था।[1] प्राचीन लातिनी शब्द सीजेरियन इसी शल्य क्रिया से सम्बन्धित है। सीजेरियन शब्द का मूल अर्थ शल्य क्रिया द्वारा गर्भवती नारी के उदर से शिशु को स्वस्थ प्राप्त करना है।[2] रोम के महान योद्धा एवं सेनापति जूलियस सीजर का जन्म भी इसी रीति से हुआ था, ऐसा इतिहास में उल्लिखित

* प्रोफेसर, सर्जरी विभाग, एम0एम0 विश्वविद्यालय (मौलाना) अम्बाला (हरियाणा) भारत
** प्रोफेसर, सर्जरी विभाग, एम0एम0 विश्वविद्यालय (मौलाना) अम्बाला (हरियाणा) भारत

© लेखक 2017, एम0पी0ए0एस0वी0ओ0 मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहासंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

है। इनके किसी अन्य पूर्वज का जन्म भी इसी विधि से हुआ था। जूलियस सीजर की माता इसके जन्म के समय अति गम्भीर

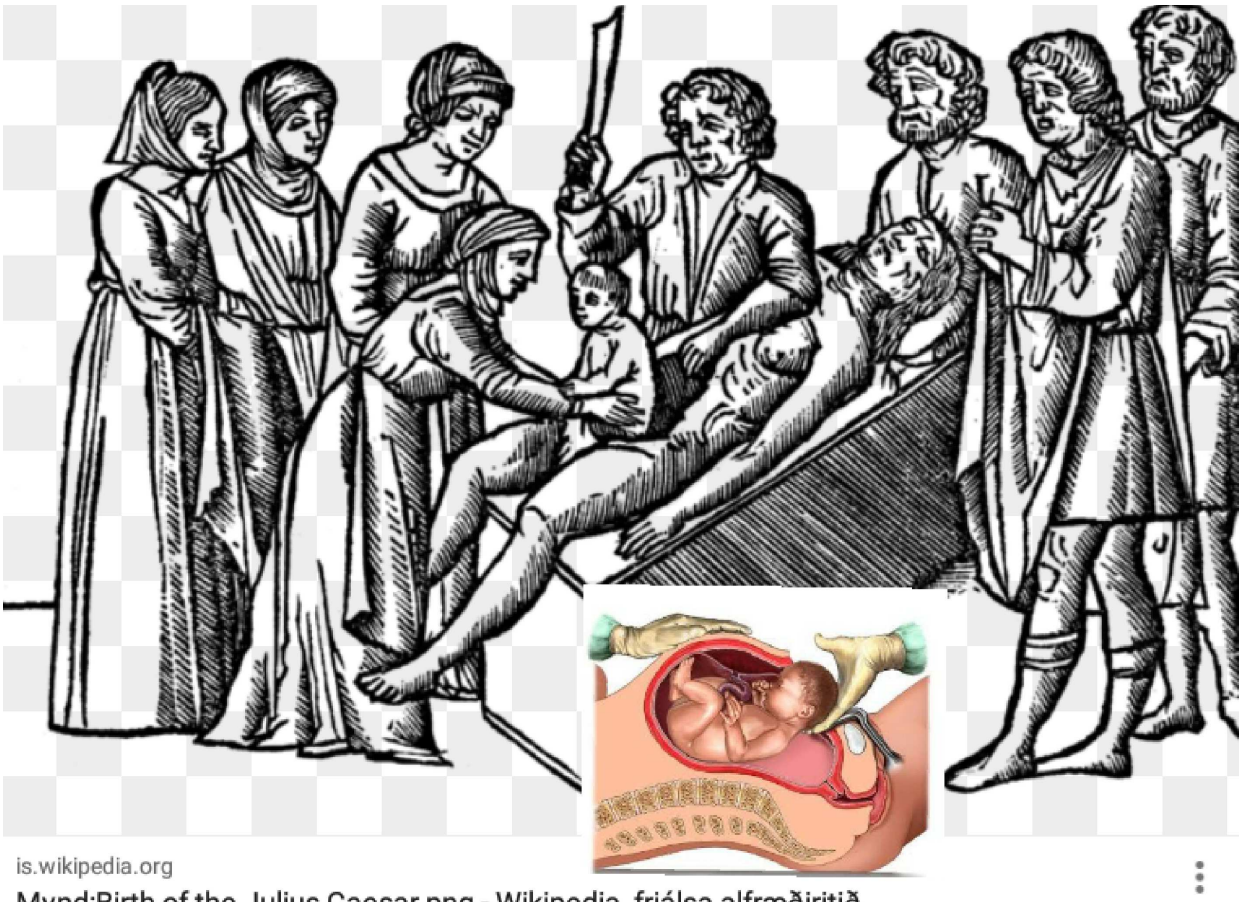

अवस्था में थी, कदाचित मरणासन्न थी। यह शल्य प्रयास शिशु जूलियस सीजर को जीवित अवस्था में प्राप्त करने के लिये किया गया था। अन्यथा शिशु जूलियस सीजर अपनी मरणासन्न माता के साथ गर्भ में ही मृत हो जाता। इस शल्य प्रसव प्रक्रिया से जूलियस सीजर के प्राण बच गये।[३] साथ ही जूलियस सीजर की माता भी शनैः शनैः रोग मुक्त होती चली गई और काफी समय तक जीवित रही। वर्तमान काल में भी रोम एवं अन्य भू–खण्डों में गम्भीर रोगिणी गर्भवती नारी के उदर से शल्य क्रिया द्वारा शिशु को जीवित प्राप्त किया जाता है। रोम साम्राज्य में वर्तमान में यह प्रक्रिया शासन सम्मत है। सभी आधुनिक राष्ट्रों में भी ऐसा प्रचलित है।

चन्द्र गुप्त मौर्य के पुत्र बिन्दुसार महान शासक अशोक के पिता थे। बिन्दुसार का जन्म भी शल्य क्रिया द्वारा हुआ था। कथानक के अनुसार उस काल में राजा महाराजाओं के यहाँ विष कन्यायें नियुक्त रहती थी। पड़ोसी देश के अतिथि नरेशों के लिए इनकी सेवायें ली जाती थीं। पड़ोसी नरेश जो आक्रमणकारी एवं विनाशकारी होते थे उन्हें धोखा देकर विषकन्याओं की सहायता से मार दिया जाता था। इन विष कन्याओं के विष को निष्क्रिय करने लिये तत्कालीन सभी शासक–प्रशासक, अल्प मात्रा में अपने नियमित भोजन में विष का सेवन करते थे। इस अल्प विष रंजित भोजन से इन शासकों की विष निरोधण क्षमता बढ़ जाती थी और इन विषकन्याओं के विष का प्रभाव इन पर नहीं पड़ता था। विषकन्याओं के सम्पर्क में आने पर भी इन शासकों के स्वास्थ्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। इस विषम परिस्थिति में भी यह शासक पूर्णतः स्वस्थ रहते थे। बिन्दुसार के पिता चन्द्रगुप्त भी ऐसा ही विष मिश्रित भोजन करते थे। किसी समय दुर्भाग्य वश बिन्दुसार की माता ने विष रंजित भोजन कर लिया था। इस विष रंजित भोजन के पश्चात इनकी माता का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा और वह गम्भीर मरणासन्न स्थिति में पहुंच गई थी। इस समय यह गर्भवती भी थी। इस काल में भी गर्भस्थ शिशु की जीवन रक्षा के लिये शल्य प्रक्रिया विद्यमान थी। इसी शल्य क्रिया द्वारा बिन्दुसार का जन्म हुआ था।[४] यह सारी शल्य प्रक्रिया उस समय के महान विद्वान मनीषी चाणक्य द्वारा सम्पन्न कराई गई

थी। इनका मात्र उद्देश्य मगध के युवराज बिन्दुसार को जीवित एवं स्वस्थ प्राप्त करना था, अन्यथा गर्भस्थ शिशु बिन्दुसार की मृत्यु गर्भ मे ही हो जाती एवं मगध साम्राज्य उत्तराधिकारी से वंचित रह जाता। शल्य जनन प्रक्रिया का आर्युवैदिक साहित्य सुश्रुतसंहिता में सम्पूर्ण वर्णन है।[५] गर्भस्थ शिशु को शल्य प्रक्रिया द्वारा प्राप्त करने की विधि प्राचीन ग्रन्थों में निहित है। गर्भवेद विज्ञान भी उस समय प्रचलित था। पुराणों की रचना काल में भी यह शल्य क्रिया उपयोग में लाई जाती थी।

आलेख

श्री कृष्ण जी का जन्म शल्य प्रक्रिया द्वारा किया गया था। इनके जन्म के समय परिस्थितियाँ बहुत निराशाजनक थी। देवकी की सभी सन्तानों का वध करने के लिये देवकी एवं वासुदेव को कारागार में बंदी बनाकर रखा गया था। कारागार में इस दम्पति की आठों पहर गहन निगरानी की जाती थी। कंस स्वयं भी बार–२ आकर बन्दीगृह की समीक्षा करता था। इस गहन निगरानी में श्री कृष्ण जी का जन्म के बाद जीवित रहना असम्भव ही था। इनके जन्म का प्रसंग इस प्रकार है।

कृष्ण जन्म की भविष्यवाणी महर्षि वेदव्यास जी ने पहले ही कर रखी थी कि अमुक दिन, समय एवं घड़ी में श्री कृष्ण का जन्म होगा। वासुदेव एवं देवकी की सभी पूर्व सात सन्तानों का वध कंस कर ही चुका था। वह तो बस आठवीं सन्तान की व्यग्रता से प्रतीक्षा कर रहा था। इस सन्तान की हत्या कर वह सदैव के लिये भयमुक्त होना चाहता था। यादव वंश के लोग महर्षि वेदव्यास की भविष्यवाणी को मूर्तरूप से देखना चाहते थे। परन्तु वह लोग कंस से भयभीत भी थे। यदुवंशियों का विश्वास था कि श्रीकृष्ण ही उन्हें कंस की क्रूरता एवं निर्दयता से मुक्ति दिला सकता है। इसी समय में देवकी के सातवें गर्भस्थ भ्रूण का विस्थापन वासुदेव की अन्य पत्नी रोहिणी के गर्भ में कर दिया गया था। यह प्रसव भी शल्य उपकरणों की सहायता से हुआ था। बालक बलराम का जन्म अप्राकृतिक विधि से गर्भ योनि से कर्षण उपकरणों से किया गया था। अत: बलराम का नाम संकर्षण भी प्रसिद्ध है।[६]

देवकी की आठवीं सन्तान का ही भय कंस को सता रहा था। देवकी के विवाह मण्डप में आकाशवाणी द्वारा कंस को चेतावनी दी गई थी कि देवकी की आठवीं सन्तान के द्वारा कंस का वध होगा। अत: वह किसी भी परिस्थिति में आठवीं सन्तान को जीवित नहीं छोड़ना चाहता था। देवकी के आठवें प्रसव के समय कारागार की सुरक्षा और भी अधिक बढ़ा दी गई थी। सैनिकों एवं द्वार–पालों को सचेत किया गया था। कंस ने अपनी चचेरी बहन पूतना को कारागार में देवकी की प्रसव सहायता के लिये रख दिया था। कोई भी अन्य चिकित्सा परिचारिका गर्भवती देवकी की सेवा में नहीं थी। पूतना का पति प्रद्योत कंस का एक विश्वसनीय सेनापति था। पूतना बहुत ही निर्दयी एवं कठोर थी। परन्तु वह अपने भ्राता कंस की पूर्ण निष्ठावान थी।

ऋषि गर्गाचार्य उस समय के महान पंडित एवं पुरोहित थे। वह राजकुमार वासुदेव के राज पुरोहित थे। वासुदेव के सभी धार्मिक अनुष्ठान उनके द्वारा ही समपन्न होते थे। वासुदेव व देवकी से सम्बन्धित पूजा अर्चना के लिए भी वह ही उत्तरदायी थे। आचार्य होने के नाते बन्दीगृह में वह बाधा विहीन आवागमन करते थे। बन्दीगृह में देवकी दम्पत्ति की निगरानी पूतना बड़ी सर्तकता से करती थी। पल–२ की सूचना कंस को सम्प्रेषित करती रहती थी। सभी संवेदनशील स्थानों पर मगध राज्य के युद्ध निपुण सैनिकों को नियुक्त किया गया था। निगरानी सुचारू रूप से हो रही थी।

मथुरा के निवासी कंस के दुर्व्यवहार, आंतक, प्रताड़ना, शोषण एवं अत्याचार से बहुत पीड़ित थे। वह किसी भी अवस्था में कंस से छुटकारा पाना चाहते थे। देवकी की आठवीं सन्तान ही उनकी एक मात्र आशा थी। आठवीं सन्तान में उन्हें ऊषा की किरण दिखती थी। देवकी विवाह मण्डप की कंस वध भविष्य वाणी में भी उनका अटूट विश्वास था। देवकी की आठवीं सन्तान को सुरक्षित जीवित रखने के लिये वह प्रयत्नशील थे। विभिन्न प्रकार की योजनाएं उनके मानस पटल पर चल रही थी। संयोगवश इसी समय गोकुल में नन्द की पत्नी यशोदा भी गर्भवती थी। यशोदा का प्रसव काल भी इसी समय था। मथुरावासी भी इस संयोग से परिचित थे। वासुदेव एवं नन्द में गहरी मित्रता थी। यह तथ्य भी उन्हें विदित था। विवेकशील मथुरा वासियों ने योजना बनाई कि यदि किसी तरह नन्द की होने वाली सन्तान को देवकी की सन्तान से प्रति स्थापित कर दिया जाये तो देवकी की आठवीं सन्तान कंस के प्रहार से बच सकती है। इस सन्तान से ही मथुरा साम्राज्य को कंस के अत्याचार से मुक्ति मिल सकती थी। परन्तु इस कार्य शैली में नन्द बाबा की सन्तान का वध कंस द्वारा हो जाएगा। यह विचार कुत्सित भी था परन्तु आवश्यक भी

था। बड़ी गहनता से विचार विमर्श किया गया। निष्कर्ष यह था यह योजना मथुरा के पूरे जनसमुदाय के लिये हितकर है। नन्दबाबा एवं यशोदा को सन्तान खो जाने का कष्ट तो अवश्य ही होगा। परन्तु ऐसा करना अति आवश्यक हो गया था। कुछ बुद्धिमान एवं निडर जनों से नन्द को यह प्रस्ताव भेजा। मथुरावासियों के हित के लिए नन्द ने यह योजना सहर्ष स्वीकार कर ली। वासुदेव तो उनके परम मित्र भी थे। प्रिय मित्र एवं जनसमूह के लिए वह अपने नवजात शिशु को न्योछावर करने के लिए राजी हो गये।

अब समस्या थी नवजात शिशुओं के प्रतिस्थापन की। इस कार्य में महर्षि गर्गाचार्य ने सहायता की।[७] महर्षि गर्गाचार्य की भी यह हार्दिक कामना थी किसी तरह देवकी की आठवीं सन्तान के प्राण बच जाये। इस सन्तान के जीवित बचने पर ही मथुरावासी भय एवं यातना से मुक्त हों सकेंगें। गर्गाचार्य जी महान बुद्धिमान एवं परोपकारी व्यक्ति थे। कारागार में आवागमन के समय गर्गाचार्य जी ने बंदी गृह में नियुक्त द्वारपालों, सेवक एवं सेविकाओं से गहन मित्रता कर ली थी। सभी द्वारपाल गर्गाचार्य के व्यवहार से अति प्रसन्न थे।

बन्दीगृह में आवागमन के समय वह वहाँ के नियुक्त कर्मचारियों को मिष्ठान प्रसाद भी यदा कदा दिया करते थे। कोई भी द्वारपाल गर्गाचार्य पर सन्देह नहीं करता था। कारागार में वह किसी भी समय आ जा सकते थे।

सावन के माह में भरतखण्ड में वर्षा ऋतु का आगमन हो जाता है। वर्षा के कारण सभी नदी, नाले, ताल तलैया उफान पर होते हैं। सभी जगह हरियाली ही हरियाली होती है। सभी स्थानीय मार्ग पगडंडिया जल भराव से टूट जाते हैं। जन जीवन वर्षा के कारण अस्त व्यस्त रहता है। सभी प्रकार की दैनिक सेवाएं भी बाधित रहती है। इसका प्रभाव राज्य की सेवाओं पर भी पड़ता है। ऐसे समय राजकीय कर्मचारी भी सेवायें अच्छी प्रकार देने में अक्षम होते हैं। बन्दीगृह के द्वारपाल भी वर्षा के कारण सतर्क एवं सक्षम नहीं रह पाते थे। चहुँ ओर शिथिलता का वातावरण उत्पन्न हो जाता है। ऐसी ही एक संध्या को विद्युत गर्जना के साथ वर्षा हो रही थी। रात्रि के पहले पहर में और भी वर्षा होने लगी थी। चारों ओर घना अन्धकार था। आंधी एवं तूफान भी गतिमान था। अति वृष्टि के कारण वातावरण भी शीतल एवं रमणीक हो गया था। ऐसे में सभी मथुरा वासी अपने–२ घरों में दुबके पड़े थे। महर्षि गर्गाचार्य ऐसे ही अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे। यशोदा के यहाँ प्रसव हो चुका था। इसकी सूचना इन्हें प्राप्त हो गई थी। परन्तु देवकी की जनन प्रक्रिया में अभी विलम्ब था। गर्गाचार्य जी आतुर थे। उनको विचार आया कि यदि देवकी का प्रसव अप्राकृतिक विधि से शल्य द्वारा तुरन्त ही शीघ्रता से सम्पन्न हो जाये तो वह देवकी के नवजात शिशु को रात्रि ही में गोकुल पहुँचा देंगे। इस भंयकर अंधकारमय रात्रि में किसी को भी सन्देह नहीं होगा।

यह विदित सत्य है कि उस काल में भी शल्य उपकरणों द्वारा शिशु को गर्भाशय से जीवित प्राप्त कर लिया जाता था। गर्गाचार्य जी ने वासुदेव से निवेदन किया कि देवकी का प्रसव शल्य क्रिया द्वारा कर दिया जाये तथा नवजात शिशु को तुरन्त ही ब्रज में नन्द बाबा जी की नवजात सन्तान से प्रतिस्थापित कर दिया जाये। वासुदेव एवं देवकी ने इस प्रक्रिया की सहर्ष अनुमति दे दी। दम्पति की यह प्रबल इच्छा थी कि किसी भी तरह शिशु जीवित रहे। कारागार में तो यह दम्पति पूर्णतया असहाय ही था। उधर वर्षा थमने का नाम नहीं ले रही थी। जैसे–जैसे रात्रि का अंधकार बढ़ता गया था वर्षा और तेज होती गई। ऐसी स्थिति में गर्ग जी कारागार में ही विश्राम के लिए रुक गये थे। भंयकर तूफान अंधकार एवं वर्षा से सारा जन जीवन स्थिर था। सभी मार्ग एवं पगडंडियां अवरुद्ध थी। इस वातावरण में पूतना एवं द्वार रक्षक, सेवक–सेविकायें निश्चिंत एवं निष्क्रिय थे। इस समय ही गर्गाचार्य किसी कार्य से यमुना किनारे गये। इसी समय इस छोर पर एक नौका आकर रुकी। इस नौका से एक तेजस्वी युवक गर्गाचार्य की ओर बढ़ा। युवक के हाथ में एक पोटली थी। गर्गाचार्य ने युवक से यह पोटली ले ली। इस पोटली में यशोदा की नवजात कन्या, मधुर खाद्यान एवं शल्य उपकरण थे। यह कन्या कुछ समय पहले ही जन्मी थी। ऋषि गर्ग ब्राहमण युवक को कारागार के पश्च द्वार से वासुदेव दम्पति के कक्ष में ले गये। यह युवक उस समय के महान शल्यकार सुश्रुत ही थे। सुश्रुत ऋषि भारद्वाज के शिष्य थे। सुश्रुत ने वेदव्यास एवं गर्गाचार्य से चिकित्सा दीक्षा ले रखी थी। अथर्ववेद के ज्ञाता एवं मर्मज्ञ वामदेव से भी सुश्रुत ने शल्य चिकित्सा सम्बन्धी शिक्षा ले रखी थी। आयुर्वेद एवं शल्य क्रिया अर्थव वेद का अभिन्न अंग है। अर्थववेद का अध्ययन करने वाले व्यक्ति मानव शरीर रचना, शरीर क्रिया विज्ञान एवं शल्य क्रिया में निपुण होते हैं। शल्य क्रिया में दक्ष करने के लिये ऋषि भारद्वाज ने अपने प्रिय शिष्य सुश्रुत को वामदेव के पास भेजा था। स्वयं ऋषि भारद्वाज ने भी सुश्रुत को शल्य जनन विधि में शिक्षित किया था। यही शल्य जनन विधि रेवती पुत्र बलराम के जन्म में भी उपयोग में लाई गई थी।

बलराम का जन्म सामान्य प्राकृतिक रूप से योनि द्वारा सम्भावित नहीं था। अत: शिशु कर्षण उपकरणों द्वारा इनका जन्म समकालीन शल्यकारों द्वारा किया गया था। इसी कारण से बलराम का अन्य नाम संकर्षण भी प्रचलित है।

गर्गाचार्य जी सुश्रुत को देवकी के कक्ष में ले गये। कक्ष में देवकी प्रसव पीड़ा में थी। सुश्रुत ने देवकी का चिकित्सीय परीक्षण किया और कक्ष से बाहर आकर विचार मग्न हो गये। उसी समय गर्गाचार्य ने सुश्रुत से प्रश्न किया कि शिशु जन्म कब सम्भावित है। सुश्रुत ने उत्तर दिया कि अभी बहुत विलम्ब है। पूरी रात्रि भी प्रतीक्षा में व्यतीत हो सकती है। जनन प्रात: काल अथवा उसके पश्चात ही सम्भावित है। कदाचित सामान्य जनन प्रक्रिया सम्भव ही ना हो। ऋषि गर्गाचार्य चिंतातुर एवं व्याकुल थे। विचारों में लीन थे यदि जन्म प्रात: काल होगा तो सभी जनमानस, द्वारपाल, सेवक एवं सेविकायें निन्द्रा से जग जायेंगे तथा कोई भी योजना गुप्त नहीं रह पायेगी। गहन विचार के पश्चात प्रसव क्रिया मध्यरात्रि से पूर्व ही सम्पन्न करने का निर्णय लिया गया परन्तु ऐसा शल्य क्रिया से ही सम्भव था। यशोदा की नवजात कन्या को सुश्रुत ले ही आये थे। अब बस देवकी की सन्तान की ही प्रतीक्षा थी। रात्रि का गहन अंधकार, मूसलाधार वर्षा, विद्युत क्रन्दन एवं प्रचण्ड वायु इस गुप्त कार्य के लिए अति अनुकूल थी। रात्रि के पूर्वपहर में ही शल्य क्रिया द्वारा जनन करने का निश्चय किया गया। गर्गाचार्य ने वासुदेव दम्पति से शल्य क्रिया की अनुमति ले ली। दम्पति की ऋषि गर्गाचार्य में पूर्ण निष्ठा थी। वह जानते थे ऋषि जी अति मर्यादित एवं विवेकशील ज्ञानी पुरूष हैं। वह निश्चित ही समाज के लिये परोपकार ही करेंगे। अत: उन्होंने सहर्ष शल्य क्रिया की स्वीकृति दे दी। तत्पश्चात ऋषि गर्गाचार्य ने वासुदेव को मधुर मिष्ठान की एक गठरी दी। इस मिष्ठान में सुश्रुत द्वारा लाई गई मादक निद्रा उत्पन्न करने वाली औषधियाँ मिलाई गई थी। यह सुगंधित मिष्ठान बंदीगृह के कर्मचारियों में आबंटित कर दिया गया। सभी द्वारपाल अंगरक्षक एवं सेविकायें मिष्ठान खाकर अचेत निद्रा में लीन हो गये। यह समय विकराल अंधियारी रात्रि का था। सभी प्रहरियों के गहन निद्रा में जाने पश्चात शल्य क्रिया आरम्भ की गई। सुश्रुत जी ने शल्य उपकरणों को जल में क्वथन कर लिया था। सभी उपकरण एवं यंत्र जीवाणु–विषाणु मुक्त हो गये थे। देवकी के शयन कक्ष को शल्य प्रकोष्ठ में परिवर्तित कर दिया गया।

विभिन्न प्रकार की औषधियों के धूम्र से कक्ष को भी जीवाणु रहित किया गया। इस प्रक्रिया से कक्ष का वातावरण स्वच्छ एवं प्रदूषण रहित हो गया। कक्ष में स्वस्थ एवं सुगन्धित वायु का संचार होने लगा। गर्गाचार्य जी देवकी के मस्तिष्क की ओर खड़े

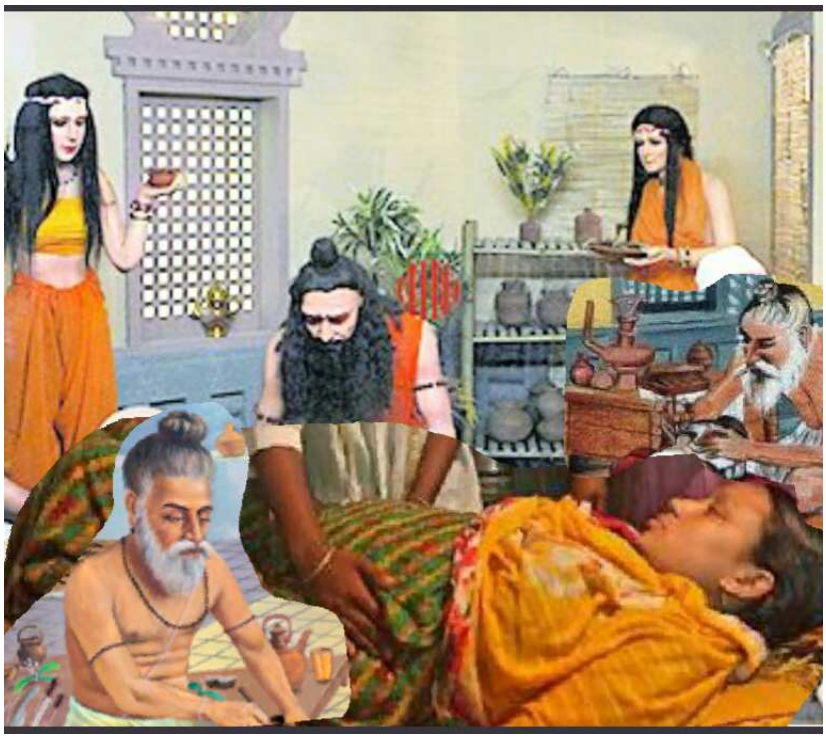

हो गये। उन्होंने कुछ द्रव औषधियों देवकी के नासा छिद्र में डाली। इस सुवासित द्रव से देवकी चेतना शून्य हो गई। इसी समय सुश्रुत ने वासुदेव की सहायता से देवकी के गर्भाशय से शल्य क्रिया द्वारा शिशु को जीवित निष्कासित किया। गर्भाशय से बाहर आते ही शिशु क्रन्दन करने लगा। क्रन्दन ध्वनि से कक्ष का वातावरण अलौकिक एवं संगीतमय हो गया। कक्ष में विद्यमान शल्यक सुश्रुत, गर्गाचार्य एवं वासुदेव अत्यधिक प्रफुल्लित थे। सभी उपस्थित जनों को असीम, अनन्त परम आनन्द की अनुभूति हुई। कुछ क्षण पश्चात ही शिशु का रुदन रुक गया। गर्गाचार्य ने शिशु का सूक्ष्मता से निरीक्षण किया। नवजात बालक पूर्ण रूपेण स्वस्था था। उसके मुख मण्डल से नील कमल की आभा प्रस्फुटित हो रही थी। कक्ष में द्विव्य प्रकाश फैल गया था। बालक को लेकर गर्गाचार्य जी भावात्मक हो गये थे। उनके नेत्र असीम आनन्द से अश्रुपूर्ण हो गये। उनके मुख से कोई भी शब्द प्रस्फुटित नहीं हो पा रहे थे। उनके मस्तिष्क में विभिन्न प्रकार के विचार उमड़ घुमड़ रहे थे। कल्पनाओं का सागर उनके अन्त: करण में

हिलोरे ले रहा था। इस बालक द्वारा ही मथुरावासी कंस के अत्याचार से मुक्त होने वाले थे। इसी मध्य सुश्रुत जी ने शल्य क्रिया पूर्ण कर दी। शिशु और देवकी का निरीक्षण कर वह कक्ष से प्रस्थान कर गये। तुरन्त ही इस शिशु को घोर अधियारी रात्रि में विकराल वर्षा में नन्द बाबा के यहाँ ले जाया गया था। यमुना माता भी श्री कृष्ण जन्म से अत्यन्त प्रफुल्लित थी और पूरे वेग और गर्जना से किलोल कर रही थी। जैसे ही वासुदेव जी ने यमुना में प्रवेश किया, यमुना माता अपने इष्ट देव श्री कृष्ण के चरण स्पर्श के लिए लालायित हो उठी। वासुदेव के यमुना मध्य पहुँचते ही माता ने अपने जल की ऊँची लहर से श्रीकृष्ण के पाव छू लिये। इसके पश्चात माता ने अपना जल स्तर घटा लिया और वासुदेव जी के लिए सहर्ष मन्द–२ मार्ग बना दिया। इस प्रकार वासुदेव जी अपने प्रिय पुत्र श्री कृष्ण को सुरक्षित स्थान मथुरा पहुँचा दिया।

टिप्पणी : उत्तर प्रदेश में वर्तमान में आगरा, मथुरा एवं अलीगढ़ जनपद ब्रज भूमि का प्रदेश है। आधुनिक काल में भी ब्रज मण्डल में कृष्ण जन्म से सम्बन्धित परम्परायें बहुरोचक एवं आश्चर्यजनक है। ब्रज प्रदेश में कृष्ण जन्माष्टमी के दिन मध्य–रात्रि के समय स्त्रियां एक बड़े आकार के खीरे को चीरती है। इस खीरे में पहले से ही श्री कृष्ण की एक छोटी सी मूर्ति रख दी जाती है। इस तरह खीरे को चीर कर कृष्ण जन्म से सम्बन्धित घटना का विवरण देती है। ऐसा प्रतीत होता है यह प्राचीन परिपाटी शल्य प्रजनन का प्रतिरुप है। ब्रज मण्डल की महिलाओं ने सदियों से इस परम्परा को संजो कर रखा हुआ है। प्राचीन समय के ऋषि मुनि इस प्रकार के आश्रित प्रजनन में निपुण एवं सक्षम थे। कर्षण उपकरणों द्वारा बलराम का जन्म भी शल्य क्रिया की ओर इंगित करता है। इस काल में भ्रूण प्रत्यारोपण भी सम्भव था। यह असाधारण प्रक्रिया इस काल में भी उपयोग में लाई गई थी। कंस के भय से देवकी की सांतवी सन्तान को भ्रूण रूप में वासुदेव की अन्य पत्नी रोहिणी के गर्भाशय में प्रत्यारोपित किया गया था। ऐसा हमारे प्राचीन ग्रन्थों में उद्धृत है। आधुनिक काल का आश्रित प्रजनन, प्रतिस्थापन प्रजनन एवं कृत्रिम गर्भाधान प्राचीन भारत में भी प्रचलित था। आजकल इसका रूप, ज्ञान एवं विधि भिन्न हो गई है। काल एवं परिस्थिति के अनुसार सभी घटनायें परिवर्तित हो जाती है।

निष्कर्ष

पुरातन काल से ही शल्य चिकित्सा मानव सेवा में लीन है। सभी प्रकार का शल्य कार्य अनादि काल से प्रचलन में है। शासक वर्ग के शूरवीर विभिन्न रणक्षेत्र में युद्ध के लिये जाते थे। युद्ध में शरीर आघात लगते रहने के कारण भांति–२ के घाव होना भी स्वभाविक है। इन घावों की चिकित्सा शल्य विज्ञान से ही सम्भव थी। यह शल्य–विद्या योद्धाओं की रक्षा के लिए अति आवश्यक थी। इस विद्या के कारण ही योद्धा सुरक्षित रहते थे। निर्जीवीकरण एवं कीटाणुनाशन भी प्राचीन समय में चलन में था। वर्तमान में भी यह क्रियायें विद्यमान है। यदि हम ध्यानपूर्वक अपने रीति रिवाजों, प्रथा एवं आचारों –विचारों का अध्ययन करें तो हमें अवश्य ही इस प्राचीन ज्ञान की सत्यता का पता चलेगा। अति प्राचीन सभ्यताओं में भी शल्य विज्ञान के संकेत मिलते हैं। पौराणिक कथानकों का विवेचन, विश्लेषण एवं प्रयोग करने पर आधुनिक युग के सुख का मार्ग निश्चय ही प्रशस्त किया जा सकता है।

संदर्भ

[१]*वान डोन्जन पी डब्लयूजे सीजेरियन सेक्सन*–इटाइमोलोजी एण्ड अरली हिस्ट्री SAJOG 2009:15:62

[२]*लूरी एस चेजिंग मोटिव ऑफ सीजेरियन सेक्सन: फ्राम दि ऐन्सेंट वर्ल्ड टू दि टविन्टी फर्स्ट सेन्चुरी;* Arch Gynaeed obstet 2005 ;270:282

[३]*गुनरत्ना ओ दि ओरिजन आफ दि आपेरशन वी नाऊ नो इन वेस्टर्न सोसाइटी एज ए सीजेरियन सेक्सन,* आस्ट्रेलियन एण्ड न्यूजीलैंड ज आब्सेटट एण्ड गायनीकोल २००७, ४७:८४

[४]*लाइफ आफ सम्राट बिन्दुसार: फैक्टस एण्ड हिस्ट्री (इन्टरनेट)* नेशनल न्यूज २०१५ एवलेवल एट : http://national news.com/ samrat.bindusara.wives.sons.facts.history. Accessed on 6 October 2016.

[५]*सुश्रुत संहिता निदान–स्थान,* अध्याय–५, श्लोक संख्या १६, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी २०१४, १:३४०

[६]*मुंशी के एम दि मैजिक फ्लूट,* कृष्णावतार तृतीय संस्करण, भाग–१, मुम्बई : भारतीय विद्या भवन, १९७२

[७]पाण्डे, पी०आर० –श्रीमद्भागवत महापुराण, सुख सागर वाराणसी: श्री ठाकुर प्रसाद पुस्तक भण्डार; २००८: ५२९

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,90-93**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 06 जनवरी 2017

संगीत के रोजगारपरक आयाम

डॉ0 पौलमी चटर्जी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *काशी की संगीत परम्परा : गायन के विशिष्ट संदर्भ में* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *पौलमी चटर्जी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इस छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध प्रपत्र आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

भूमिका

प्राचीन काल से ही संगीत मानव मन में विशेष स्थान रखता आया है व उसे प्रभावित भी करता रहा है। संगीत का यह जादू आज भी सिर चढ़कर बोलता है और धुनों पर सहसा कब शरीर में थिरकन की शुरूआत हो जाती है, इसका आभास तक नहीं हो पाता। केवल मनोरंजन करने मात्र तक संगीत का महत्त्व सीमित नहीं है। मनोरंजन के अतिरिक्त संगीत मन की शांति और कई बार तो रोगियों की चिकित्सा तक में प्रयुक्त होता है।

व्यवसाय के रूप में संगीत

वास्तव में संगीत साधना का विषय है। परन्तु विश्व के तेजी से बदलते परिदृश्य में संगीत एक महत्त्वपूर्ण व्यवसाय (Profession) का रूप धारण कर चुका है। विशेष रूप से युवा वर्ग में इसका आकर्षण दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।

संगीत में अपना करियर बनाने की इच्छा रखने वाले युवाओं के लिये मात्र संगीत में रूचि होना ही यथेष्ट नहीं है। इसके अतिरिक्त उनका परिश्रमी, सृजनात्मक प्रतिभा का धनी, विवेकशील, धुन का पक्का व सांगीतिक प्रत्यक्षीकरण में सक्षम होना भी आवश्यक है।

इसके लिये प्रशिक्षण की व्यवस्था छोटे से लेकर बड़े स्तरों तक उपलब्ध है। ये कोर्स स्नातक, स्नातकोत्तर के अतिरिक्त सर्टिफिकेट, डिप्लोमा अथवा पार्ट–टाइम प्रकार के हो सकते हैं। नामी विश्वविद्यालयों से लेकर संगीत अकादमियों तक में इस प्रकार के ट्रेनिंग कोर्सेज़ स्कूली बच्चों और युवाओं के लिये उपलब्ध हैं।

* भूतपूर्व शोध छात्रा, गायन विभाग (संगीत एवं मंचकला संकाय) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी एवं संगीत शिक्षिका, केन्द्रीय विद्यालय, पीलीभीत (उत्तर प्रदेश) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक 2017, एम0पी0ए0एस0वी0ओ0 मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहासंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

वर्तमान समय में देश–विदेश में युवाओं में म्यूजिक बैण्ड बनाने तथा परफॉर्म करने का चलन जोर पकड़ता जा रहा है। इस प्रकार के बैण्ड में गायक (vocal artist) और वाद्ययंत्र कलाकार (instrumental artist) दोनों का ही समन्वयन होता है। स्कूलों, कॉलेजों व अन्य छोटे स्तरों पर इस प्रकार के विभिन्न बैण्ड आज अस्तित्व में आ चुके हैं।

प्राय: यही माना जाता है कि संगीत को करियर का आधार बनाकर ज्यादा कुछ करने की सम्भावनाएँ सीमित हो जाती हैं। परन्तु यदि वास्तविकता के धरातल पर बात करें तो वर्तमान सन्दर्भ में स्थिति अत्यन्त भिन्न है। संगीत में करियर के तमाम नवीन विकल्प सामने आ चुके हैं। अब संगीत केवल मनोरंजन का साधन नहीं रह गया है। पूर्व की भांति संगीत को अब कुछ चुनिंदा लोगों के लिये बना एक अलग–थलग करियर नहीं समझा जाता है। गत कुछ वर्षों में करियर के विकल्प के तौर पर संगीत का महत्त्व बढ़ता जा रहा है। मनोरंजन और मीडिया के क्षेत्र में हो रहा विस्तार किसी से छिपा नहीं है। ऐसे में संगीत से जुड़े रोजगार की संख्या में काफी वृद्धि हुई है।

संगीत अपनी विभिन्न विधाओं जैसे शास्त्रीय संगीत (गायन, वादन एवं नृत्य), लोक संगीत, जैज, पॉप, फ्यूजन इत्यादि में रोजगार के कई अवसर समेटे हुए है। इस क्षेत्र में जाने के इच्छुक शिक्षार्थी अपनी रूचि व योग्यता के अनुरूप उपलब्ध विभिन्न विकल्पों में से किसी एक को चुन सकते हैं।

संगीत में करियर बनाने हेतु वांछित गुण/ योग्यता

प्रत्येक विषय की अपनी कुछ विशिष्टताएँ होती हैं। यही कारण है कि किसी क्षेत्र विशेष में करियर बनाने के लिये व्यक्ति में कुछ विशिष्ट गुणों अथवा योग्यताओं का होना आवश्यक है।

संगीत को व्यवसाय रूप में अपनाने के लिये जिन प्रमुख गुणों का होना आवश्यक है, वे हैं :

१. *रूचि;* मैक्डूगल (McDougall) के अनुसार 'रूचि' गुप्त अवधान (concentration) होता है। इस गुण के अनुसार मनुष्य की जब तक संगीत में रूचि नहीं होगी तथा वह जब तक उसमें पूरा ध्यान नहीं देगा, तब तक वह संगीत को सीख व समझ नहीं पाएगा। अत: संगीत को व्यवसाय रूप में अपनाने के लिये व्यक्ति का उसमें रूचि होना व उसमें ध्यान देना आवश्यक है।

२. *सृजनात्मक क्षमता;* संगीत एक सूक्ष्म व अमूर्त प्रकृति की ललित कला है। अतएव किसी व्यक्ति के संगीत सीखने व करने हेतु उसमें 'सृजनात्मकता' (creativity) व 'कल्पनाशीलता' (imagery) का होना अति आवश्यक है।

३. *सांगीतिक प्रत्यक्षीकरण;* प्रत्यक्षीकरण (perception) को विद्वानों ने कुछ इस प्रकार परिभषित किया है– 'The way in which a person views his or her environment based on the senses, past experience, attitudes, current information and other personal variables'. अर्थात् संक्षेप में इसे किसी वस्तु को देखने की 'दृष्टि' या समझने की 'समझ' के रूप में समझा जा सकता है।

सांगीतिक प्रत्यक्षीकरण (musical perception) संगीत को उसके नैसर्गिक रूप में देखने की बात कहता है। इसके अनुसार, संगीत को व्यवसाय के रूप में अपनाने वाले व्यक्ति के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वह संगीत की विशुद्धता को बनाए रखे.....संगीत को वास्तविक अर्थों में संगीत ही रहने दे।

४. *सौन्दर्यबोध दृष्टि;* जैसा कि विदित है, संगीत एक सूक्ष्म ललित कला है। अत: इसकी सूक्ष्मता व लालित्य को समझने व बनाये रखने हेतु व्यक्ति में सौन्दर्यबोध दृष्टि (aesthetic sense) का होना महत्त्वपूर्ण है।

५. *परिश्रम;* इन गुणों के अतिरिक्त व्यक्ति का परिश्रमी होना अत्यावश्यक है। संगीत साधना हेतु अथक परिश्रम व कठोर अनुशासन की दरकार होती है जिसे कर पाने की योग्यता व इच्छाशक्ति व्यक्ति में होनी चाहिए।

संगीत शिक्षण/ प्रशिक्षण प्रदान करने वाली सस्थाएँ

गुरू–शिष्य परम्परा व घरानेदार शिक्षण द्वारा संगीत के क्षेत्र में अनेक विद्वान कलाकार तथा शिक्षक कलाकार तैयार हुए हैं। इनके अतिरिक्त वर्तमान समय में ऐसी अनेक संस्थाएँ हैं जो संगीत की शिक्षा प्रदान कर रही हैं व इसका विधिवत प्रशिक्षण दे रही हैं। इनमें से कुछ प्रमुख संस्थाएँ हैं – १. कॉलेज ऑफ इण्डियन म्यूजिक, डांस एण्ड ड्रामेटिक्स, बड़ौदा। २. गान्धर्व महाविद्यालय। ३. माधव संगीत महाविद्यालय, ग्वालियर। ४. भातखण्डे संगीत संस्थान (सम विश्वविद्यालय), लखनऊ। ५. इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़। ६. प्रयाग संगीत समिति, इलाहाबाद। ७. प्राचीन कला केन्द्र, चण्डीगढ़। ८. काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,

वाराणसी। ९. विश्वभारती, शान्ति निकेतन। १०. रवीन्द्र भारती विश्वविद्यालय, कोलकाता। ११. दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली। १२. महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी। १३. श्रीराम भारतीय कलाकेन्द्र, नई दिल्ली। १४. कथक केन्द्र, दिल्ली। १५. कथक केन्द्र, लखनऊ। १६. ध्रुपद केन्द्र, भोपाल। १७. राजा चक्रधर सिंह नृत्य केन्द्र, भोपाल। १८. कथक केन्द्र, जयपुर। १९. संगीत रिसर्च अकादमी, कोलकाता। २०. कलाक्षेत्र, चेन्नई इत्यादि।

संगीत के क्षेत्र में रोजगार के विकल्प

जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है, वर्तमान समय में संगीत के क्षेत्र में रोजगार के अनेकों विकल्प उपलब्ध हैं। निम्नलिखित संगीत से जुड़े कुछ प्रमुख क्षेत्र हैं जिन्हें व्यावसाय के रूप में अपनाकर संगीत की सेवा के माध्यम से रोजगार भी किया जा सकता है :

१. *मंच प्रदर्शन;* विभिन्न घरानेदार एवं संस्थाओं से संगीत सीखे हुए ऐसे कलाकार हुए हैं जिन्होंने अपनी कला से संगीत को नयी ऊँचाईयाँ दी हैं। आज भी अनेक शिष्य हैं जो भिन्न–भिन्न घरानों या संस्थाओं से संगीत की तालीम हासिल कर रहे हैं।

२. *शिक्षण;* प्राचीन काल से आधुनिक समय तक संगीत की अविरल धारा को प्रवाहमान बनाए रखने में जिस महत्त्वपूर्ण माध्यम की भूमिका रही है वह है शिक्षा। संगीत शिक्षण संगीत से जुड़ा हुआ एक महत्त्वपूर्ण व्यवसाय है जिसके अन्तर्गत स्वयं संगीत सीखकर उसे दूसरों को सिखाने की बात कही जाती है जिससे संगीतज्ञों की नयी पौध तैयार हो सके।

३. *म्यूजिक इंडस्ट्री;* इस उद्योग में कई प्रकार के संगीत आधारित प्रोफोशनलों की अहम भूमिका होती है। इस प्रकार यह संगीत से जुड़े कई अलग –अलग व्यवसायों का समग्र रूप है। इसके अन्तर्गत विशेष रूप से म्यूजिक सॉफ्टवेयर प्रोग्रामर, कंपोजर, म्यूजिशियन के अतिरिक्त म्यूजिक बुक्स की पब्लिशिंग, म्यूजिक अलबम रिकॉर्डिंग, म्यूजिक डीलर, म्यूजिक स्टूडियो के विभिन्न विभागों आदि का उल्लेख किया जा सकता है।

४. *टेलीविजन;* इसमें भी विभिन्न कार्यक्रमों जैसे विज्ञापन, धारावाहिक इत्यादि हेतु साउण्ड रिकॉर्डिस्ट, म्यूजिक एडिटर, प्रोडक्शन, आर जे एवं डी जे म्यूजिक लाइसेंस के जानकार व अनुभवी लोगों की आवश्यकता होती है।

५. *आकाशवाणी एवं दूरदर्शन;* इनसे जुड़ना किसी भी कलाकार के लिये गौरव की बात होती है। यहाँ भी संगीतज्ञ, रिकॉर्डिस्ट, कंपोजर, ब्रॉडकास्ट/ टेलीकास्ट एक्सपर्ट के रूप में जुड़ा जा सकता है।

६. *संगीतशास्त्र;* एक संगीतशास्त्री (musicologist) के रूप में संगीत विषय के शास्त्र पक्ष को लेकर काफी कार्य किया जा सकता है जैसे शोध (research), पुस्तकों का लेखन, प्राचीन ग्रंथों का विश्लेषण/ अनुवाद इत्यादि।

७. *संगीत चिकित्सा;* शारीरिक व मानसिक विकलांगता से ग्रसित बालकों और विभिन्न मनो–दैहिक रोगों से ग्रस्त मनुष्यों के उपचार में आजकल संगीत को काफी महत्त्वपूर्ण माना जाने लगा है (music therapy)। इस कार्य में सफल होने के लिये संगीत व चिकित्सा विज्ञान की जानकारी होना आवश्यक है। इनके लिये अस्पतालों, नर्सिंग होम्स, मेंटल हेल्थ सेंटरों, विद्यालयों आदि में रोजगार के अवसर हो सकते हैं। इस क्षेत्र में प्राईवेट प्रैक्टिस की भी अच्छी सम्भावनाएँ हैं।

निष्कर्ष

प्राचीन साधना के विषय संगीत ने आज एक व्यवसाय का रूप धारण कर लिया है। कुछ लोग इसे संगीत की गुणवत्ता की दृष्टि से उचित नहीं मानते। अत: यह कहना अनुचित न होगा कि समय की माँग को देखते हुए संगीत का व्यवसायीकरण उचित तो है, परन्तु तभी जब इसकी गुणवत्ता का भी पूर्ण रूप से ध्यान रखा गया हो। आज आवश्यकता है और भी शिक्षण/ प्रशिक्षण संस्थान खोले जाने की जो संगीत की आधारभूत शिक्षा के साथ ही उसका व्यावसायिक प्रशिक्षण भी दे, जिसके अन्तर्गत क्षेत्र विशेष से जुड़े विशिष्ट प्रशिक्षण की भी व्यवस्था हो। साथ ही विभिन्न संगीत शिक्षण संस्थानों में लघु अवधि कार्यशालाओं का भी आयोजन समय–समय पर किया जाना वांछनीय होगा जिनके अन्तर्गत संगीत से जुड़ी विभिन्न विधाओं तथा उनसे जुड़े विभिन्न क्षेत्रों का विशेष प्रशिक्षण दिया जा सके।

संदर्भ

चौबे, अमरेश चन्द्र (१९८८) –'संगीत की संस्थागत शिक्षण–प्रणाली', कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर
मिश्रा, आरती, शोध–प्रबन्ध, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
BELLINGHAM, JOHN (2007), 'Dictionary of Education', Academic (India) Publishers, New Delhi
hindi.webdunia.com (संगीत की मस्ती में करियर)
m.dailyhunt.in (संगीत के क्षेत्र में बनाये बेहतर कैरियर)
https://m.bhaskar.com (career in music industry)

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,94-96**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 22 जनवरी 2017

मम्मट के दृष्टिकोण में ''गुणीभूतव्यङ्ग्य -काव्य''

डॉ0 मनीषा शुक्ला*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *मम्मट के दृष्टिकोण में ''गुणीभूतव्यङ्ग्य -काव्य''* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *मनीषा शुक्ला* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इस छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध प्रपत्र आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

काव्य प्रकाश के अन्तर्गत मम्मट ने कई प्रकार के काव्यों की चर्चा की है, प्रस्तुत प्रपत्र के अन्तर्गत गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्य की चर्चा की गई है।

'गुणीभूतव्यङ्ग्य' नामक दूसरे भेद का लक्षण -

(सू0 3) उस प्रकार के (अर्थात् वाच्य से अधिक चमत्कारी) व्यङ्ग्य (अर्थ) न होने पर (गुणी भूतव्यङ्ग्य (नामक दूसरे प्रकार का काव्य) होता है जो मध्यम (काव्य कहा जाता) है।

(अतादृशि) वैसा न होने पर अर्थात् (व्यङ्ग्यार्थ के वाच्य से अधिक उत्तम न होने पर (गुणीभूतव्यङ्ग्य-काव्य होता है) जैसे-

वेतस-वृक्ष की ताजी तोड़ी हुई मञ्जरी को हाथ में लिये ग्राम के नवयुवक को देख-देखकर तरुणी के मुख की कान्ति मलिन होती जा रही है।।3।।

यहाँ अशोक या वेतस के (वञ्जुलः पुंसि तिनिशे वेतसाशोकयोरपि) लता-गृह में (ग्राम-तरुण के साथ मिलने का) संकेत देकर (घर के काम में लग जाने अथवा अन्य लोगों की उपस्थिति के कारण निकलने का समय न मिलने से तरुणी नियत समय पर वहां) नहीं आयी (और ग्रामतरुण समय पर पहुँच गया, उसको देखकर तरुणी की मुख-कान्ति मलिन हो रही है) यह व्यङ्ग्य, वाच्य के ही उस (व्यङ्ग्य) की अपेक्षा अधिक चमत्कारी होने से, गुणीभूत हो गया है। (इसलिए यह गुणीभूतव्यङ्ग्यका उदाहरण है)।।3।।

'ग्रामतरुण' इस पद से यह भी व्यक्ति होता है कि ग्राम में एक ही तरुण है, अनेक युवतियों द्वारा प्रार्थ्यमान होने से उसका दुबारा जल्दी मिलना कठिन है। इसलिए पश्चाताप का अतिशय सूचित होता है। यहां व्यङ्ग्य अर्थ की अपेक्षा वाच्य अर्थ के ही अधिक चमत्कारी होने से गुणीभूतव्यङ्ग्य का यह उदाहरण दिया है।

* प्रधान सम्पादिका, आन्वीक्षिकी शोध समग्र पत्रिका, वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2017, एम0पी0ए0एस0वी0ओ0 मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहासंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

वाच्य और व्यङ्ग्य दोनों जहाँ समान स्थित में हों, वहाँ भी व्यङ्ग्य के वाच्यातिशायी न होने के कारण गुणीभूतव्यङ्ग्य ही होता है। उसका उदाहरण यहाँ नहीं दिया है। पञ्चम उल्लास में जहां 'गुणीभूतव्यङ्ग्य' का विस्तार के साथ विवेचन किया जायेगा, वहाँ वाच्य तथा व्यङ्ग्य दोनों के 'तुल्य-प्राधान्य' का उदाहरण भी दिया जायेगा।

काव्य के ध्वनि तथा गुणीभूतव्यङ्ग्यरूप उत्तम तथा मध्यम भेदों के लक्षण एवं उदाहरण यहाँ हैं। काव्य के तीसरे भेद 'चित्र-काव्य' का लक्षण तथा उदाहरण हैं-

(सू0 4) – व्यङ्ग्य (अर्थ) से रहित 'शब्द-चित्र' तथा 'अर्थ-चित्र' (दो प्रकार का) अधम (काव्य) कहा गया है।।5।।

चित्र (नाम) गुण तथा अलङ्कार से युक्त (होने से) है। अव्यङ्ग्य (का अभिप्राय) स्पष्ट रूप से (प्रतीयमान) व्यङ्ग्य अर्थ से रहित (काव्य) है। अवर (का अर्थ) अधम है। (शब्द-चित्र, अर्थ-चित्र-दोनों के उदाहरण देते हैं) जैसे-

('मन्दाकिनी वः मन्दताम् अह्नाय भिद्यात्' यह इस श्लोक का मुख्य वाक्य है, शेष सब मन्दाकिनी के विशेषण है। इसलिए श्लोक का भावार्थ यह हुआ कि) गङ्गा तुम्हारी मन्दता अर्थात् अज्ञान या पाप को अह्नाय अर्थात् झटिति तुरन्त ही दूर करे। (किस प्रकार की मन्दाकिनी कि-) स्वच्छन्द रूप से उछलती हुई, अच्छ अर्थात् निर्मल और (कच्छ-कुहर) किनारे के गड्ढो में (छात दुर्बल, छातेतर) अत्यन्त वेग से प्रवाहित होने वाली जो जल की धारा (अम्बुच्छटा) उससे जिनके मोह अज्ञान का (मूर्च्छा) नाश हो गया है ऐसे महर्षियों के द्वारा जिसमें आनन्दपूर्वक स्नान तथा आह्निक (सन्ध्या-वन्दन आदि) कार्य किये जा रहे हैं (इस प्रकार की मन्दाकिनी तुम्हारी मन्दता, अज्ञान अथवा पापादि को दूर करे। इस विशेषण से मन्दाकिनी के महर्षि जन से व्यत्व का प्रतिपादन कर अन्य तीर्थों की अपेक्षा उसका महत्त्व प्रदर्शित किया है। आगे अन्य नदियों से उसकी श्रेष्टता दिखलाते है। उद्यन्तः प्रकाश माना उदारा महान्तो दुर्दुरा भेका यासु एवं विधा वर्यः कन्दरा यस्यां सा) जिनमें बड़े-बड़े में मेढक दिखलायी पड़ रहे हैं इस प्रकार की कन्दराओं से युत, और दीर्घकाय एवं अदरिद्र अर्थात् (बड़े ऊँचे तथा शाखा, पत्र-पुष्प आदि से लदे हुए) जो वृक्ष उनके गिराने (द्रोह) के कारण ऊपर उठने वाली बड़ी-बड़ी लहरों से (भेदुरमदा) अत्यन्त गर्वशालिनी गङ्गा तुम्हारे पाप या अज्ञान आदि को तुरन्त नष्ट करे। उसमें कोई व्यङ्ग्यार्थ नहीं है केवल शब्दों का अनुप्रास जन्य चमत्कार है। अतः चित्र काव्य है। यह 'शब्दचित्र' का उदाहरण है। अर्थचित्र का उदाहरण आगे देते हैं

(शत्रूणां मानम् अभिमानम् द्यति खण्डयति, मित्रेभ्यो मानमादरं ददाति वा इति मानवः) शत्रुओं के अभिमान को चूर करने वाले जिस (हयग्रीव) को यों ही घूमने के लिए (युद्ध या अमरावती पर विजय करने के लिए नहीं) अपने महल से निकला हुआ सुनकर भी धबड़ाये हुए इन्द्र के द्वारा जिसकी अर्गला डाल दी गयी है इस प्रकार की (इन्द्र की राजधानी) अमरावती (नगरीरूप नायिका) ने भय से (द्वार रूप अपनी) आंखें बन्द-सी कर लीं।

यहाँ 'भिया निमीलिताक्षव अमरावती जाता' अर्थात् अमरावती ने मानों डर के मारे आंखें बन्द की ली हों यह उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। इस उतप्रेक्षा में ही कवि का प्रधान रूप से तात्पर्य है। इसलिए यद्यपि वीर रस की प्रतीति हो सकती है परन्तु उसमें कवि का तात्पर्य न होने से इसको चित्र-काव्य में स्थान दिया गया है। परन्तु अर्थ चित्र का यह उदाहरण कुछ ठीक नहीं जंचता है। यहाँ वीर रस की प्रतीति होती है, जिसमें ह्यग्रीव स्वयं 'आलम्बन-विभाव', प्रतिपक्षी इन्द्रगत भय 'उद्दीपन-विभाव', मान का खण्डन 'अनुभाव' और यदृच्छा-सञ्चरण से गम्य धृति 'व्यभिचारि-भ्राव' है। इसलिए यह व्यङ्ग्य रहित अधम 'चित्र-काव्य' का उदाहरण नहीं हो सकता है। यदि उत्प्रेक्षा से वीर रस अभिभूत हो जाता है यह कहा जाय, तो इसको गुणीभूत-व्यङ्ग्य के उदाहरण में अन्तर्भूत किया जा सकता है। अधम काव्य की श्रेणी में रखकर कदाचित् इस श्लोक के साथ न्याय नहीं किया गया है।

प्रथम उल्लास में ग्रन्थकार ने (1) मङ्गलाचरण, उसके बाद (2) काव्य के प्रयोजन, (3) काव्य के साधन, (4) काव्य का लक्षण तथा (5) काव्य के भेदों का वर्णन किया है। काव्य के भेदों का वर्णन करते हुए उन्होंने मुख्य रूप से काव्य के तीन भेद किये हैं- 1. ध्वनि-काव्य, 2- गुणीभूत-व्यङ्ग्य-काव्य और 3- चित्र-काव्य। इनमें से 'ध्वनि-काव्य' उसको कहते हैं जिसमें वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यङ्ग्यार्थ अधिक चमत्कारयुक्त हो। इसके विपरीत जहां व्यङ्ग्यार्थ की अपेक्षा वाच्यार्थ अधिक वा उसके तुत्य चमत्कार जनक होता है उसको 'गुणीभूत-व्यङ्ग्य-काव्य' कहते हैं, और

जहाँ व्यङ्ग्य का सर्वथा अथाव होता है उसको 'चित्र-काव्य' कहते हैं। इनमें से ध्वनि-काव्य उत्तम, गुणीभूत-व्यङ्ग्य-काव्य मध्यम तथा चित्र-काव्य अधम श्रेणी में गिना जाता है।

संदर्भ

काव्य प्रकाश

नोट : मम्मट के काव्य प्रकाश से गुणीभूतव्यङ्ग्य को दृष्टान्त सहित बताने के लिये अधिकतम अंश ज्यों के त्यों लिये गये हैं।

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,97-100**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 22 जनवरी 2017

शिशुपालवध महाकाव्य में माधुर्यगुण-कृत सौन्दर्य

सुधा श्रीवास्तव*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *शिशुपालवध महाकाव्य में माधुर्यगुण-कृत सौन्दर्य* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *सुधा श्रीवास्तव* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इस छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध प्रपत्र आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

शिशुपालवध महाकाव्य में २० सर्गों में तथा कुल १६५० श्लोकों में श्रीकृष्ण के द्वारा शिशुपाल नामक दुराचारी राजा का वध करने की कथा निरूपित है। शिशुपाल का अंगीरस वीर है। माघ ने अपने आराध्य तथा महाकाव्य के नायक श्रीकृष्ण को शौर्य धैर्य, गांभीर्य के प्रतीयमान के रूप में प्रस्तुत किया है। महाकाव्य के अन्तिम चार सर्गों में युद्ध का वर्णन जितना ओजस्वी तथा प्रवाहपूर्ण है, उतना ही चमत्कारमय भी। ६ठें सर्ग से ११वें सर्ग तक के वर्णन में शृंगार रस को ही मुख्यता मिली है। ६ठें सर्ग में प्रकृति को उन्होंने प्रेम के रंग में रंग कर प्रस्तुत किया है, तो ७वें सर्ग में शृंगारित अनुभवों का ही चित्रण किया है। ९वें सर्ग में तो श्रीकृष्ण की सेना के लोगों के विलास तथा विहार में शृंगार की अखण्ड धारा बहायी है।

माधुर्य गुण

माधुर्य अर्थ है- मनोहर, आकर्षक, रूचिकर आदि। आनन्दित करने वाले शब्द माधुर्य कहलाते हैं। जो शब्द कानों को सुनने में रोचकता उत्पन्न करता है, जो चित्त को आह्लादक स्वरूप बनाता है। वह माधुर्य कहलाता है; अर्थात् चित्त के द्रुति द्रवीभाव का कारण और शृंगार में रहने वाला जो आह्लादकत्व है, वही माधुर्य गुण है। माधुर्य गुण चित्त की कठोरता को दूर करके उसमें द्रुति अर्थात् द्रवीभाव उत्पन्न करता है। माधुर्यपूर्व भाव का उत्पन्न होना, जो मधुर सुन्दर और ललितपूर्ण होता है। जिसे पढ़कर या सुनकर सहृदय जन को आनन्दित करता है। वह माधुर्य कहलाता है।

* शोध छात्रा, कला संकाय, संस्कृत विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2017, एम0पी0ए0एस0वी0ओ0 मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहासंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

माधुर्य गुण के व्यंजक-तत्त्व

माधुर्य गुण के व्यंजक तत्व वर्ण, समास तथा रचना है। अपने शिर पर स्थित अपने-अपने वर्ग के अन्तिम वर्ण से युक्त 'त' वर्ग को छोड़कर शेष (कवर्ग, चवर्ग, तवर्ग, पवर्ग) स्पर्शवर्ण, ह्रस्व रकार तथा णकार समासरहित या स्वल्य समास युक्त रचना माधुर्य गुण की व्यंजक होती है।

माधुर्य गुण-कृत सौन्दर्य (रस के दृष्टि से)

माधुर्य गुण संयोग शृंगार, करूण, विप्रलम्भ शृंगार तथा शान्तरसों में क्रमशः उत्तरोत्तर प्रकार्षावस्था में रहता है। सम्भोग शृंगार की अनुभूति दशा में जो चित्त की द्रुति होती है, उससे अधिक करूण में, करूण से अधिक विप्रलम्भ शृंगार में और सबसे अधिक शान्तरस में होती है।

शिशुपालबधमहाकाव्य में काव्य गुणों की अपूर्व छटा इस अनुपम कृति में स्थान-स्थान पर निरन्तर दिखाई पड़ती है। उनकी शब्दयोजना तथा पदयोजना सुसज्जित आकर्षित करती है। इनकी शब्द शैली नवीन-नूतन श्रुति मधुर शब्दावली कृत सौन्दर्य दिखने को मिलते हैं उनके पदों में श्रुतिमधुर शब्दों की संगीतात्मक एकरसता वीणा के तारों की झनकार की भांति अर्थाबोध हृदय को आनन्दित करता है।

शृंगार रस के दृष्टि से

इस महाकाव्य के प्रथम सर्ग में मधुर पक्तियाँ स्थान-स्थान पर दृष्टिगोचर होती है। अकार में भगवान् श्रीकृष्ण अत्यन्त शोभा से युक्त संसार का शासन करने के लिए वसुदेव के घर निवास करते हैं। लक्ष्मी के स्वामी समस्त लोकों के निवास स्थान अर्थात् सम्पूर्ण सौन्र्य से सुशोभित भगवान श्रीकृष्ण यहाँ विद्यमान है। उसी वक्त ब्रह्मा के पुत्र नारद जी को आते हुए देखते हैं। उस सौन्दर्यरूपी माधुर्य पंक्ति से प्रारम्भ होता है *श्रिय पतिः श्रीमति शासितुं जगज्जगन्निवासः वसुदेवसद्मनि। वसन्ददर्शावतरन्तमम्बराद्धिरण्यगर्भांगभुवं मुनि हरिः।।*[1]

इस माधुर्य पंक्ति से सौन्दर्य स्पष्ट हो रहा है। जब नारद जी आकाश मार्ग से नीचे उतरते हैं, तो उन्हें देखकर लोगों में सन्देह उत्पन्न होता है कि यह सूर्य के समान तेज पुंज है या धुए से रहित ज्वाला वाली अग्नि अर्थात् वह चलायमान वस्तु है क्या, सूर्य और अग्नि दोनों लालिमा से पूर्ण कान्ति वाली तेजपुंज तिरछी होती है। फैला हुआ यह सौन्दर्यपूर्ण लालिमा कितना मनोरम लगता है *गतं तिरश्चीनमनूरूसारथेः प्रसिद्धमूर्ध्वज्वलनं हविर्भुजः। पतत्यधो धाम सर्वतः किमेतदित्याकुलमीक्षितं जनैः।।*[2]

इसी प्रकार नारद जी का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं, नवीन अतएव जलपूर्ण होने से कृष्ण वर्ण वाले बादलों के नीचे स्थित ऐसा प्रतीत हो रहा जैसे कर्पूर के धूलि के समान श्वेत वर्ण वाले एवं भस्म और चर्म का लपेटे हुए भगवान शिव जी के समान उन नारदजी को जो अतीव सुशोभित हो रहे थे, भगवान श्रीकृष्ण ने देखा।

नवानधोऽधो बृहतः पयोधरान् समूढ-कर्पूर-पराग पाण्डुरम्। क्षणं क्षणोत्क्षिप्त-गजेन्द्र-कृत्तिना स्फुटोपम भूतिसितेन शम्भुना।।[3] अतः नारद जी के सौन्दर्यपरक पंक्ति माधुर्य को स्पष्ट करता है।

नारद जी के सौन्दर्य का वर्णन शृंगार परक यहाँ भी दिखने को मिलता है। कमल केसर के समान कान्ति वाले जटाओं को धारण जिये हुए शरद् ऋतु के चन्द्रमा के किरणों के समान कान्ति वाले एवं पिंगल वाले श्वेत बर्फ को धारण किये हुए हिमालय के समान प्रतीत हो रहे है।

दधानमम्भोरूहकेसरद्युतीर्जटाः शरच्चन्द्रमरीचिरोचिषम्। विपाकपिंगास्तुहिनस्थलीरूहो, धराधरेन्द्रव्रततीततीरिव।।[4] *पिशंगमौंजीयुजमर्जुनच्छवि वसानमेणाजिनमंजनद्युति। सुवर्णसूत्राकलिताधराम्बरां विडम्बयन्त शितिवाससस्तनुम्।।*[5] नारद जी मेखल पहने हुए शुभ्र वर्ण वाले, काले मृग चर्म को धारण किये हुए, सुवर्ण-सूत्र करधरनी से बंधी

नीली धोती वाले (शुभ्रवर्ण) नारद जी का सौन्दर्य स्पष्ट प्रतीत हो रहा है। अतः यह माधुर्य पंक्ति शृंगारपरक है। अतएव यहाँ माधुर्य गुण स्पष्ट है।

इसी प्रकार नारदजी के सौन्दर्य का वर्णन कवि ने अपने श्लोकों के माध्यम से किया है *रणद्भिराघट्टनया नभस्वतः पृथग्विभिन्नश्रुतिमण्डलैः स्वरैः। स्फुटी भवद् ग्रामविशेषमूर्च्छनामवेक्षमाणं महती मुहुर्मुहुः।।*६ नारद जी अपनी महती नामक वीणा को बार-बार देखते हुए जा रहे थे, जिसमें से वायु के आघात से पृथक्-पृथक् स्वरों, गुंजार से निकलने वाली श्रुतियों के समूहों एवं सातों स्वरों एवं विशेष प्रकार की मूर्च्छनाएँ अपने आप प्रगट हो रही थी।

अतः इस पंक्ति से अत्यन्त सुन्दर संगीतमय वातावरण उत्पन्न माधुर्य-कृत सौन्दर्य स्पष्ट हो रहा है।

इसी प्रकार के सम्पूर्ण महाकाव्य में शृंगारपरक पंक्ति द्रष्टव्य है। ६ठें सर्ग में छः ऋतुओं का विशेष वर्णन है जो भारतीय जीवन की शाश्वत वस्तुओं से लिया गया है। ग्रामीण वस्तुएँ जब समूह समूह कुएँ से घड़ा निकालने लगती है तथा माता ऊपर खड़ी होकर जब अपने बच्चे को ऊपर बुलाती है, तो जैसा कुछ दृश्य हो सकता है, उसका वर्णन कवि ने किया *विकचकमलगन्धैरन्धयन्भृंगमालाः। सुरभितमकरमन्दं मन्दमावाति वातः। प्रंमदमदनमाद्यद्यौवनोद्दामरामा/ रमणरभसखेदस्वेदविच्छेददक्षः।।*[७]

महाकाव्य के ११वें सर्ग में- *विततपृथुवरत्रातुल्यरूपैर्मयूखैः/ कलश इव गरीयान्दिग्भिराकृष्णमाणः। कृतः चपलविहंगालपकोलाहलाभिः/ जलनिधिजलमध्यादेष उत्तार्यतेऽर्कः।।*[८] प्रातः कालीन ग्रामीण स्त्रियों के मनोहर, पक्षियों के कोलाहल सूर्य का उदय होना सभी दृश्य ऐसे प्रतीत हो रहा जैसे पानी से भरा घड़ा सूर्य के आकार के समान समुन्द्र से निकल रहा है। फैली हुई किरणों से चारों दिशाएँ बहुत ही मनोहर लग रहे हैं।

पयसि सलिलराशेर्नक्तमन्तर्निमग्नः/ स्फुट मनिशमतापि ज्वालया वाऽवाग्नेः। यदयमिदमिदानीमंगमुद्यन्दधाति/ ज्वलतिखदिरकाष्ठांगारगौरं विवस्वान्।।[९] बाल जीवन की अनेक झांकियों को कवि ने प्रकृति वर्णन के अनेक अवसरों पर सजाया है। ऊषा को रजनी को एक सद्योजात सुन्दरी कन्या की कल्पना कवि ने शृंगारपरक देते हुए माधुर्य की एक छटा इस प्रकार वर्णित की है *अरूणजलराजीमुग्धहस्ताग्रपादा/ बहुलमधुपमालाज्जलेन्दीवराक्षी। अनुपतति विरावै पत्रिणां व्याहरन्ती/ रजनिमचिरजाता पूर्वसन्ध्या सुतेवा।।*[१०] इसी प्रकार उदयाचल से ऊपर उठते हुए सूर्य को कवि न एक राजा के रूप में अति सुन्दर ढंग से वर्णित किया है।

क्षणमयमुपविष्टः क्ष्मातलन्यस्पादः/ प्रणतिपरवेक्ष्य प्रीतमहनायं लोकम्। भुवनतलमशेषं प्रत्यवेक्षिष्यमाणः/ क्षितिधरतटपीठादुत्थितः सप्तसप्तिः।।[११]

रथांगपाणेः पटलेन रोचिषामृषित्विषः संवलिता विरेजिरे। चलत्पलाशान्तगोचरास्तरोस्तुषारमूर्तेरिव नक्तमंशवः।।[१२]

करूण रस की दृष्टि से -

सपदि कुमुदिनीभिर्मीलितं हा क्षपापि/ क्षयमगमदपेतास्तारकास्ताः समस्ताः। इति दयितकलत्रश्चिन्तयन्नंगमिन्दुः/ वहति कृशमशेषं भष्टशोभं शुचेव।।[१३]

व्रजति विषयमक्ष्णामंशुमाली न याव-/ त्तिमिरमखिलमस्तं तावदेवारूणेन। परपरिभवि तेजस्तन्वतामाशु कर्तु/ प्रभवति हि विपक्षोच्छेदमग्रेसरोऽपि।।[१४]

विगततिमिरपंक पश्यति व्योम याव -/ द्भ्रवति विरहखिन्नः पक्षती यावदेव। रथचरणसमाह्वस्तावदौत्सुक्यनुन्ना/ सरिदपरतटान्तादागता चक्रवाकी।।[१५]

पत्नियों को प्राणों के समान प्यार करने वाला पति उनके निधन पर शोकामिभूत होकर अशोभन एवं दुर्बल हो ही जाता है। कवि ने करूण रस की पंक्ति को प्रस्तुत किया है। हाय! शीघ्र ही ये कुमुदिनियाँ संकुचित हो गयी अर्थात् मूर्च्छित हो गयी, रात्रि भी क्षीण हो गयी और सब ताराएँ भी विलीन हो गयी। मानों इस प्रकार के शोक से स्त्रियों का प्यारा चन्द्रमा अत्यन्त दुर्बल और शोभाविहीन शरीर वाला प्रतीत हो रहा है।

जब तक चक्रवाक प्रिया के विरह-दुःख से दुःखित होकर आकाश के अंधकार शून्य देख उड़ने के लिए अपने पंखों को फड़फड़ाता है तब तक नदी के किनारे से उत्सुक्ता से भरी हुई चक्रवाकी उसके समीप आकर

पहुँच जाती है। चक्रवाक दम्पत्ति रात्रि में विमुक्त होकर नदी के तटों पर रहते हैं और प्रातः होते ही एक दूसरे से मिलने के लिए विह्वल हो जाते हैं।

जिस प्रकार दर्शक लोग नाटकों को देखते हुए शृंगार आदि नवों रसों का अनुभव करते हुए आनन्द प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में आये हुए लोगभोजन करते समय मधुर अम्ल आदि ६ रसों के व्यंजनों का आस्वादन कर आनन्द प्राप्त कर रहे हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

[१]*शिशुपालवध महाकाव्य,* १/१
[२]वही, १/२
[३]वही, १/४
[४]वही, १/५
[५]वही, १/६
[६]वही, १/१०
[७]वही, ११/१९
[८]वही, ११/४४
[९]*शिशुपालवध महाकाव्य,* ११/४५
[१०]वही, ११/४०
[११]वही, ११/४८
[१२]*शिशुपालवध महाकाव्य,* १/२१
[१३]वही, ११/२४
[१४]वही, ११/२५
[१५]वही, ११/२६

आन्वीक्षिकी

भारतीय शोध पत्रिका

वर्ष- ११ अंक- २ मार्च- २०१७

शोध प्रपत्र

विवेकानन्द कीं जन-शिक्षा -डॉ0 मनोज कुमार अग्निहोत्री 1-3

विवेकानन्द एवं प्लेटो का तुलनात्मक शिक्षा दर्शन -डॉ0 मनोज कुमार अग्निहोत्री 4-7

अपभ्रंश साहित्य में मिथकीय संदर्भ -डॉ0 नीतू दुबे 8-9

महावीर प्रसाद द्विवेदी : एक बहुआयामी व्यक्तित्व -डॉ0 सच्चिदानन्द द्विवेदी 10-16

पारिभाषिक शब्दावली और प्रयुक्ति की समस्यायें -डॉ0 रमा पद्मजा वेदुला 17-22

कबीर के दोहे आज भी प्रासंगिक -डॉ0 नीतू दुबे 23-25

प्रिंट ISSN 0973-9777, वेबसाइट ISSN 0973-9777

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,1-3**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 07 अक्टूबर 2016

विवेकानन्द की जन-शिक्षा

डॉ0 मनोज कुमार अग्निहोत्री*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *विवेकानन्द की जन-शिक्षा* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र का लेखक मैं *मनोज कुमार अग्निहोत्री* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैंने शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

सारांश

निष्कर्ष रूप में हम यह स्पष्ट कर सकते हैं कि स्वामी विवेकानन्द जी का जन–शिक्षा का आधार वेदान्त है। जिसमें समानता की धारणा को विभक्त किया गया है। वेदान्त के सिद्धान्तों को जन–जन पहुँचाने पर उन्होंने विशेष बल दिया है। प्रत्येक आत्मा को उन्होंने ब्रह्म के रूप से स्वीकार कर उनकी सेवा करने की बात कही है इसके अतिरिक्त उन्होंने प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति का कर्तव्य बताया है कि वे लाखों भुखे तथा असहायों को शिक्षा देकर मुक्ति के पथ पर चलें। इस प्रकार वे सम्पूर्ण राष्ट्र को समुन्नत बनाने के लिए उन्होंने जन–साधारण को मातृभाषा तथा संस्कृत शिक्षा द्वारा शिक्षित करने पर बल दिया है।

किसी भी देश की प्रगति का द्योतक वहाँ की साधारण जनता होती है और कोई भी देश उसी अनुपात में उन्नत हुआ करता है, जिस अनुपात में वहाँ के जन–समुदाय में शिक्षा और बुद्धि का प्रसार होता है। स्वामी विवेकानन्द जी का मानना है कि भारत वर्ष के पतन का भी यही कारण था कि मुट्ठी भर लोगों ने देश की सम्पूर्ण शिक्षा और बुद्धि पर एकाधिकार कर लिया था। जिसके परिणमस्वरूप गरीब व निम्नवर्ग के व्यक्ति अपने व्यक्ति का विकास नहीं कर सके और न ही वे अपने कर्तव्यों से ही परिचित हो सके। अत: राष्ट्र का सम्पूर्ण विकास करने का एकमेव उपाय है जन–शिक्षा। स्वामी विवेकानन्द अपने कथन द्वारा स्पष्ट किये हैं कि, ''हमारा महान् राष्ट्रीय पाप है जन–समुदाय की उपेक्षा करना और यही हमारे अध:पतन का कारण है। राजनीति चाहे जितनी अधिक मात्रा में रहे पर उससे तब तक कोई लाभ न होगा, जब तक भारतवर्ष की जनता पुन: एक बार सुशिक्षित न हो जाए।''

इस विचार से स्वामी विवेकानन्द जी ने स्पष्ट किया है कि शिक्षा गरीबों तक पहुँचनी चाहिए, चाहे वे खेत जोतने वाले या फैक्ट्री में कार्य करने वाले, या कहीं भी हों। गरीब एक असहाय लोगों का कोई मित्र नहीं होता, उन्हें कोई सहायता देने वाला नहीं है, वे ऊपर नहीं उठ सकते, और प्रतिदिन वे लोग रसातल की ओर ही जा रहे हैं, वे क्रूर समाज की चोटों (घावों) का प्रतिदिन

* एस0एस0 खन्ना महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत। E-mail : agni.mkumar@yahoo.com

© लेखक 2017, एम0पी0ए0एस0वी0ओ0 मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहासंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

प्रहार सहते रहते हैं, परन्तु वे यह नहीं जानते कि ये आघात कहाँ से आ रहे है? स्वामी जी के विचार से वह प्रत्येक मनुष्य देशद्रोही है जो इन पीड़ित मनुष्यों के व्यय से शिक्षित हुआ है और उनकी उन्नति की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देता।

स्वामी विवेकानन्द जी के ये विचार वर्तमान लोकतान्त्रिक व्यवस्था के भी अनुकूल है। उन्होंने जन–समुदाय को शिक्षा द्वारा व्यावहारिक तथा आध्यात्मिक सत्यों को अन्वेशित करने की अपील की है कि उनके सामने विचारों को रखा जाये। उनके चारों ओर संसार में जो कुछ हो रहा है उसको सिर्फ बतलाया जाय, जिससे वे अपनी मुक्ति का कार्य स्वयं कर सके।

स्वामी विवेकानन्द जी का मानना है कि भारत की अधिकांश जनता गांवों तथा झोपड़ियों में निवास करती है। अत: शिक्षित लोग देश के एक भाग से दूसरे भाग में जाएं और गाँव – गाँव में जाकर लोगों को स्व–विकास हेतु जागृत करने के लिए उन्हें उनकी यथार्थ अवस्था का परिचय करायें। उन्हें अपनी व्यवस्था सुधारने के लिए प्रेरित करें। शास्त्रों में निहित उदात्त सत्यों को विषद् रूप से सरलतापूर्वक समझायें। उनके मन में यह बात स्थिर कर दें कि ब्राह्मणों के समान उनका भी धर्म पर वही अधिकार है। प्रत्येक व्यक्ति को उसकी रुचि तथा जीवन के लिए आवश्यक विषयों–वाणिज्य तथा कृषि आदि की भी शिक्षा दी जाये। शताब्दियों से ऊँची जाति वालों, राजाओं तथा विदेशियों के असह्य अत्याचारों द्वारा निम्न वर्ग के व्यक्तियों की शक्तियों का क्षय हो गया है। अत: उनकी शक्तियों को पुन: प्राप्त कराना हमारा प्रथम कर्तव्य होना चाहिए। इसके लिए वेदान्त के आदर्श को जन–जन तक पहुंचाना होगा। वेदान्त के जो तत्व अब तक जंगलों तथा गुफाओं तक ही सीमित थे उन्हें अब न्यायालयों, प्रार्थना मन्दिरों एवं गरीबों की झोपड़ियों में प्रवेश कराना होगा।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार जन–शिक्षा का कार्य केवल उनके लिए विद्यालय खोल देने से ही पूरा नहीं हो जाता। उनके लिए नि:शुल्क शिक्षा व्यवस्था के साथ–साथ शिक्षण सहायता सामग्री आदि का भी प्रबन्ध किया जाना चाहिए। स्वामी जी ने इस कार्य हेतु एक निष्ठावान, स्वार्थ त्यागी व्यक्ति की आवश्यकता पर बल दिया है। और यह माना कि इसके लिए सन्यासी व्यक्ति सबसे उपर्युक्त है। उनका मानना था कि सन्यासी का कार्य सिर्फ अपनी मुक्ति ही नहीं बल्कि जगत का कल्याण करना भी होता है। इसके अतिरिक्त जो सन्यासी एक ग्राम (जगह) से दूसरे ग्रामों में घूमते हुए धर्मोपदेश देते फिरते हैं इसके लिए यह पहले आवश्यक है कि वे एक दरवाजे से दूसरे दरवाजे जाकर उन्हें भौतिक विषयों जैसे– ज्योतिष, भूगोल, इतिहास, विज्ञान आदि की शिक्षा प्रदान करें। कुछ लोग विभिन्न देशों की कहानियां सुनाकर उन्हें सौ गुना अधिक जानकारी दे सकते है। इतनी जानकारी वे जन्म भर पुस्तक पढ़कर भी नहीं प्राप्त कर सकते। आधुनिक विज्ञान की सहायता से उनके ज्ञान को प्रज्ज्वलित कर दें। साथ ही साथ धर्म के गम्भीर सत्यों की भी शिक्षा दें।

स्वामी विवेकानन्द के समय में अंग्रेजी शासन होने के कारण मातृभाषा के स्थान पर ऑग्लभाषा का प्रभुत्व बढ़ रहा था। जिसे साधारण लोग नहीं सीख सकते थे। अत: उन्होंने जन–साधारण की शिक्षा उनकी मातृभाषा द्वारा ही दी जाने की सिफारिश की स्वामी विवेकानन्द जी के शब्दों में– ''जन साधारण को उनकी निजी भाषा में शिक्षा दी। उनके सामने विचारों को रखो, वे जानकारी प्राप्त कर लेगें – पर और भी कुछ आवश्यक होगा। उन्हें संस्कृति दो। जब तक तुम उन्हें संस्कृति न दोगे, तब तक उनकी उन्नत दशा कोई स्थायी रूप प्राप्त नहीं कर सकती।''

मातृभाषा में शिक्षा प्रदान करने के साथ–साथ संस्कृत की शिक्षा भी दी जाये क्योंकि संस्कृत भाषा में हमारे अमूल्य तत्व सुरक्षित हैं। इसके अतिरिक्त संस्कृत शब्द की ध्वनि सत्र से हमारी जाति प्रतिष्ठा, बल और शक्ति प्राप्त होती है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि यदि जन–साधारण को संस्कृत भाषा की शिक्षा नहीं दी जायेगी तो उन्हें प्रतिष्ठा नहीं मिलेगी, तब एक और जाति पैदा हो जाएगी, जो संस्कृत भाषा जानने के कारण शीघ्र ही औरों की अपेक्षा ऊँची उठ जायेगी। स्वामी जी ने बताया है कि ''भगवान बुद्ध ने भी यह भूल की थी कि उन्होंने संस्कृत शिक्षा का विस्तार बन्द कर दिया। वे शीघ्र और तात्कालिक परिणाम चाहते थे, इसलिए उन दिनों की 'पाली' भाषा में उन्होनें संस्कृत भाषा में निबद्ध भावों का भाषान्तर करके उनका प्रचार किया यह बहुत ही सुन्दर हुआ था। वे जनता की भाषा बोले और जनता ने उनकी बात को समझ लिया। इससे उनके भाव बहुत शीघ्र ही फैले और बहुत दूर–दूर तक पहुंचे। पर इसके साथ ही संस्कृत का भी प्रचार होना चाहिए था। ज्ञान तो प्राप्त हुआ, पर उसमें प्रतिष्ठा नहीं थी।''

अद्वैत वेदान्त के समर्थक होने के कारण स्वामी विवेकानन्द जी यह मानते है कि प्रत्येक मनुष्य में ज्ञान का अनन्त भण्डार विद्यमान है। केवल अन्तर इतना है कि जिस व्यक्ति का अज्ञान रूपी आवरण जितना हट जाता है वह उतना ही ज्ञानी हो जाता

है उच्च वर्ग वालों को चाहिए कि वे निम्नवर्ग वालों को उनके समुचित हक की प्राप्ति में सहयोग दें। उन्हें प्रेम से समझाएं तुम हमारे भाई हो, हमारे शरीर के अंग हो। यदि वे इस प्रकार की सहानुभूति पा जाएं तो उनका कार्य करने का उत्साह सौ गुना बढ़ जाएगा। बड़े कार्य करने के लिए स्वामी विवेकानन्द जी ने तीन बातों की आवश्यकता पर विशेष बल दिया है। पहला है हृदय–अनुभव की शक्ति। हृदय तो महाशक्ति का द्वारा है, अन्तः स्फूर्ति वहीं से आती है। दूसरी आवश्यकता है – अनुभूति समस्याओं को दूर के करने के लिए उपाय; अर्थात् यथार्थ कर्तव्य पथ निश्चित करना, तथा तीसरी आवश्यकता है दृढ संकल्प। कितनी ही विध्न–बाधाएं आने पर हम अपने निर्दिष्ट लक्ष्य पर पहुचने के लिए कृत संकल्प बने रहें। जैसे कि राजा भर्तृहरि ने कहा था, ''चाहे नीतिनिपुण लोग निन्दा करें या प्रशंसा, लक्ष्मी आए या जहाँ उसकी इच्छा हो चली जाए, मृत्यु आज हो या सौ वर्ष बाद, धीरे–धीरे पुरूष तो वह है जो न्याय के पथ से तनिक भी विचलित नहीं होता।''

जिस व्यक्ति में उपर्युक्त तीनों गुणों का समावेश पाया जाता है वह संसार के प्रत्येक उद्‌भुत कार्य करने में सक्षम होता है। गरीब और निम्न वर्ग के मनुष्यों को दरिद्रनारायण कहते हुए स्वामी विवेकानन्द जी ने इनकी शिक्षा का भार उच्च वर्ग के लोगों पर सौपा। इन लोगों को उपर्युक्त तीनों गुणों से युक्त होना चाहिए। उन्होंने तीनो गुणों से युक्त होना चाहिए। उन्होंने स्पष्ट किया है कि इन दरिद्रनारायण को ईश्वर समझकर निरन्तर इन्हीं का ध्यान करो, उनके लिए कार्य करो और प्रार्थना भी करो। सद्‌कार्य करने हेतु ईश्वर भी मार्ग दिखाएगा; और इस प्रकार कर्म को ही उपासनना समझकर निरन्तर सेवा कार्य में लीन हो जाओ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

मजूमदार, श्री सत्येन्द्र नाथ –*विवेकानन्द चरित्र,* रामकृष्ण मठ, नागपुर
विवेकानन्द साहित्य – अद्वैत आश्रम मायावती अल्मोड़ा जन्मशती संस्कार
विवेकानन्द स्वामी – कर्मयोग, रामकृष्ण मठ, धन्तोली नागपुर
पाण्डेय, राम सकल –*विश्व के श्रेष्ठ शिक्षाशास्त्री,* विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
अन्वेशिका – रेडियन जर्नल आफ टीचर एजूकेशन

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,4-7**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 26 अक्टूबर 2016

विवेकानन्द एवं प्लेटो का तुलनात्मक शिक्षा दर्शन

डॉ0 मनोज कुमार अग्निहोत्री*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *विवेकानन्द एवं प्लेटो का तुलनात्मक शिक्षा दर्शन* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र का लेखक मैं *मनोज कुमार अग्निहोत्री* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैंने शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

सारांश

यह कहा जा सकता है कि शैक्षिक व आध्यात्मिक पुनरूत्थान के साथ सामाजिक व राजनैतिक सुधार विशेषत: विवेकानन्द शिक्षा दर्शन के साथ–साथ प्लेटो शिक्षा दर्शन की भी जरूरत है। इस प्रकार यदि आज की परिस्थिति ने विवेकानन्द एवं प्लेटो के प्रभावों विचारों तथा मूल्यों का आत्मसात कर आर लागू करे, तो शिक्षा–दर्शन के क्षेत्र में उन बीजो को बो सकेगें जो कलान्तर में वृक्ष बनकर समाज के जीवन में पतझड़ के बजाय बसंत की सर्जना कर सकेगें।

यद्यपि दोनों विचारक (स्वामी विवेकानन्द एवं प्लेटो) आदर्शवादी दर्शन के समर्थक हैं, इस दृष्टि से इनके शैक्षिक विचारों में यथेष्ट साम्यताएँ दिखाई देती हैं। आधुनिक भारतीय जीवन दर्शन भी मूलत: सनातन ज्ञान से ही संबंधित है। परन्तु कहीं न कहीं कार्य करने की शैली में भिन्नता आना स्वाभाविक है।

स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा–दर्शन का दार्शनिक आधार अद्वैत वेदान्त है। अद्वैतमत के समर्थक होने के कारण स्वामी विवेकानन्द जी ने प्रत्येक मानव को परमात्मा या परमसत् का अंश बताया। अत: मानव सेवा ईश सेवा है। सेवा तथा प्रेम के भाव को स्वामी विवेकानन्द जी ने 'यत्रजीवन तत्रशिव' के महामंत्र द्वारा व्यक्त किया।

भारत के अतीत में सरल आस्था रखते हुए और भारत की विरासत पर गर्व करते हुए भी स्वामी जी के जीवन की समस्याओं के प्रति दृष्टिकोण आधुनिक था और वे भारत के अतीत तथा वर्तमान के बीच एक बडे संयोजक थे।

विवेकानन्द वेदान्त को सार्वभौमिक दर्शन मानते थे, इसलिए आधुनिक परिप्रेक्ष्य में उसे जीवन में उतारने हेतु उन्होंने धर्म, दर्शन, भजन, कीर्तन, समाज सेवा पर बल देते हुए उपदेश, व्याख्यान, चिन्तन, मनन, योग आदि का समर्थन किया। इसी उद्देश्य को लेकर 'रामकृष्ण मठ व मिशन' अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मानव–सेवा में रत है। स्वामी जी के इस दार्शनिक

* एस0एस0 खन्ना महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत। E-mail : agni.mkumar@yahoo.com

© लेखक 2017, एम0पी0ए0एस0वी0ओ0 मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहासंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

आधार को भारत सरकार द्वारा प्रस्तावित 'नई शिक्षा नीति' ने भी स्वीकार किया है। तदनुरूप शिक्षा में समानता के सिद्धान्त को अपनाया गया।

स्वामी विवेकानन्द जी के शिक्षा–दर्शन का शैक्षिक आधार बालक में ''अन्तर्निहित क्षमताओं का विकास है।'' सूचना प्रदान करना या विषयों की जानकारी देना शिक्षा नहीं है। स्वामी जी ज्ञान को व्यक्तियों में निहित मानते हैं। इसलिए वह अंत: स्थित ज्ञान को अनावृत करने की प्रक्रिया को शिक्षा मानते है। विवेकानन्द जी ने जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य ''आत्मानुभूति'' अर्थात् आध्यात्मिक विकास को शिक्षा का अंतिम लक्ष्य माना है। जिसके लिए आत्म प्रकाशन अनिवार्य है, और आत्म प्रकाशन के लिए व्यक्ति को अपनी समस्त शक्तियों व योगताओं की जानकारी प्राप्त करना व उसका समुचित दिशा में विकास करना आवश्यक हो जाता है।

स्वामी विवेकानन्द जी के शिक्षा दर्शन संबंधी विचारों द्वारा प्राच्य दार्शनिकों की आध्यात्मिकता एवं पाश्चात्य दार्शनिकों की भौतिकता के बीच समन्वय स्थापित है। इन्होंने भारत का विशेषत्व आध्यात्मिक ज्ञान तथा पाश्चात्य का विशेषत्व भौतिक ज्ञान बताते हुए दोनों को एक दूसरे के ज्ञान के आदान प्रदान द्वारा पुष्ट होने की प्रेरणा दी है। उन्होंने भारतीय को पाश्चात्य देशों से वैज्ञानिक एवं तकनीकी ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित भी किया है।

स्वामी जी ने भारत के प्राचीन गौरव व संस्कृति को पुन: स्थापित करने का सतत प्रयास किया है। अत: इनकी आस्था प्राचीन आदर्शो व मूल्यों की स्थापना में है; लेकिन वे प्राचीनता व नवीनता के साथ समन्वय स्थापित करना चाहते है।

स्वामी जी ने देश के धार्मिक व सांस्कृतिक पुनरूत्थान को महत्व दिया है। उनका मानना है कि सच्चा धार्मिक व्यक्ति सद्गुण युक्त हो जाता है, इसलिए उन्होंने सामाजिक व राजनीतिक सुधार की अपेक्षा शैक्षिक व आध्यात्मिक पुनरुत्थान पर विशेष बल दिया है। उन्होंने शिक्षा द्वारा चरित्रवान नागरिक बनाने का आह्वान किया है।

स्वामी जी ने शिक्षा के अभिकरण के रूप में अनौपचारिक शिक्षा को महत्व दिया है और स्त्रियों को पुरूषों के समान शिक्षा देने का समर्थन किया है।

परन्तु वे सह–शिक्षा के समर्थक नहीं थे।

प्लेटो पाश्चात्य जगत के श्रेष्ठ आदर्शवादी विचारधारा के दार्शनिक थे। प्लेटो का दर्शन मनुष्य को परमशुभ प्राप्त करने के लिए प्रेरित करता है। यद्यपि प्लेटो के दर्शन में 'प्रत्यय विचार के अन्तर्गत कुछ प्रश्नों जैसे क्या प्रत्ययों द्वारा जगत की उत्पत्ति की व्याख्या होती है? क्या प्रत्ययों द्वारा वस्तुओं की उत्पत्ति दिखाई जा सकती है? के उत्तर काफी उलझे हैं तथापि प्लेटो ने 'सत्यमं शिवम् सुन्दरम्' का समन्वय व्यक्ति और समाज में रखा और शिक्षा को उसकी प्राप्ति का साधन बनाया है। प्लेटो का सत्यं, शिवं सुन्दर के सौन्दर्यानुभूति संबंधी एवं मूल्य संबंधी विचार आज भी सर्वमान्य हैं।

डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार, ''प्लेटो के उपरोक्त विचार अपने मूल में यूनानी परम्परा से हटकर है। निश्चय ही ये भारतीय दर्शन से प्रभावित हैं।''

इस प्रकार पाश्चात्य दार्शनिकों (प्लेटो) के दर्शन संबंधी विचार प्राच्य दार्शनिक (विवेकानन्द) के विचारों से कुछ मेल खाते हुए देखे गये हैं। वास्तव में प्लेटो ने अपने समय में ही दार्शनिक ज्ञान का प्रकाश नहीं फैलाया है। प्लेटो के अनुसार सच्चा मानव सुख और उपलब्धि उसकी बौद्धिकता में है। पाशविक शक्ति का नियंत्रण मानव कल्याण के लिए विवेकपूर्वक किया जाना चाहिए। मानव जीवन में सच्चा विकास उसकी आदर्शोन्मुखता से ही संभव है। प्लेटो के लिए ऐरिस्टोंटल द्वारा लिखी गई ये पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं – ''उस अतुल्य मानव के प्रति –/ जिसका नाम ने ले दुष्टों की जीभ,/ उन्हें हक नहीं उनकी प्रशंसा का/ जिसने सर्वप्रथम स्पष्ट किया/ अपने शब्दों में, अपने विचारों में,/ कि सुखी वहीं है जो है सद्गुणी। हाँ, हममें से कोई उसके समकक्ष नहीं।''

प्लेटो के शिक्षा दर्शन संबंधी विचारों के अन्तर्गत प्लेटो के शैक्षिक विचारों के संबंध में ई.जे. आर्विक ने अपनी पुस्तक ''द मैसेज ऑफ प्लेटो'' में लिखा है कि प्लेटो ने भारतीय दर्शन से साम्य रखते हुए शिक्षा का उद्देश्य ज्ञान प्राप्ति एवं आत्मा का बोध माना है। उनका मानना है कि भौतिक जगत के एकत्व को जानने के लिए विज्ञान का ज्ञान आवश्यक है। इसके ज्ञान द्वारा ही छात्रों का मानसिक व बौद्धिक विकास संभव है। उन्होंने गणित की शिक्षा पर भी विशेष जोर दिया। पाश्चात्य शिक्षा के इतिहास में प्लेटो प्रथम व्यक्ति था जिसने पाठ्यक्रम पर कुछ व्यवस्थित विचार प्रकट किये। प्लेटो ने भी 'समान

बालक और समान शिक्षा' का सिद्धान्त अपनाया। उनके अनुसार पुरूष स्त्री की शिक्षा में कोई भेद होना चाहिए। प्लेटो ने शिक्षा के अभिकरण के रूप में औपचारिक शिक्षा का महत्व दिया है और इसी लक्ष्य के अनुसार 'अकादमी' की स्थापना भी की थी। फोटो समाजवादी सिद्धान्त के पोषक कहे जा सकते है। ये प्रयोजन वादी थे प्लेटो के अनुसार सामाजिक शिक्षा ही सामाजिक न्याय का साधन है। तथा किसी भी श्रेष्ठ राजनीतिक जीवन के निर्माण के लिए श्रेष्ठ शिक्षा प्रणाली का होना नितान्त आवश्यक है। प्लेटो ने अपनी पुस्तक 'रिपब्लिक' में शिक्षा पर गहन एवं विस्तृत चिंतन किया है। प्लेटो ने शिक्षा का भार राज्य के ऊपर रखा तथा परिवार को शिक्षा के अनुपयुक्त समझा। उन्होंने शिक्षा को व्यावसायिक बनाने से रोका एवं उच्च शिक्षा के संबंध में वैयक्तिक भिन्नताओं पर विशेष ध्यान दिया। शिक्षा के क्षेत्र में चारित्रिक और आध्यात्मिक विकास, खेलकूद, जिमनास्टिक, घुड़सवारी, शस्त्रविद्या पर जोर दिया। उन्होंने बालकों एवं नव–युवकों की शिक्षा सामग्री पर कड़ी दृष्टि रखने को कहा है।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि विवेकानन्द एवं प्लेटो के विचारों में बहुत हद तक समानता दिखती है। प्राच्य एवं पाश्चात्य दोनों दार्शनिक शिक्षाविदों ने जो सुझाव आज के बहुत समय पहले सुझाये थे, वह आज की शिक्षा व्यवस्था में देखने को मिलते है।

आज के बुद्धिवादी युग में यदि हम दर्शन को चिंतन की चेष्टा से बाँध दे और जो ज्ञान–विज्ञान का विभाजन है, उसे अनिवार्य बना दे तो अन्य युगों की दार्शनिक जिज्ञासा की प्रेरणा तथा उपलब्धि से हम वंचित रह जायेगे। इस मानदण्ड से उपनिषद् को दर्शन मानने में कठिनाई होगी, क्योंकि वहाँ चिन्तन की जगह सद्–वस्तु के साक्षात् अनुभव पर अधिक बल है। इसीलिए स्वामी विवेकानन्द जी ने भारतीयों को आध्यात्मिक ज्ञान के साथ–साथ वैज्ञानिक एवं तकनीकी ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया है।

विवेकानन्द शिक्षा के द्वारा मनुष्य को लौकिक एवं पर–लौकिक दोनों जीवनों के लिए तैयार करना चाहते है। उनका मानना है कि जब तक हम भौतिक दृष्टि से सम्पन्न एवं सुखी नहीं होते तब तक ज्ञान, कर्म भक्ति और योग कल्पना की वस्तु है। उनके अनुसार हमें ऐसी शिक्षा चाहिए, जिसके द्वारा चरित्र का गठन हो, मन का बल बढ़े, बुद्धि का विकास हो और मनुष्य स्वावलम्बी बरे। आज भारत को मानवता तथा चरित्र का निर्माण करने वाली ऐसी ही शिक्षा की नितान्त आवश्यकता है।

आज की शिक्षा में गुणात्मक विकास के लिए ऐसे प्रयत्न की जरूरत है जो समय–समय पर शैक्षिक मूल्यों को परिभाषित संशोधित व मूल्यांकित कर सके; चूँकि आधुनिक शिक्षा का उद्देश्य मानव–निर्माण का चरित्र–निर्माण के साथ–साथ, जीविका भी है अत: जरूरत है ऐसी शिक्षा की जो व्यक्ति का सर्वांगीण (शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, सामाजिक एवं नैतिक) विकास कर सके।

प्लेटो एक महान् दार्शनिक एक राजनीतिक, शिक्षाविद एवं सामाजिक कार्य कर्ता थे। प्लेटो के अनुसार मनुष्य का मस्तिष्क सतत सक्रिय है, अत: वातावरण में विद्यमान विषय उसके सम्मुख प्रस्तुत नहीं होते वरन वह उनके प्रति आकर्षित होता है और उनके अनुरूप अपने आप को ढ़ालने का प्रयास करता है।

प्लेटो ने आदर्श राज्य के निर्माण हेतु शिक्षा को महत्वपूर्ण साधन के रूप में मान्यता प्रदान की है। शिक्षा द्वारा नैतिक सद्गुणों के विकास पर जोर दिया तथा व्यक्ति के लिए उदारवादी शिक्षा को समर्थन के साथ–साथ दोनों ही शिक्षा पद्धति पर पूर्ण राजकीय नियंत्रण का समर्थन किया। शिक्षा योजनाओं को कार्यान्वित करने में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का सहारा लिया। प्लेटो की शिक्षा जीवन पर्यन्त चलती रहती है। जिसका अन्त सद्गुणों की प्रगति के रूप में होता है।

इसलिए प्लेटो की शिक्षा का पाठ्यक्रम कुछ विषयों तक ही सीमित नहीं है, मानव जीवन के सम्पूर्ण अनुभव तक विस्तृत है और शिक्षा का काल भी जीवन पर्यन्त व्यापक है। प्लेटो की शिक्षा सीमित नहीं है निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है, सिर्फ मानसिक नहीं, शारीरिक भी नहीं, संकीर्ण भी नहीं, सर्वागीण है। प्लेटो की शिक्षा प्रणाली का मूल्यांकन करते हुए ठीक ही कहा गया है कि, ''यद्यपि प्रजातांत्रिक प्रणाली प्लेटो के कुलीन वर्गीय राजनीतिक शासकों के प्रशिक्षण की योजनाओं को अस्वीकार करती रहेगी फिर भी यह सार्वजनिक सेवकों के प्रशिक्षण की संभावना व वांछनीयता को अधिक सहानुभूति पूर्ण ढंग से देखती रहेगी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

मजूमदार, श्री सत्येन्द्र नाथ –*विवेकानन्द चरित्र,* रामकृष्ण मठ, नागपुर

विवेकानन्द साहित्य – अद्वैत आश्रम मायावती अल्मोड़ा जन्मशती संस्कार

विवेकानन्द स्वामी – कर्मयोग, रामकृष्ण मठ, धन्तोली नागपुर

पाण्डेय, राम सकल –*विश्व के श्रेष्ठ शिक्षा शास्त्री,* विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

अन्वेशिका – रेडियन जर्नल आफ टीचर एजूकेशन

विश्व के श्रेष्ठ शिक्षा शास्त्री –पाण्डेय, डॉ. राम सकल

पाश्चात्य दार्शनिक प्लेटो से संबंधित दर्शन – ग्रन्थ

- *दि फिलासफी ऑफ प्लेटो*
- *फ्रीतो एण्ड फीड़ो*
- *प्लेटो का प्रजातंत्र*
- *प्लेटो दि मैन एण्ड हिज वर्क*

त्रिपाठी, डॉ० सी०एल० –*ग्रीक दर्शन,* प्रयाग पुस्तक सदन, इलाहाबाद

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,8-9**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 01 मार्च 2017

अपभ्रंश साहित्य में मिथकीय संदर्भ

डॉ0 नीतू दुबे*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *अपभ्रंश साहित्य में मिथकीय संदर्भ* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *नीतू दुबे* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इस छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध प्रपत्र आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

'मिथक' से तात्पर्य मौखिक कथा। यह मिथक मानव जाति के अवचेतन में संचित चिभिन्न आधार बिम्बों, संस्कारों आदि का प्रतिरूप होता है। मथक के निर्माण में सामूहिक अचेतन विद्यमान होता है। डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में ''मिथक से तात्पर्य परम्परागत कथा जिसका संबंध अति प्राकृतिक घटनाओं और भावनाओं से होता है। मिथक मूलत: आदिम मानव के समष्टि मन की सृष्टि है। जिसमें चेतन की अपेक्षा अचेतन का प्राधान्य रहता है।.....'' अर्थात् मिथक अन्तर्जगत् की वह भाषा होती है जिसे केवल अनुभव किया जा सकता है परन्तु अभिव्यक्ति के लिए संबंधित घटनाओं, मिलती–जुलती दृष्टिगत सामाजिकता के आधार पर इन अनुभूतियों का चित्रण 'मिथक; कहलाता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने मिथक की व्याख्या करते हुए कहा है कि रूपगत सुन्दरता को माधुर्य (मिठास) और लावण्य (नमकीन) कहना बिल्कुल झूठ है। क्योंकि रक्त न तो मीठा होता है न नमकीन लेकिन फिर भी कहना पड़ता है क्योंकि अन्तर्जगत के भावों को बर्हिजगत में व्यक्त करने का यही एक मात्र उपाय है।''

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि यह भावना जो अव्यक्त अचेतन में रहती है मिथक के माध्यम से ही हम उसे बाहर अभिव्यक्ति के रूप में देख सकते है। साहित्यिक दृष्टि में मिथक वैदिक काल से ही काव्य का एक अंग बना हुआ है। इसके अंतर्गत आने वाली घटनायें या पात्रों को क्रमश: परिवर्तन के साथ साहित्यकारों ने प्रस्तुत किया है। कुछ पात्र और घटनायें इस तरह साहित्य में रूढ़ हो गई है जो साहित्य के बदलते मानदंड के भीतर अपने प्राचीन भाव विशेष को ही प्रस्तुत करती है।

अपभ्रंश साहित्य में भी घटनाओं और पलों के माध्यम से मिथक की उपयोगिता देखी जा सकती है। जो संस्कृत साहित्य से अपभ्रंश साहित्य तक उसी रूप में प्रस्तुत होती आ रही है। अपभ्रंश साहित्य में प्रचलित घटनाओं जैसे – अप्रिय कार्यों में शाप दे देना, पूर्वजन्म का स्मरण, भाग्यवाद के साथ–साथ अनेक कर्मों का सामजस्य तथा पाल का मिथकीय रूप में विवेचन प्रस्तुत है

राम लक्ष्मण : जैन साहित्यकारों ने राम–लक्ष्मण के चरित्र की क्रमश: अपनी धार्मिक प्रवृति के अनुसार अष्टम् बलदेव तथा अष्टम् वासुदेव माना है। परंतु ये पात्र पौराणिक साहित्य में एक दिव्य चरित्रगत कथा के नायक है जिन्हें अपभ्रंश साहित्य

* सहायक प्राध्यापिका, संत हिरदाराम कन्या महाविद्यालय, भोपाल (मध्य प्रदेश) भारत

© लेखक 2017, एम0पी0ए0एस0वी0ओ0 मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहासंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

में भी अपने सामाजिक पृष्ठभूमि के संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है। ये पात्र अवतारी मिथक है जो प्रत्येक युग के साहित्य में उसी रूप में देखे गये हैं, चाहे घटनाक्रम कुछ भी हो। कथाक्रम के अंतर्गत इनकी भूमिका अवतारी रूप में ही चित्रित है।

सीता : सीता के चरित्र को भी जैन साहित्यकारों ने पौराणिक आधार पर ही अपने साहित्य में स्थान दिया है। सीता का चरित्र जैन साहित्य में साधारण स्त्री के रूप को प्रगट करता है। पर कही न कही सीता का वह अवतारी रूप भी सामने आता है। जहॉ पर कवि सीता को उसके पौराणिक नाम से संबोंधित करता है जैसे – बैदेही इत्यादि। सीता की जन्म कथा ही लौकिक मान्यताओं की परिणति है।

रावण : रावण के चरित्र को आसुरी प्रवृत्ति का घोतक माना गया है। पर अपभ्रंश में कवि ने उसकी गणना महापुरूषों की श्रेणी में की है। परंतु संस्कार उसका वही है। कवियों ने उसे अत्यंत क्रोधी ओर कामुक रूप में चित्रित किया है तो अपने प्रण के लिए दूसरे की पत्नी को चुरा लेता है।

हनुमान : हनुमान के नाम से ही मन में एक बलशाली बन्दर का रूप सामने आ जाता है। परन्तु अपभ्रंश साहित्य में हनुमान के उस बन्दर के मिथकीय स्वरूप में थोड़ा परिवर्तन हुआ है। इसमें वह एक विद्याघर के रूप में चित्रित है। परंतु उनके कार्य वही है। सीता की खोज और लंकादहन। तथा राम के चरण कमल की भक्ति।

इन्द्र : जैन पुराणों में इन्द्र को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। प्राय: इन्द्र को एक ऐसे देवता के रूप में पहचाना जाता है जो अपनी पूता जा करवाने के लिए अपने देवलोक के छूटने के भय से हमेशा भयभीत रहते है। अपभ्रंश साहित्य में भी इन्द्र का वही रूप प्रस्तुत है जो अन्य देवताओं के साथ अनिवार्यत: पधारते है तथा जिन स्तुति करते है। इन कवियों ने राम–कथा अथवा कृष्ण–कथा में भारतीय लोक में स्वीकार सभी देवताओं को एक साथ प्रस्तुत कर कथा को व्यापक तो बनाया ही, साथ ही लक्ष्य सिद्धि में भी सफल रहे। लक्ष्य या सभी लोक द्वारा मान्य देवताओं का जिन धर्म की ओर उन्मुख होना।

इस प्रकार कथावस्तु में परिवर्तन के फलस्वरूप भी घटनायें पौराणिक परिवंश में ही प्रस्तुत की गयी है।

विस्तृत कथानक के अंतर्गत हम उन कथाओं को ही अपभ्रंश साहित्य में थोड़े परिवर्तन के आधार पर देखते है। जैसे – राम–कथा या कृष्ण–कथा को उन्हीं घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में बदलते आयाम के नये रूपों में देखा है। दशरथ के चार पुत्र राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न। जनक द्वारा सीता का पालन तथा राम का विवाह तथा लक्ष्मण इत्यादि का विवाह पौराणिक परम्परा को एक नया आयाम देकर प्रस्तुत है। लंकेश रावण का मंदोदरी से विवाह (महा ७०/६/१–२) शूर्पणखा के सदृश चंदनरवी की अवधारण, भिन्न कथानक के साथ भारीच का स्वर्णमृग बनना तथा रावण द्वारा हल–बल से सीता का हरण तथा कृष्ण की बाल–लीला आदि चिर–परिचित कथाओं का ही रूप सामने आता है।

इन मूल कथाओं के अतिरिक्त अपनी रचना को और भी प्रभावशाली और नया रूप प्रदान करने के लिए समस्त रचनाओं में ऐसी घटनाओं का उल्लेख हुआ है। इसके अतिरिक्त कुछ पौराणिक कथायें जो कि आज भी अपने विशेष अर्थ में प्रयुक्त होती है जैसे – दामपत्य स्नेह में, राम–सीता की प्रभु भक्ति में हनुमान को, वैभव विलास में इन्द्र सुचिता में गंगा तथा भीष्म को विद्या में, धर्म में युधिष्ठिर को तथा त्याग में कर्ण को आदर्श माना गया है।

संदर्भ ग्रंथ

महापुराण २, २३९

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,10-16**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 03 मार्च 2017

महावीर प्रसाद द्विवेदी : एक बहुआयामी व्यक्तित्व

डॉ0 सच्चिदानन्द द्विवेदी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *महावीर प्रसाद द्विवेदी : एक बहुआयामी व्यक्तित्व* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र का लेखक मैं *सच्चिदानन्द द्विवेदी* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैंने शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

किसी रचनाकार का जीवन उसके साहित्यिक मूल्यांकन में कहाँ तक सहायक है, इस विषय में दो विरोधी विचार मिलते हैं। स्वच्छन्दतावादी विचारधारा के अनुसार 'साहित्य' व्यक्तित्व का प्रकाशन है। यदि हम किसी साहित्यकार के व्यक्तिगत जीवन से परिचित हैं तो हमें साहित्य-अनुशीलन में सुविधा रहेगी। इसके विपरीत दूसरी विचारधारा आधुनिक साहित्यिकों- टी०एस० इलियट आदि की है। ये चिन्तक रचनाकार की तटस्थता की बातें करते हैं। इनका कथन है कि रचनाकार जितना ही अधिक तटस्थ रहता है अर्थात् वह रचना को अपने व्यक्तिगत जीवन से विलग रखता है, वह उतनी ही महान कृति का निर्माण कर सकता है।

वस्तुत: यह आवश्यक नहीं कि रचनाकार का वैयक्तिक जीवन पूर्णरूपेण कृति में प्रतिफलित हो, परन्तु प्रत्येक कृति में कृतिकार के व्यक्तित्व की छाया अवश्य रहती है। युग की सीमा के परिवर्तन के साथ ही साहित्य का वाह्य एवं आभ्यन्तर भी बदल जाता है। वाह्य का परिवर्तन रूप का परिवर्तन है किन्तु आभ्यान्तर का परिवर्तन तो आत्मा का परिवर्तन है। आत्मा के परिवर्तन से विचारों में भी उलट-फेर होता है। निश्चय ही भारतेन्दु युग की विचारधारा द्विवेदी युग में आकर एक पृथक् प्रवाह में बहने लगी।

''पाश्चात् साहित्य के सम्पर्क में आकर जिन नवीन साहित्यिक रूपों की अवतारणा हुई थी, उनके प्रयोग भारतेन्दु युग में प्रारम्भ हो चुके थे। आगे के काल में उन विभिन्न साहित्यिक रूपों की प्रगति पूर्णता की ओर हुई। इस पूर्णता के आदर्श पाश्चात्य साहित्य में तो थे ही, बंगला साहित्य में भी थे, क्योंकि वंगभूमि पर पाश्चात्य प्रभाव बहुत पहले से कार्य करता आ रहा था। हिन्दी के साहित्यकारों ने इन साहित्य के आदर्शों का अनुकरण करते हुए, अपना स्वतन्त्र पथ निर्धारित करने का प्रयत्न भी किया।''[१] हिन्दी साहित्यकारों ने यदि ऐसा न किया होता तो जाने कब तक उन्हें उद्योग करना पड़ता, तब वे इस अवस्था को पहुँच पाते।

* (पोस्ट डॉक्टोरल फेलो) हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2017, एम0पी0ए0एस0वी0ओ0 मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहासंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

इस युग के विद्वानों का विशेष झुकाव अनुवाद की ही ओर रहा। अनुवाद अधिकांशत: पाश्चात्य तथा बंगला साहित्य के ही हुए। साहित्यकारों ने अनुवाद में अधिक श्रम एवं शक्ति का व्यय किया, इसीलिए मौलिक सृजन बहुत कम हो पाया। इसका अर्थ यह नहीं कि मौलिक सृजन हुआ ही नहीं।

द्विवेदी युग की पृष्ठभूमि

१. हिन्दी खड़ी बोली की स्थिति; द्विवेदी जी के समय हिन्दी खड़ी बोली की स्थिति शोचनीय थी। कोई निश्चित व्याकरण नहीं था। शब्दों के प्रयोग में अराजकता फैली हुई थी। शब्दों का प्रयोग मनमाने ढंग से होता था। शब्दों के प्रयोग में लेखकों को स्वच्छन्दता थी। शब्द प्रयोग के लिए कोई निश्चित प्रतिमान या आदर्श नहीं था। शब्द चयन असंयत और गम्भीर विषयानुकूल नहीं था। शब्दों का प्रयोग उच्छृंखल होने से शब्द और अर्थ का तादात्मय नहीं हो पाता था। इसलिए साहित्य में भावाभिव्यक्ति की शक्ति क्षीण थी। उसमें शक्ति नहीं थी, सौष्ठव नहीं था, शब्दों की परिष्कृत रुचि नहीं थी, स्थिरता नहीं थी, गंभीर भावों का चयन करते समय उसके पैर लड़खड़ा जाते थे। कविता के लिये तो वह सर्वथा अशक्त थी। उसमें संगीत और लय का संविधान नहीं हो पाता था।

हिन्दी खड़ी बोली में वह शक्ति नहीं आ पाई थी कि वह स्वयं अपने पैरों पर खड़ी हो सके। उसकी दशा बड़ी सोचनीय थी। वह हिन्दी खड़ी बोली के लिये संक्रांतिकाल था।[३] वह समय उर्दू और अंग्रेजी के प्रयोग का समय था। हिन्दी की दशा चिन्तनीय थी। वह सर्वत्र तिरस्कृत थी। 'उस समय हिन्दी हर तरफ दीन-हीन थी। उसके पास न अपना कोई इतिहास था, न कोष, न व्याकरण। साहित्य का भण्डार खाली पड़ा हुआ था। बाहर की क्या कहूँ खास अपने घर में भी उसकी पूछ और आदर न था। कचहरियों में हिन्दी अछूत थी। कालेज में हिन्दी को घुसने नहीं दिया जाता था, स्कूलों में भी एक कोने में दबके रहना पड़ता था।

शैली के स्तर पर हिन्दी गद्य; भाषा की अव्यवस्थित स्थिति के साथ-साथ शैली की स्थिति भी सोचनीय थी। शैली का भी रूप निश्चित नहीं था। उसका कोई निश्चित प्रतिमान नहीं था। लोग स्वेच्छाचारी थे। अपनी-अपनी इच्छा के अनुकूल शैली का निर्माण कर लेते थे। वाक्यों के गठन में व्याकरण की त्रुटियाँ थी। शैली में कृत्रिमता और प्रयत्न की मात्रा अधिक रहती थी। विचारों का क्रम भी अव्यवस्थित और असंयत रहता था। अनुच्छेद लम्बे और आकर्षणहीन होते थे। एक ही विचार को बार-बार दोहराने और मुहावरों तथा लोकोक्तियों के अत्यधिक प्रयोग से विषय की गम्भीरता नष्ट हो जाती थी।[४] शैली के अनेक रूप तो आ चुके थे परन्तु उनमें स्थायित्व और एकरूपता नहीं आयी थी।

खड़ी बोली कविता की स्थिति; द्विवेदी जी के समय खड़ी बोली कविता की स्थिति शोचनीय थी। भारतेन्दु ने कविता के लिये अधिकांश में ब्रजभाषा का ही उपयोग किया और उसे ही प्रश्रय दिया था। खड़ी बोली को शुष्क और कर्कश भाषा कहकर कविता के लिये अयोग्य ठहराया था। फलस्वरूप कविता के क्षेत्र में ब्रह्म भाषा का राज्य था। द्विवेदी जी प्रथम आचार्य थे जिन्होंने कविता के क्षेत्र में खड़ी बोली का नारा बुलन्द किया और आशातीत सफलता प्राप्त की। कविता के विषय उस समय अधिकतर शृंगारिक ही थे। यद्यपि भारतेन्दु ने नव-युग का सूत्रपात किया द्विवेदी जी खड़ी बोली के प्रबल समर्थक थे। उन्हीं का समर्थन एवं प्रेरणा पाकर उनके सामयिक अन्य कवियों- हरिऔध, रामचरित उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, गोपाल-शरण सिंह एवं रामनरेश त्रिपाठी तथा मुकुटधर पाण्डेय इत्यादि कवियों ने भी खड़ी बोली को काव्योपयोगी बनाने के लिए भाषा-परिष्कर का कार्य किया। स्वयं द्विवेदी जी ने व्याकरण-सम्मत खड़ी बोली का प्रयोग कर हिन्दी कविता को नये रूपों से शृङ्गारित किया।

भारतेन्दु युग में जिस प्रकार की सामाजिक सुधार की भावना विद्यमान थी, वैसी ही भावना द्विवेदी युग में भी बनी रही। द्विवेदी युगीन कवियों ने सामाजिक कु-रीतियों पर कुठाराघात किए तथा समाज को एक नई

दिशा दिखाने का प्रयत्न किया। कवियों ने अपनी कटु एवं तीखी आलोचनाओं से समाज में व्याप्त अन्धकार को बेधने का अकथ सृजन किया। इन विचारों के सृजन से समाज में नवीन उथल-पुथल-सी मच गई। द्विवेदी युग के कवियों ने भारतेन्दु युगीन कवियों की तरह समाज के समस्त अंगों पर कलम नहीं चलाई। उन्होंने समाज से प्रभाव ग्रहण कर सकने वाले विषयों पर ही लेखनी उठाई है।

द्विवेदी जी का भाषा एवं व्याकरण परिष्कार; द्विवेदी जी ने अपने समय की अव्यवस्थित और असंयत भाषा को व्यवस्थित किया। उस समय भाषा लिखने में स्वेच्छा का प्रयोग होता था। तथा वाक्य-गठन भी त्रुटिपूर्ण था अत: पाठकों को भाषा समझाने में कठिनाई होती थी। द्विवेदी जी ने सहज और सरल भाषा लिखने पर जोर दिया। द्विवेदी जी का कथन था, ''कवि को ऐसी भाषा लिखनी चाहिये जिसे सब कोई सहज ही समझ ले और अर्थ को हृदयंगम कर सकें। .....जो कुछ लिखा जाता है वह इसी अभिप्राय से लिखा जाता है कि लेखक का हृदयगत भाव दूसरे समझ जायँ। .....अतएव क्लिष्ट की अपेक्षा सरल दिखना ही सब प्रकार से वाञ्छनीय है।''

द्विवेदी जी ने भाषा में मुहावरों के प्रयोग पर भी जोर दिया। उन्होंने कहा कि ''मुहावरे का भी विचार रखना चाहिये। बेमुहाविरा भाषा अच्छी नहीं लगती। क्रोध क्षमा कीजिए' इत्यादि वाक्य कान को अतिशय पीड़ा पहुँचाते हैं। मुहाविरा ही भाषा का प्राण है, उसे जिसने नहीं जाना, उसने कुछ नहीं जाना उसकी भाषा कदापि आदरणीय नहीं हो सकती।''

द्विवेदी जी ने विषयानुकूल भाषा प्रयोग करने के लिये कहा। उन्होंने कविता को एक अपूर्व रसायन' माना और कहा कि काव्य रूपी रस की रक्षा के लिये हमें यथोचित शब्दों का प्रयोग करना चाहिये।[७]

द्विवेदी जी के समय गद्य और पद्य की भाषा अलग-अलग थी। काव्य के क्षेत्र में ब्रज का एक छत्र राज्य था। ऐसी स्थिति में द्विवेदी जी ने यह घोषणा की कि गद्य और पद्य की भाषा एक होनी चाहिए। उन्होंने कहा कि, ''गद्य और पद्य की भाषा पृथक्-पृथक् न होनी चाहिये। .....सभ्य समाज की जो भाषा हो उसी भाषा में गद्य पद्यात्मक साहित्य होना चाहिये।''[८] दोनों में खड़ी बोली का प्रयोग हो इस प्रकार द्विवेदी जी ने हिन्दी साहित्य में भाषा विषयक एक नये युग का द्वार खोला।

द्विवेदी जी के समय में भाषा लिखने में व्याकरण के नियमों की अवहेलना की जाती थी। लेखक अपनी-अपनी इच्छा के अनुकूल शब्दों का प्रयोग करते थे। इसीलिये बहुत से गढ़े हुए अशुद्ध शब्दों का प्रयोग होता था। शब्दों के प्रयोग में अराजकता फैली हुई थी। द्विवेदी जी ने व्याकरण सम्मत और शुद्ध भाषा लिखने पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि, ''कविता लिखने में व्याकरण के नियमों की अवहेलना न करनी चाहिये। शुद्ध भाषा का जितना मान होता है अशुद्ध का उतना नहीं होता। व्याकरण का विचार न करना कवि की तद्विषयक अज्ञता का सूचक है। कोई[९] कवि व्याकरण के नियमों की ओर दृष्टिपात तक नहीं करते। यह बड़े खेद और लज्जा की बात है। ब्रजभाषा की कविता में कवि जन मनमानी निरंकुशता दिखलाते हैं। यह उचित नहीं जहाँ तक सम्भव हो शब्दों के मूल रूप न बिगड़ने चाहिये।[१०] इस प्रकार द्विवेदी जी ने उच्छृंखलित भाषा को व्याकरण सम्मत एक साँचा प्रदान किया और शुद्ध भाषा लिखने का एक प्रतिमान स्थिर किया।

द्विवेदी जी का छन्द परिष्कार; छन्द की परिभाषा देते हुए द्विवेदी जी ने कहा, ''जिन पंक्तियों में वर्णों या मात्राओं की संख्या नियमित होती है, वे छन्द कहलाती हैं।[११]

द्विवेदी जी ने छन्द सम्बन्धी भी निर्देश किये। उन्होंने कहा कि कवियों को विषयानुकूल छन्द योजना करना चाहिये। ''जैसे समय विशेष में राग विशेष के गाये जाने से चित्त अधिक चमकृत होता है वैसे ही वर्णन के अनुकूल वृत्त प्रयोग करने से कविता का आस्वादन करने वालों को अधिक आनन्द मिलता है।''[१२]

द्विवेदी जी ने छन्द सम्बन्धी दूसरा निर्देश यह किया कि चूँकि आज के प्रयुक्त छन्दों में एक विघटनकारी तत्व आ गया है। छन्दों का पिष्टपेषण होने लगा है इसलिये हमें नया छन्द विधान करना चाहिये। छन्दों के प्रयोग

में नवीनता लाना चाहिये उन्होंने संस्कृत काव्यों में प्रयोग किये गये वृत्तों को अपनाने की ओर कवियों का ध्यान आकृष्ट किया। दोहा, चौपाई, सोरठा, घनाक्षरी, छप्पय और सवैये आदि का प्रयोग हिन्दी में बहुत हो चुका। कवियों को चाहिये कि यदि वे लिख सकते हैं तो इनके अतिरिक्त और छन्द भी लिखा करें। हम यह नहीं कहते कि ये छन्द नितान्त परित्यक्त ही कर दिये जाँय। हमारा अभिप्राय यह है कि इनके साथ-साथ संस्कृत काव्यों में प्रयोग किये गये वृत्तों में से दो चार उत्तमोत्तम वृत्तों का भी प्रचार हिन्दी में किया जाय। इन वृत्तों में से द्रुतविलम्बित, वंशस्थ और बसंततिलता आदि वृत्त ऐसे हैं जिनका प्रचार हिन्दी में होने से हिन्दी काव्य की विशेष शोभा बढ़ेगी।[१]

द्विवेदी जी ने छंद संबंधी यह भी निर्देश किया कि यदि कोई कवि नाना प्रकार के छन्दों का प्रयोग सफलता पूर्वक नहीं कर सकता है तो उसे एक ही छंद के प्रयोग में कौशल दिखलाना चाहिये। उन्होंने भारवि, कालिदास, रत्नाकर आदि को इस बात में प्रमाण स्वरूप बताया। उन्होंने यह भी कहा कि अनुप्रासहीन छन्द का भी प्रयोग करना चाहिये तथा विनातुक वाली भी कविता लिखी जाय। पादान्त में अनुप्रासहीन छंद भी हिन्दी में लिखे जाने चाहिये। ..... अनुप्रासहीन या बिना तुकवाली कविता के लिखने अथवा सुनने का अभ्यास होते ही वह भी अच्छी लगने लगेगी। अनुप्रास और यमक आदि शब्दाडम्बर कविता के आधार नहीं हो उनके न होने से कविता निर्जीव हो जाय।..... कविता का अच्छा और बुरा होना विशेषत: अच्छे अर्थ और रस बाहुल्य पर अवलम्बित है।..... हमारा यह मतलब नहीं कि पदान्त में अनुप्रास वाले छन्द लिखे ही न जाया करें। हमारा कहना इतना ही है कि इस प्रकार के छन्दों के साथ अनुप्रासहीन छंद भी लिखे जायँ।''[१४] इस प्रकार द्विवेदी जी को हम अतुकान्त कविता लिखने का प्रथम समर्थक मान सकते हैं। यद्यपि उन्होंने इस बात पर बहुत अधिक जोर नहीं दिया कि अनुप्रासहीन छन्द लिखे ही जायँ।

इस प्रकार द्विवेदी जी ने छन्दों के प्रयोग में एक नवीन दृष्टकोण प्रस्तुत किया।

शब्दार्थ सम्बन्धी विचारधारा

द्विवेदी जी ने कविता में अर्थ सौरस्य को ही प्रधानता दी। उन्होंने उसे कविता का 'प्राण' कहा। द्विवेदी जी के अनुसार जिस पद्य में अर्थ का चमत्कार नहीं, वह कविता ही नहीं।[१५]

उन्होंने अर्थ सौरस्य लाने के लिये यह निर्देश किया कि कवि को अपने विषय से तादात्म्य कर लेना चाहिये। बलात् किसी अर्थ को लाने की चेष्टा न करनी चाहिये। कवि को चाहिये कि वह अपनी कविता में 'शक्तिमान शब्दों' का प्रयोग करे। 'कवि जिस विषय का वर्णन करे उस विषय से उसका तादात्म्य हो जाना चाहिये। ऐसा न होने से अर्थ सौरस्य नहीं आ सकता। .....कविता करने में, हमारी समझ में अलंकारों को बलात् लाने का प्रयत्न न करना चाहिये। विषय वर्णन के झोके में जो कुछ मुँह से निकले उसे ही रहने देना चाहिये। बलात् किसी अर्थ के लाने की चेष्टा करने की अपेक्षा प्रकृति भाव से जो कुछ आ जाय उसे ही पथ बद्ध कर देना अधिक सरस और आह्लादकारक होता है। अपने मनोनीत अर्थ को इस प्रकार व्यक्त करना चाहिये कि पद्य पढ़ते ही पढ़ने वाले उसे तत्क्षण हृदयंगम कर सकें, क्लिष्ट कल्पना अथवा सोच-विचार करने की आवश्यकता न पड़े। अर्थसौरस्य के लिये..... शक्तिमान शब्दों का प्रयोग करना चाहिये।[१६]

काव्य संबंधी विचारधार

उन्होंने कविता में शब्दाडम्बर को त्याज्य बतलाया। उन्होंने प्रवृत्त और उपयुक्त शब्दों के प्रयोग पर बल दिया। अर्थ सौरस्य ही की ओर कवियों का ध्यान अधिक होना चाहिए, शब्दों के आडम्बर की ओर नहीं। अर्थ हीन अथवा अनुपयोगी शब्द न लिखे जाने चाहिये और न शब्दों के प्रकृत रूप को बिगाड़ना ही चाहिये।'[१७]

अश्लीलतापूर्ण और ग्राम्य दोष से युक्त अर्थों से कविता को बचाने का निर्देश किया। उन्होंने कविता में रस को प्रमुख माना। 'अश्लीलता और ग्राम्यता गर्भित अर्थों से कविता को कभी न दूषित करना चाहिये और न देश, काल तथा लोक आदि के विह्वद्ध कोई बात कहनी चाहिये। कविता को सरस बनाने का प्रयत्न करना चाहिये। रस ही कविता का सबसे बड़ा गुण है।[१८]

द्विवेदी जी ने निर्देश किया कि कविता के विषय उपदेशजनक तथा आदर्शमूलक होना चाहिये। उन्होंने रीतिकालीन काव्यगत विषयों की बहुत निन्दा की। द्विवेदी जी ने कहा कि हमें आदर्शात्मक चरित्रों को लेकर साहित्य रचना करना चाहिये। 'कविता का विषय मनोरंजक और उपदेशजनक होना चाहिये। यमुना किनारे केलि कौतूहल का अद्भुत वर्णन बहुत हो चुका। न परकीया पर प्रबंध लिखने की अब कोई आवश्यकता है और न स्वकीयाओं के गतागत की पहेली बुझाने की। .....नायिकाओं के भी झगड़े में उलझने से हानि के अतिरिक्त लाभ की कोई सम्भावना नहीं। हिन्दी काव्य की हीन दशा को देखकर कवियों को चाहिये कि वे अपनी विद्या, अपनी बुद्धि और प्रतिभा का दुरुपयोग इस प्रकार के ग्रंथ लिखने में न करें। अच्छे काव्य लिखने का उन्हें प्रयत्न करना चाहिये। अलंकार, रस और नायिका निरूपण बहुत हो चुका है।'[१९]

द्विवेदी जी ने यह भी निर्देश किया कि कवि को कविता लिखने के समय एक महान उद्देश्य सामने रखना चाहिये। उन्होंने 'कला के लिये कला' (Art for the Sake of Art) वाले सिद्धान्त का घोर विरोध किया।[२०] आचार्य द्विवेदी का कहना था कि 'गद्य और पद्य' दोनों ही में कविता हो सकती है। कविता का लक्षण जहाँ कहीं पाया जाय चाहे वह गद्य में हो चाहे पद्य में, वही काव्य है।'[२१]

द्विवेदी जी ने कविता को एक नया और निश्चित मार्ग दिखाया। उन्होंने उसमें सामयिकता और उपयोगिता का समावेश किया। उस समय कविता की दशा अत्यन्त दयनीय थी। इसी बात को प्रकट करते हुए द्विवेदी जी ने लिखा था- ''सुरम्यरूपे रसराशि-रंजिते। विचित्र वर्णाभरणे कहाँ गई?/ अलौकिकानंद विधायी महा/ कवीन्द्र-कान्ते! कविते! अहो कहाँ?''

कविता को इस दयनीय अवस्था से प्रकाश में लाने का श्रेय द्विवेदी जी को है- द्विवेदी जी ने कविता का उद्देश्य आनन्द के साथ-साथ उपदेश देना भी माना। क्योंकि द्विवेदी आदर्शवादी साहित्यिक नेता थे। 'कविता ने एक प्रान्त भाषा का जीर्ण वस्त्र उतार कर लोक भाषा, राष्ट्र भाषा का परिधान पहन लिया और अपना बाह्य रूप परिवर्तन कर लिया।'[२२]

द्विवेदी जी ने मिल्टन का उदाहरण देते हुए तीन गुण आवश्यक मानें- 'अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि मिल्टन ने कविता के तीन गुण वर्णन किये हैं। उनकी राय में कविता सादी हो, शब्दाडम्बर दूरूहता और गूढ़ता से दूर अर्थात् प्रसाद गुण से युक्त जोश से भरी और असलियत से गिरी न हो। 'द्विवेदी जी कविता का वह रूप चाहते थे जो शिक्षितों के साथ-साथ साधारण लोगों को भी ग्राह्य हो।

साहित्य का सामाजिक पक्ष

आचार्य द्विवेदी में तीन दृष्टियाँ प्रमुख थीं- नीतिपरक, आदर्शमूलक और सुधारवादी। द्विवेदी जी केवल रचनाकार नहीं थे साहित्यिक नेता भी थे। वे साहित्यकार की अपेक्षा, साहित्यिक नेता अधिक थे। वे तत्कालीन समाज के साहित्यिक वातावरण में एक युगान्तर उपस्थित करना चाहते थे। वे समाज का सांस्कृतिक और राष्ट्रीय उन्नयन चाहते थे। उस समाज उच्छृंखलित हो गया था अत: द्विवेदी जी नैतिक वातावरण लाना चाहते थे। उनकी नैतिकता धर्म की भूमिका पर प्रतिष्ठित नहीं थी। उसकी भूमिका अधिक सांस्कृतिक और राष्ट्रीय थी। उनकी नैतिकता का अर्थ धर्मानुशासन नहीं था। वे प्राचीन संस्कृति का आधार लेकर सांस्कृतिक चेतना लाना चाहते थे। वे हिन्दू संस्कृति को व्यापक रूप देना चाहते थे।

सम्पादक महावीर प्रसाद द्विवेदी

सन् १९०३ ई० में द्विवेदी जी 'सरस्वती' के सम्पादक बने। द्विवेदी जी के पहले डॉ० श्यामसुन्दरदास उसके सम्पादक थे। द्विवेदी जी ने सम्पादन कार्य का वहन बड़ी योग्यता और सफलता से किया। यही कारण है कि द्विवेदी जी के सम्पादन काल में 'सदस्वती' खूब फूली फली। उस समय की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका 'सरस्वती' ही थी। द्विवेदी जी लेखों के संशोधन में बड़ा परिश्रम करते थे। वे लेखों को आद्यन्त पढ़ते थे। जहाँ कहीं त्रुटि होती, पेंसिल से निशान लगाकर शुद्ध कर दिया करते थे। यहाँ तक कि कभी-कभी कविता का काया-कल्प ही कर देते थे। उनके द्वारा संशोधित किये लेख नागरी प्रचारिणी सभा, काशी में सुरक्षित हैं। द्विवेदी जी जिन रचनाओं को प्रकाशित करने योग्य समझते थे उन्हीं को प्रकाशित करते थे। अस्वीकृत रचनाओं के दोषों को स्पष्ट करते हुये लेखकों को पत्र लिखते थे। ग्रंथनिर्देश भी कर देते थे। इस प्रकार एक सहृदय सम्पादक का सा उनका व्यवहार लेखकों के प्रति था।

समीक्षक महावीर प्रसाद द्विवेदी

द्विवेदी जी का व्यक्तित्व असाधारण था। वे अनेक विषयों में दिलचस्पी रखते थे। इसीलिये वे विभिन्न विषयक धर्म सम्बन्धी पुस्तकों जैसी 'धर्म विवाद', 'सन्तति शास्त्र' सम्बन्धी पुस्तकों जैसे 'मानव संततिशस्त्र' भक्ति सम्बन्धी पुस्तकों जैसे- भक्ति रत्नावलि 'जीवन चरित्र सम्बन्धी पुस्तकों जैसे भारत भारती का प्रकाशन' आदि पर समरीक्षायें लिखीं। द्विवेदी जी की प्रतिभा बहुमुखी थी इसीलिए उन्होंने सभी क्षेत्रों में अपनी कलम चलाई जो आज भी द्विवेदी कलम के नाम से प्रसिद्ध है। समीक्षक महावीर प्रसाद द्विवेदी में आलोचना की समस्त पद्धतियाँ विद्यमान थी।

निबन्धकार महावीर प्रसाद द्विवेदी

आचार्य द्विवेदी जी के निबन्धों के सभी संकलनों में विषयों का आश्चर्यजनक वैविध्य दीख पड़ता है। इतने अधिक विषयों पर एक ही समय में लेखनी दौड़ानेवाला निबन्धकार हिन्दी में दूसरा नहीं हुआ। हिन्दी-साहित्य को समृद्ध करना ही इस प्रसंग में उनका लक्ष्य रहा। डॉ० ओंकारनाथ शर्मा ने ठीक ही लिखा है- ''निबन्ध-रचना के मूल में द्विवेदीजी की एकाधिक विचार-दृष्टियाँ रही हैं। सबसे प्रमुख दृष्टि हैं- हिन्दी के ज्ञान-भण्डार को समृद्ध करना। .....द्विवेदीजी ने स्वदेशी और विदेशी भाषाओं से, विशेषकर प्राचीन संस्कृति-परिपाटी से ज्ञान के विविध तथ्यों का आँकलन किया। इसे हम संग्रहात्मक दृष्टि कह सकते हैं।''[२३]

इसी संग्रहात्मक दृष्टि ने द्विवेदीजी के निबन्धों को कई नये-पुराने विषयों से सम्पन्न कर दिया है। विविधता के कारण उनके निबन्धों को विषय की दृष्टि से अनेक विभाजन हो सकते हैं; जैसे साहित्यिक, चरित्रप्रधान, वैज्ञानिक, ऐतिहासिक एवं पुरातत्त्व-विषयक, आध्यात्मिक आदि। द्विवेदीजी के निबन्ध-संकलनों में इन सभी विषयों का अलग-अलग अथवा मिश्रित समाहार मिलता है।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का प्रभाव तत्कालीन युग साहित्य और जीवन पर पड़ा। आप सचमुच अपने युग के श्रेष्ठतम आचार्य थे। उन्होंने समाज और साहित्य को नया मार्ग दिखाया। उन्होंने एक कर्मठ, कुशल, सत्यशील और जागरूक नेता की भाँति कार्य किया और अपनी अपूर्व क्रियाशक्ति द्वारा मार्ग प्रदर्शन का गुरुतर कार्य सम्पन्न किया। तत्कालीन जीवन और साहित्य को ऐसे युग प्रवर्तक व्यक्तित्व की ही आवश्यकता थी। द्विवेदी जी के पदार्पण से तत्कालीन जीवन और साहित्य आलोकित हो उठा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

[१]डॉ० रामकुमार वर्मा- *हिन्दी साहित्य का इतिहास,* पृष्ठ संख्या ३१६

[२]*हमारे लेखक,* राजेन्द्र सिंह गौड़

[३]*अपरिपक्व हिन्दी गद्य की दशा शोचनीय थी। .....वह हिन्दी का संकटकाल था।* डॉ० उदयभानु सिंह, महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग, पृष्ठ संख्या ३०

[४]*हमारे लेखक,* राजेन्द्रसिंह गौड़।

[५]*रसज्ञरंजन*-आचार्य द्विवेदी, पृष्ठ संख्या १४

[६]*वही,* पृष्ठ संख्या १४

[७]*वही,* पृष्ठ संख्या १४

[८]*रसज्ञरंजन,* पृष्ठ संख्या १६

[९]*वही,* पृष्ठ संख्या १४

[१०]*रसज्ञरंजन,* पृष्ठ संख्या १४

[११]*वही,* पृष्ठ संख्या ११

[१२]*वही,* पृष्ठ संख्या ११

[१३]*वही,* पृष्ठ संख्या १२

[१४]*'रसज्ञ रंजन'*- आचार्य द्विवेदी, पृष्ठ संख्या १३-१४

[१५]*''अर्थ सौरभ ही कविता का प्राण है जिस पद्य में अर्थ का चमत्कार नहीं, वह कविता नहीं।''*- रसज्ञरंजन, पृष्ठ संख्या १८

[१६]*वही,* वही।

[१७]*रसज्ञरंजन,* पृष्ठ संख्या १८

[१८]*वही,* पृष्ठ संख्या १९

[१९]*वही,* पृष्ठ संख्या १९-२१

[२०]*''कविता लिखते समय कवि के सामने एक ऊँचा उद्देश्य अवश्य होना चाहिये। केवल कविता के लिये कविता करना एक तमाशा है।''* रसज्ञरंजन, पृष्ठ संख्या २४

[२१]*''कविता लिखते समय कवि के सामने एक ऊँचा उद्देश्य अवश्य होना चाहिये। केवल कविता के लिये कविता करना एक तमाशा है।''* रसज्ञरंजन, पृष्ठ संख्या १०

[२२]*हिन्दी कविता में युगान्तर*- डॉ० सुधीन्द्र, पृष्ठ संख्या ६१

[२३]डॉ० ओंकारनाथ शर्मा- *'हिन्दी-निबन्ध का विकास',* पृष्ठ संख्या १५०

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,17-22**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 06 दिसम्बर 2016

पारिभाषिक शब्दावली और प्रयुक्ति की समस्यायें

डॉ0 रमा पद्मजा वेदुला*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *पारिभाषिक शब्दावली और प्रयुक्ति की समस्यायें* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र की लेखिका मै रमा पद्मजा वेदुला घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इस छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध प्रपत्र आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

प्रशासन ज्ञान विज्ञान की विभिन्न शाखाओं-प्रशाखाओं की अपनी-अपनी विशिष्ट शब्दावली होती है जिसे पारिभाषिक शब्दावली कहते हैं।

पारिभाषिक शब्द से तात्पर्य

पारिभाषिक शब्द का अंग्रेजी के *टेक्नीकल* से हुई है। फादर कामिक बुल्के ने *एन इग्लीश हिन्दी डिक्शनरी* में इनके अर्थ की चर्चा करते हुए लिखा है- *आफ ए पर्टीक्यूलर आर्ट, साइन्स, क्राफ्ट एण्ड एबाऊट आर्ट* अर्थात् एक विलक्षण कला, विज्ञान, शिल्प अथवा कला के लिए। पारिभाषिक शब्द के साथ तकनीक शब्द भी जुड़ गया है। प्रसिद्ध विद्वान *रेण्डम हाउस ने* भी पारिभाषिक शब्द को विज्ञान और कला विषय की तकनीकी अभिव्यक्ति के लिये विशिष्ट कला के रूप में स्वीकारते हैं। प्रसिद्ध भारतीय विद्वान डॉ० रघुवीर का मंतव्य है *पारिभाषिक शब्द सीमाबद्ध होते हैं शेष सामान्य।* डॉ० भोलानाथ तिवारी के अनुसार, *वे शब्द पारिभाषिक होते हैं जो रसायन, भौतिकी, दर्शन, राजनीति आदि विभिन्न विज्ञानों या शास्त्रों से सम्बद्ध है और जिनसे विशिष्ट अर्थ का बोध होता है।*

प्रयुक्ति की भाषा शैली का निर्धारण

हिन्दी के विभिन्न प्रयुक्तियों के विकास के लिए आवश्यक सामग्री संस्कृत से ली ला रही है। यही कारण है कि आज भी हिन्दी की प्रयुक्तिपरक भाषा बोझिल, कृत्रिम और पण्डिताऊ समझी जाती है, इसलिए सामाजिक दृष्टि से यह भाषा अधिक लोकप्रिय नहीं हो पाई है। इसके साथ ही हिन्दी में प्रयुक्त भाषा के विकास में कई

* हिन्दी विभाग, आचार्य नागार्जुन विश्वविद्यालय, गुनटूर (आन्ध्र प्रदेश) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक 2017, एम0पी0ए0एस0वी0ओ0 मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहासंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

कठिनाई भी पाई जाती है। कुछ विद्वानों का मत है कि हिन्दी में प्रयुक्तियों का विकास लोकवादी प्रवृत्तियों (हिन्दुस्तानी) के आधार पर हो। इस दृष्टि के अनुसार यदि व्यवसायिक हिन्दी के शब्दों को लें तो उनके अनुसार संविदा के स्थान पर 'करार', 'ऋणमुक्ति' के स्थान पर 'भुगतान : क्रमबन्धन के स्थान पर दजबिन्दी को महत्व दिया जाना चाहिये। तीसरा वर्ग यह चाहता है कि हिन्दी प्रयुक्ति की भाषा में अंग्रेजी के शब्द यथावत् ले लिया जाये जैसे उपरोक्त शब्दों की जगह 'एग्रीमेंट', 'एक्वेटेंक ग्रेडिंग' आदि प्रयुक्ति क्षेत्र की शब्दावली एवं वाक्य विन्यास के विकास के लिये भाषा के प्रयोक्ता उस भाषा की विभिन्न प्रयुक्तियों और संरचना द्वारा बाधित प्रभावित रहते हैं।

प्रयुक्तियों की संरचना

प्रयुक्तियों की संरचना इतनी स्पष्ट हो गई है कि हम उनके प्रयोग के द्वारा ही यह स्पष्ट बता सकते हैं कि यह प्रशासनिक क्षेत्र हिन्दी है। यह विधि के क्षेत्र की हिन्दी, यह बैंक में प्रयुक्त हिन्दी है। यह खेलकूद के क्षेत्र की हिन्दी है, यह व्यवसायिक हिन्दी है या साहित्यिक हिन्दी है यही कारण है कि रजिस्टर की संकल्पना के प्रारम्भकर्ता हैलिडे महोदय ने स्पष्ट शब्दों में इसे विषय क्षेत्र 'फील्ड आफ डिस्कोर्स' की संज्ञा दी है।

प्रशासनिक क्षेत्र या कार्यालयीन हिन्दी की प्रयुवित

हिन्दी भाषा की अत्यन्त सर्वोपयोगी प्रयुवित कायलियी प्रयोग/ प्रयुवित कहें तो अत्युक्ति न होगी। अद्यतन, अप्रेषण, पर्यवेक्षण, मिसिल एवजी, आवक-जावक, अभ्यर्थी, अनुमोदन शब्दों का प्रयोग कार्यालयीन हिन्दी में होता है अन्य क्षेत्र में नहीं। यहाँ एक विषय के संदर्भ में एक शब्द का एक ही निश्चिय अर्थ होता है चाहे सामान्य शब्द में दो-तीन शब्द एक ही अर्थ क्यों न प्रयुक्त होते हों।

कानून एवं विधि की भाषा प्रयुक्ति

यह अपने में अलग प्रयुक्त है। इसमें विशिष्ट पर विन्यास लम्बे और संयुक्त वाक्य-रचना, कानूनी प्रक्रिया की अन्विति आदि प्रमुख रूप से पाई जाती है। इसका स्वरूप अत्यन्त तकनीकी होने के कारण और इसका सम्बन्ध कानूनी प्रक्रिया से जुड़े होने के कारण जन-सामान्य के लिये जटिल और दुरूह प्रतीत होता है; उदाहरण -

अभियोग -Charge	अभियोजन -Prosecution
धारा -Section	खण्ड -Clause
आदेश -Mandate	अध्यादेश -Ordinance

वैज्ञानिक एवं तकनीकी भाषा की प्रयुक्ति

विज्ञान एवं तकनीकी क्षेत्रों में अनुपयुक्त हिन्दी, विज्ञान के संदर्भ एवं प्रसंग में पारिभाषित और एकार्थी होते हैं। इस भाषा प्रयुक्ति ने यह सिद्ध कर दिया है कि हिन्दी भाषा न केवल साहित्य और प्रशासन का प्रभावी माध्यम है बल्कि वैज्ञानिक एवं तकनीकी विषय वस्तु को सुसंगठित एवं सुव्यवस्थित रूप में प्रयुक्त करने का सशक्त साधन है; उदाहरण -

हवेनिकी -acousties	अनुवांशिक -Jenetie
पारिस्थितिकी -Ecology	कोशिका -Cell
जड़त्व -Incrtia	सूक्ष्म तरंग-Microwave

वाणिज्यिक प्रयुवित

इस प्रयुक्ति के अन्तर्गत व्यापार, वाणिज्य, व्यवसाय, परिवहन, शेयर बाजार, बीमा बैंकिंग तथा आयात-निर्यात क्षेत्रों का समावेश किया जा रहा है। यह प्रयुक्ति कायलियी प्रयुवित के बाद दूसरी महत्वपूर्ण प्रयुक्ति मानी जाती है -

उतराई -Unloading	लदान -Loading
औसत -Average	पुष्टि -Confirm
निरस्त -Cancel	घटक-Shortage

विज्ञापन भाषा प्रयुक्ति

वाणिज्यिक क्षेत्र की प्रगति विज्ञापन पर निर्भर है और आज विज्ञापन का क्षेत्र बहुत तेजी से उभर रहा है और उसकी भाषा प्रयुक्ति भी उतनी ही तीव्र गति से महत्वपूर्ण आकर्षक एवं प्रचुर मात्रा में निकल रही है। जनसंचार माध्यमों के विकास के साथ-साथ विज्ञापन की भाषा का विशिष्ट रूप अधिक उभरने लगा है।

पत्रकारिता की भाषा एवं प्रयुक्ति

कश्मीर में सामान्य स्थिति की बहाली के लिये योजना।

शिमला समझौता के तहत् पाक से वार्ता

पेट्रोल की कीमतों में २५ प्रतिशत वृद्धि के कारण जीवनावश्यक चीजों के दाम आकाश छूने लगेंगे।

खेलकूद की प्रयुक्ति

इस क्षेत्र में हर खेल से सम्बन्धित विशिष्ट प्रवृत्तियों का प्रयोग होता है खिलाड़ी और खेलकूद में रूचि रखने वाले ही इसे समझ सकते हैं, उदाहरण -सलामी बल्लेबाज, साझेदारी, पारी, चौक्का, छक्का।

बैंकिंग प्रयुक्ति

स्वतंत्रता के बाद बैंक का कार्यक्षेत्र विस्तृत होता जा रहा है और ग्राहकों के साथ सम्पर्क अधिक होता जा रहा है, उदाहरण-

प्रतिभूति -Security	वैध मुद्रा -Kgal Tender
सामान्य दर -Blanket Rate	खाता -Account

पारिभाषिक शब्दावली बनाते समय यह बात मुख्य रूप से ध्यान में रखनी चाहिये कि इन शब्दों को भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक सभी भारतीय भाषाओं में प्रुयक्त किया जाएगा ऐसी स्थिति में सटीक अर्थ, उर्वरता तथा सुगम उच्चारण के लिये निम्न लिखित बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है।

पारिभाषिक शब्दावली की प्रयुक्ति में समस्यायें एवं समाधान

१. पारिभाषिक शब्दावली में अर्थ की दृष्टि से स्पष्टता, सुबोधता एवं सुनिश्चिततता होनी चाहिये। उसमें अव्यारित तथा अतिव्याप्ति- दोष नहीं होना चाहिये ताकि इसे ग्रहण करने में किसी भी प्रकार का संदेह या भ्रम न

हो।

२. एक शास्त्र या विज्ञान में एक शब्द का एक ही अर्थ होना चाहिये और दूसरी ओर एक भाव अथवा विचार या पदार्थ के लिये एक ही शब्द होना चाहिये।
३. मूल पारिभाषिक शब्द ऐसे होने चाहिये जिसमें उपसर्ग प्रत्यय आदि की सहायता से अपेक्षित अन्य संज्ञा विश्लेषण, क्रिया विशेषण आदि शब्द सरलता से बनाए जा सके अर्थात् उनमें अपेक्षित उर्वरता हो।
४. वे ध्वन्यात्मक एवं अर्थ की दृष्टि से ऐसे होने चाहिये जो सभी भाषाओं द्वारा सरलता एवं स्पष्टतापूर्वक प्रयुक्त हो सके।

भारत में पारिभाषिक शब्दों के निर्माण के प्रयत्न समय-समय पर होते रहे हैं, यह बात दूसरी है कि कभी संस्कृत शब्दावली निर्माण की बात आई तो कभी फारसी, अरबी, अंग्रेजी दिखलाई दिया, किन्तु स्वतंत्रता के बाद भारत की राजभाषा घोषित की गई। संविधान के अनुच्छेद ३४४ (१) के अन्तर्गत १९५५ में गठित राजभाषा आयोग की सिफारिश पर निर्मित संसदीय समीति रिपोर्ट पर १९६० में राष्ट्रपति के आदेशानुसार हिन्दी वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली के निर्माण के लिये १९६१ में स्वतंत्रत आयोग का गठन होने पर पारिभाषिक शब्दावली के क्षेत्र में गतिशीलता आई।

आयोग के गठन के लगभग ३५ वर्ष पूर्ण हो जाने पर भी हिन्दी पारिभाषिक कोश अभी उचित उपयोग की प्रतीक्षा कर रहे हैं दूसरी ओर यह ढिंढोरा पीटा जा रहा है कि तकनीकी, वैज्ञानिक शब्दावली का हिन्दी में अभाव है जिसके कारण हिन्दी का प्रयोग अनिवार्य नहीं किया जा सकता है। प्रश्न यह उठता है कि क्या वस्तुस्थिति यही है? या राजनीति समीकरण अफवाह फैला रहे हैं? प्रथम प्रश्न के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि हम काफी हद तक अपने लक्ष्य के करीब पहुँच रहे हैं किन्तु व्यवहारिक जगत में स्पष्ट छवि नहीं दिखलाई देती इनके कारणों को मुख्यतः दो भागों में बांटा जा सकता है प्रथम काल्पनिक और द्वितीय सैद्धान्तिक-काल्पनिक से तात्पर्य उन कारणों से है जिनके पीछे कोई ठोस आधार नहीं है अपितु राजनीति से प्रभावित अंग्रेजी पिट्ठू लोग हिन्दी पारिभाषिकों को व्यवहारिक बनाने के लिए बाधक बने हुए है, ऐसे लोग पारिभाषिक शब्दावली पर यह आरोप लगाते हैं कि यह शब्दावली अत्यन्त दुरूह है इसके उच्चारण में परेशानी होती है इनकी अपेक्षा अंग्रेजी शब्दावली सरल एवं बोधगम्य है।

पारिभाषिक शब्दों की अर्थ व्यंजनागत समस्या

शब्दों का निर्धारित अर्थ ही प्रयोग और ग्राह्यता का आधार होता है। शब्द की अर्थसंगत व्यंजना ही अनुवाद कार्य में अनुपयुक्त होती है अर्थात् स्त्रोत भाषा की किसी और भाषा से समानार्थक शब्द प्रतिपादित करने में कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। प्रसंगवश यह उल्लेखनीय है कि हिन्दी में स्पष्टता, अस्पष्टता तथा भाषिक कोशगत और भावात्मक शब्दों को स्वीकारने में या त्यागने में कई समस्यायें सामने आती हैं।

समस्त्रोतीय एवं भिन्न स्त्रोतीय शब्दों की अस्पष्टता की समस्या

कार्यालयों में जितने भी कामकाजी हिन्दी शब्द प्रयुक्त हो रहे हैं वे सभी अंग्रेजी स्त्रोत से उन्हीं अर्थों में अभिकल्पित है कई सन्दर्भों में उनमें भारतीयता की अभिव्यक्ति लाने की कोशिश की गई है, फिर भी स्त्रोत भाषीय एक ही उपसर्ग या प्रत्यय के प्रति हिन्दी में भी एक ही उपसर्ग या प्रत्यय का प्रयोग करने में अस्पष्टता है। वहीं अंग्रेजी अर्थ-स्थापित करने के लिए हिन्दी में विभिन्न उपसर्गों, प्रत्ययों का सहारा लेना पड़ा, उदाहरण -Non अंग्रेजी उपसर्ग का अर्थ लाने में 'अ', 'अन' गैर इतर, रहित, निर, बाह्य, वि, इत्यादि उपसर्ग/ प्रयुक्त हैं।

Non availability - अनुपलब्धता (अन्) Non aggressive - अनाक्रामक (अन)

Non accaptance - अस्वीकार (अ)
Non Banlcing - अबैंकीय (स)
Non appearance - गैरहाजिरी (गैर/ अन्)
Non aggricultune - कृषितर (इतर)

उपर्युक्त विभिन्न उपसर्ग/ प्रत्यय संदर्भानुसार तथा शब्द की अर्थव्यंजना के अनुसार विविध रूपों में प्रयुक्त है। इस कारण से कौन सा उपसर्ग/ प्रत्यय कौन से मूल शब्द के लिये प्रयुक्त करना है, इसमें कोई स्पष्ट या निर्धारित व्यवस्था नहीं बनी है। संस्कृत स्त्रोतीय उपसर्ग भी प्रयुक्त हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय शब्दों की स्वीकृति की समस्या

शब्दावली संरचना के सिद्धान्तों में आयोग ने निम्नोक्त प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय शब्दों को हूबहू स्वीकृत करने की नीति अपनाई अर्थात् उनके मूल रूप की देवनागरी में लिप्यन्तरित (Transliteralion) कर लिखा जाता है। उदाहरण -तत्त्वों, यौगिकों के नाम : हाइड्रोजन, कार्बन डाई ऑक्साइड, क्रेमिन, यूरेनियम, प्लेटिनम।

देशीय शब्दों की स्वीकृति की समस्या

देशी शब्द जो सामान्य प्रयोग के पारिभाषिक शब्दों के स्थान पर भारतीय भाषाओं जैसे (हिन्दी) में प्रचलित हो गए हैं- *Telegraph* के लिए 'तार', *Continenl* के लिए 'महाद्वीप', *Post* के लिए 'डाक' इसी रूप में व्यवहार में लाए जाने चाहिये। कुछ देशी शब्द जो पारिभाषिक शब्दों के रूप में प्रयुक्त होते हैं- *Issue*- मामला, *Leave*- छुट्टी, *Floor*- मंजिल, *Wage*- मजदूरी, *Complain*- शिकायत, *Report*- रपट।

साहित्यिक और पारिभाषिक भिन्नताओं की समस्या

यद्यपि पारिभाषिक शब्दों की संरचना में साहित्यिक विद्वानों का योगदान रहा है। साहित्यिक अर्थ व्यंजना में पर्याप्त भिन्न के दर्शन होते हैं, उदाहरण -

Discussion - साहित्यिक चर्चा, बहस (पारिभाषिक)(विचार-विमर्श) Review - समीक्षा (पुनर्विलोकन)
Contribution - योगदान (अंशदान) Duplicate - नकल (प्रतिलिपी)
Context - प्रसंग (संदर्भ)

अंग्रेजी शब्दार्थ की नकल करने से उत्पन्न होने वाली अर्थ व्यंजनात्मक भाषिक समस्या

भारतीय भाषाओं में शब्दों की कमी नहीं है हमारी शब्द सम्पदा अनन्त है। सामान्य शब्दों को भी बिना किसी संकोच के पारिभाषिक स्वीकृति प्रदान की जा सकती है परन्तु कुछ शब्दों के लिये अंग्रेजी मूल से हिन्दी में समानार्थक पारिभाषिक शब्द संरचित करते समय अंग्रेजी की नकल की गई है, उदाहरण -

अंग्रेजी मूल	अंग्रेजी शब्दानुवाद के कारण प्रचलित	भारतीय शब्दों में अपेक्षित
South-Eastern Railway	दक्षिण-पूर्व रेलवे	आग्नेय रेलवे
North-Eastern Railway	उत्तर-पूर्व रेलवे	ईशान्य रेलवे
North-West Railway	पश्चिमोत्तर रेलवे	वायव्य रेलवे
South-West Railway	दक्षिण-पश्चिम रेलवे	नैऋत्य रेलवे

समाधान

जहाँ तक शब्दावली की क्लिष्टता एवं उच्चारण की दुरूहता का प्रश्न है तो उस सम्बन्ध में तर्क यह है कि हमें इस शब्दावली को प्रयोग में लाते समय यह नहीं भूलना चाहिए कि यह शब्दावली आम व्यक्तियों के लिए नहीं है। इस शब्दावली को उपयोग करने वाले सीमित लोग हैं और अगर उन्हें अपने क्षेत्र में कार्य करना है तो उस शब्दावली का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। वास्तविकता यह है कि हम इस शब्दावली के प्रयोग पर बल नहीं देते हैं, यदि दृढ़ता एवं मनोयोग के साथ पारिभाषिकों का प्रयोग करें तो वे भी बोधगम्य और सरल हो जायेंगे। एक और तथ्य यह है कि अंग्रेजी का प्रयोग अधिक आसान है यह भी पूर्वाग्रह ग्रस्त है वास्तविकता यह है कि शब्दावली अंग्रेजी की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक है।

संदर्भ

गृह-मंत्रालय, राजभाषा प्रभाग २/१५/१९६०
कार्यालय ज्ञापन, १६/४/१९७१
राजभाषा के संदर्भ में हिन्दी आन्दोलन का इतिहास- डॉ० उदय नारायण दुबे
राजभाषा भारती, राजभाषा विभाग १९७८
हिन्दी की समस्यायें- प्रो० कामेश्वर शर्मा

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,23-25**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 01 मार्च 2017

कबीर के दोहे आज भी प्रासंगिक

डॉ0 नीतू दुबे*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *कबीर के दोहे आज भी प्रासंगिक* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *नीतू दुबे* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इस छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध प्रपत्र आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

कबीर भक्त कवि होने के साथ–साथ समाज सुधारक भी थे। उन्हें समाज की धार्मिक विभिन्नता, संस्कारगत व्यवहारों में विभेद, उँच, नीच, जाति पांति, धर्म, आडम्बर, अन्धविश्वास के प्रति गहरी उदसीनता थी। उन सबके अतिरिक्त मनुष्य का सच से भटकाव अहसनीय था। उस समय मनुष्य की समसया को अनुभव कर कबीर ने जो उपाय बताये दु:खों से बचने के जो मार्ग बताये वो आज भी उतने ही प्रासंगिक है। क्योंकि मनुष्य है तो मानसिकता की विभिन्नता के कारण कष्ट भी है और भटकाव भी। कारण वही है जो तब था सच का अभाव, उसके प्रति उदासीनता। आज भौतिकतावादी समय मे लोगों में विलासिता पूर्ण जीवन जीने की जो अन्धी दौड़ मची है। लोग बिना आग के जल रहे हैं, शारीरिक एवं मानसिक रूप से उलझे हुए हैं, नकारात्मकता पूरी तरह हावी है, बच्चे, बूढ़े, जवान सभी उस क्षणिक आकर्षण के पीछे भागे जा रहे हैं। समाज का प्रत्येक वर्ग उस मिथ्या आकर्षण की दौड़ में अपने–अपने स्तर से शामिल है। साधन क्या है? इसकी ओर किसी का ध्यान नहीं है, बल्कि आश्चर्य यह है कि प्रत्येक साधन जो विलासिता की ओर कर दिया है। शिक्षा, व्यवहार, राजनीति, आध्यात्म सबका उद्देश्य ही ऐश–आराम और भौतिकतावादी हो गया हैं। सभी कंचन, कामिनी एवं कीर्ति के जाल में उलझे हुए सुख की कामना में जल रहे है नैतिक मूल्यों का निरन्तर हनन हो रहा है। आध्यात्म तो जीवन से विलुप्त ही हो गया है। ऐसी तपिश भरे जीवन में कबीर का जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण जो अनुभवजन्य है 'मात्र कागद की लेखी' नही है शीतल फुहार देने में आज भी सफल है। भागती–दौड़ती जिन्दगी में शीतल छाया जैसा सुख कबीर की भावनाओं में मिलता है जो उन्होंने ऐसी ही विषमय सामाजिक परिस्थिति अन्तर्द्वन्द्व, उदेदश्यहीन जीवन एवं अज्ञानता से युक्त समाज के लिये प्रयोग की थी। आज आवश्यकता है एक बार फिर कबीर को जीने की उनके नीतिपरक उदेश्य, भक्ति, प्रेम और सबसे बढ़कर मनुष्य जीवन, इंसानियत को ढूंढने और सफल बनाने की। आज के आधुनिकतावादी समय में भी हम कबीर को अपने जीवन में हर कदम पर साथ लेकर चले तो जिस सुख शान्ति की तलाश में भटक रहे हैं उसका तत्काल अनुभव कर जीवन में शान्त हो सकते है। जो सुख के साधनों ने नहीं अपने हृदय में ही उपलब्ध है। उनकी अनुभवजन्य परम सुख प्रदान करने वाली ज्ञान मंजूषा से चुनकर कुछ दोहे रूपी मोती आपके समक्ष प्रस्तुत हैं जिसकी चमक आज भी आपके मन

* सहायक प्राध्यापिका, संत हिरदाराम कन्या महाविद्यालय, भोपाल (मध्य प्रदेश) भारत

© लेखक 2017, एम0पी0ए0एस0वी0ओ0 मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहासंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

एवं जीवन के अंधेरे को दूर कर प्रकाश से भर देने की सामर्थ्य रखती है –

१. *कबीर सूता क्या करै, सूता होई अकाज। ब्रहमा का आसण खिस्या, सुणत काल की गाज।। अर्थात्* जीव तुम सोये हुए हो क्यो हो? अज्ञान में सोने से तो हानि ही होती है। अज्ञान में सोये रहने से काल अपनी गर्जना से ब्रह्मा के सिंहासन को भी हिला देता है।

आज के युग में सभी के लिए यह बात समझने की है कि समय किसी के लिए नहीं रूकता। अपने मनुष्य जीवन को सार्थक करना है, तो सतत् प्रयासरत रहना पड़ेगा। अपने जीवन मे लक्ष्य बनाने से लेकर उसको हासिल करने तक अपनी उर्जा झोंक देनी चाहिए। एक बात तो हर युग में ही सच है कि मेहनत एवं अनुशासन का कोई विकल्प नही होता। कबीर की यह भावना भी उतनी ही सार्थक है।

२. *जिनके नौबति बाजति, मैंगल बंधते बारि। एक हरि के नॉव बिन, गए जनम सब हारि।। अर्थात्* जिनके द्वार पर नौबत बजती थी और मस्त हाथी बॅधते थे, संसार के सुख होते हुए भी एक नाम के स्मरण के अभाव में संपूर्ण जीवन ही व्यर्थ हो गया।

कबीर की यह बात किसी भी युग किसी भी समय में सच है। जब मिथ्या जगत की क्षणभंगुरता की सच्चाई की अनदेखी कर इसके पीछे अंधे होकर भागना, दुनिया की सारी दौलत, शोहरत हासिल कर लेने के बाद भी सौदा घाटे का ही होता है। क्योंकि सब यहीं छोड़कर चले जाना है। आज की आपाधापी भरी जिन्दगी में चन्द खुशियों की खातिर यह अमूल्य जीवन प्रतिपल दाव पर लगा है। इतिहास भरा पड़ा है ऐसे उदाहरणों से। तो क्यों हम इस चूहे, बिल्ली की दौड़ से बाहर रहकर जीवन में शान्ति एवं सन्तोष को शामिल कर नाम स्मरण में समय व्यतीत करें।

३. *कबीर मंदिर लाश का जड़िया हीरै लाल। दिवस चारि का पेषणा, बिनसि जाइगा काल्हि।। अर्थात्* कबीर की उक्ति है कि यह शरीर रूपी मंदिर लाख करोड़ का है इस बहुमूल्य मंदिर में हीरे–जवाहरात जड़े हुए हैं अर्थात् अनेक सौन्दर्य संसाधनों से यह सुसज्जित है पर इस खिलौने की शोभा केवल चार दिन की है यह क्षण भंगुर है कल ही नष्ट हो जायेगा, इस पर गर्व करना केवल मूर्खता है।

कबीरदास जी ने जगत्, एवं जीवन की नश्वरता का वर्णन कई रूपों में किया है। हमारा शरीर जिसके इर्द–गिर्द ही हमारी जिन्दगी घूमती है। हमारी सारी भावनाएं इसी के क्रियाकलाप एवं बाहय संबंधों से संचालित होती हैं। यह तो प्रकृति की अनमोल धरोहर है, परन्तु हम इसको अहंकार के कारण भगवान से बढ़कर समझते हैं। इसके सुख के लिए कटु वचन बोलना, दूसरे को नीचा दिखाना आदि न करने वाले काम भी बर्बरता से कर जाते है। जबकि सबसे बड़ी सच्चाई यह है कि यह अत्यंत क्षण भंगुर है। पानी के बुलबुले की तरह अभी है, अभी नहीं है। पर आज की पीढ़ी शरीर को ही सच मानकर भांति–भांति से सजावट कर गर्व से फूलकर चलती है, जिसका अंत निशिचित है, यही सच है। आवश्यक है कि कबीर की इन बातों को जीवन में उतारें और शरीर को ही सबकुछ न समझें, इसके परे भी बहुत कुछ है अच्छा जीवन जीने के लिए।

४. *जैसी मुख तै नीकसै, तैसी चालें नाहि। मानिष नहीं ते, स्वानगति, बंध्या जमपुर जाहि।। अर्थात्* जो व्यक्ति बोलता है अपने वचनों का पालन नहीं करता वो मनुष्य नहीं है। उनकी कुत्तों जैसी गति होती है और उनको यमराज बांध कर ले जाता है उनका न यह जनम सुधरता है, न परलोक ही सुधरता है।

मुझे लगता है आज हर दूसरा व्यक्ति ऐसा है जिसका भरोसा नही किया जा सकता। उसकी हर स्थिति भिन्न–भिन्न बातों से जुड़ी है। आज के लोगों की बात घोड़े की लात को भी मात करने वाली है। अपने मन एवं कर्म में तो सच्चाई नहीं तो बातों की गंभीरता कहाँ से आयेगी। सबके मुँह पर सबके जैसी बात। लोग शब्दों की चाश्नी पिलाने में लगे पड़े हैं। वो खोखली बातें, वादे सब झूठ हैं। अपनी बातों के विभिन्न पैतरों से किसको कितना मूर्ख बनाना है यह आज के अच्छे व्यक्तित्व की पहचान है। झूठ एवं मक्कारी तो बहुत छोटी हो गई है। पल–पल में चेहरे बदलना ऊँचे लोगों की सफलता का मानदण्ड है। परन्तु इसका परिणाम क्या है? कुत्तों जैसा जीवन? क्या यही मानव जीवन का लक्ष्य है। जिसके शब्द में सच्चाई नही है वह भला मुक्ति जैसे लक्ष्य को कैसे साध सकता है? क्या करना है शब्दों का जाल बुनकर उसमें लोगों को फँसाकर अपनी कहनी, कथनी और करनी को एक रखे बस सब सध जायेगा, जीवन सरल हो जायेगा। विचार ऊँचे हो जायेंगे, फिर देखें जीवन कैसा कागज की तरह हल्का हो जायेगा।

५. *करता था तौ क्यूं रहय्या, अब करि क्यूं पछताई। बोवै पेड़ बबूल का, आम कहाँ से खाय।। अर्थात्* जब कर्म करने के लिए स्वतंत्र थे तब सोचा नही। मैं करता हूँ यह अभिमान भरा हुआ था आज वही कर्म जब फल दे रहा है तो पछताने से क्या लाभ है? जब बबूल का पेड़ बोया है तो फल भी तो बबूल के ही खाने पड़ेंगे, आम खाने की इच्छा है तो दुखदायी ही होगा।

हमारे सनातन धर्म मे कर्म की गति को अत्यंत गहन बताया है। कर्म को पूजा का दर्जा दिया गया है। कर्म करते समय जीव स्वतंत्र होता है। इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए वह किसी भी हद तक जा सकता है परन्तु जब वही कर्मों का फल मिलता है तो दु:खी होता है उसको भोगने के सिवाय कोई चारा नही होता तब पश्चाताप करता है और किस्मत को कोसता है। जबकि हमारे द्वारा किये जाने वाले कर्म ही हमारी किस्मत बनाते हैं। इसलिए मन, बचन एवं कर्म में सच्चाई होनी चाहिए। यह ज्ञात होना चाहिए कि आज हमारे द्वारा बोया गया कर्म का बीज जब बड़ा होकर फल देगा तब उसको ही खाना पड़ेगा चाहे वह कड़वा हो या मीठा। आज भले ही तकनीकी से युक्त जमाना है पर कर्म के हिसाब किताब में प्रकृति की एक ही गणित चलती है कि बबूल रूपी कर्म का बीज बोया है तो आम के फल खने की इच्छा कैसे पूरी हो सकती है?

६. *राशि परायी राषताँ, खाया घर का खेत। औसे को परमोधता, मुख में पड़िया रेत।। अर्थात्* कबीर जी ने जीवन के एक और रंग के विषय में बताते हुए कहा है कि जो दूसरों की अन्न राशि की ही रखवाली करते है, वे अपने ही घर का खेत समाप्त कर लेते हैं। लापरवाही में पशु उन्हीं के घर का खेत चर जाते हैं। दूसरों की चिन्ता का अहंकार तथा अपनी वास्तविकता की उपेक्षा में उनका ज्ञान विषय से धूमिल हो जाता है। मात्र दूसरों को ज्ञान देने वाले के ही मुख पर धूल ही पड़ती है।

जीवन के पृथक रंग की ओर संकेत किया है कबीरदास जी ने। जिसे 'पर उपदेश कुशल बहु तेरे'' से भी समझा जा सकता है पर यह उससे भी गंभीर बात है कि अपनी जिम्मेदारी का त्याग कर यश–कीर्ति के लालच में जो ऐसा करते हैं दूसरों को सुख पहुंचाने के लिए उद्यम करते हैं। परन्तु आज के समय में ऐसे लोग कम ही हैं, क्योंकि लोग इतने स्वार्थी और मतलबी हैं कि बिना स्वार्थ के उनको चेहरे पर मुस्कुराहट तक नहीं आती।

कबीरदास के विचारों की सूक्ष्मता ऐसी है जो मन को झकझोर देने वाली है। उनके विचार आज भी इतने प्रासंगिक है जो आज के खोखले जीवन की धज्जियाँ उड़ा रहे हैं। अपने स्वार्थ के अनुसार अलग ही मानदण्ड बना लिये गये है। परन्तु सच यही है कि यह प्रकृति परमात्मा की नियामत है इस पर उसी का शासन चलता है। जनम एवं मृत्यु के बीच जो फासले हैं उसमें प्रकृति के अपने नियम है, चाहे उन्हें कर्म कहे या धर्म कहें किसी भी दृष्टि से ये परमात्मा की शक्ति को ही उजागर करते हैं। इसलिए सरल शब्दों में यदि कबीर के विचारों की हवा जीवन में दी जाये तो निश्चय ही वह हल्का एवं सुखमय होगा। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

लेखकों के लिए निर्देश

शोधपत्र का अनुरोध

लेखक अपना शोधपत्र डॉ. मनीषा शुक्ला ,प्रधान सम्पादिका आन्वीक्षिकी भारतीय शोध पत्रिका को ई-मेल पर प्रेषित करें। (maneeshashukla76@rediffmail.com)

प्राप्त शोधपत्र पत्रिका में प्रकाशन के पूर्व पुनर्निरीक्षित किये जायेंगे। स्वीकृत शोधपत्र कहीं और प्रकाशित नहीं होना चाहिए और न ही उस शोधपत्र का कोई भी भाग प्रधान सम्पादिका के अनुमति के बिना कहीं और प्रकाशित किया जा सकता है। कृपया अपने शोधपत्र की पाण्डुलिपि निम्न भागों में तैयार करें,शीर्षक ;सारांश ;पाण्डुलिपि ;पुस्तक संदर्भ सूची। कृपया पुनर्निरीक्षण की गुणवत्ता में सहायता करने हेतु अपना नाम पता पाण्डुलिपि पर न दें।

शीर्षक :शीर्षक पाण्डुलिपि पर अवश्य दें,किन्तु अपना पूरा नाम,पता,संस्था जहाँ पर अध्ययन अथवा अध्यापन कार्य सम्पादित किया गया हो, आपका विषय,दूरभाष अथवा मोबाइल,फैक्स,ई-मेल पत्राचार हेतु अलग पृष्ठ पर अवश्य दें। उपर्युक्त तथ्य आपके शोधपत्र के शब्द सीमा के अन्तर्गत ही माना जायेगा।

सारांश :कृपया शोधपत्र का सारांश 120 शब्दों में दें।

पाण्डुलिपि :इसके अन्तर्गत मुख्य पाठ्य सामग्री होगी ; जो 5 से 10 पृष्ठ तक होनी चाहिये। शोधपत्र 10 पृष्ठ से (सारांश,शब्द संक्षेप,संदर्भ सूची समेत)अधिक प्रकाशन हेतु स्वीकार नहीं किया जायेगा। अन्यथा वृहद् शोधपत्र(10 पृष्ठ से अधिक) प्रकाशन में देर भी हो सकती है। लेखक को यह बात स्वीकार होनी चाहिए कि शोधपत्र पुनर्निरीक्षण के दौरान किये गये संशोधन उन्हें मान्य होंगे। शोधपत्र प्रकाशन के दौरान त्रुटि की सम्भावना न बने इसका पूरा ध्यान रखा जाता है फिर भी कोई त्रुटि पाये जाने पर लेखक संशोधित रीप्रिंट प्राप्त कर सकता है ; पत्रिका में संशोधन की व्यवस्था नहीं है।

सन्दर्भ वर्णमालाक्रामानुसार :शोधपत्र के समापन पर कृपया संदर्भ वर्णमाला क्रमानुसार दें। पत्रिका का वर्ष,लेखक, पृष्ठ संख्या,भाग इत्यादि विस्तार से दें। पुस्तक शीर्षक या पत्रिका शीर्षक इटालिक दें।

पुस्तक :प्रकाशक का नाम,संस्करण संख्या,प्रकाशन वर्ष,लेखक का नाम,पुस्तक का नाम,पृष्ठ संख्या

पत्रिका :पत्रिका का नाम,लेख का शीर्षक,लेखक का नाम,प्रकाशक का नाम,अंक संख्या/माह,वार्षिक अथवा अर्द्धवार्षिक अथवा मासिक जो भी हो स्पष्ट करें।

समाचार पत्र :प्रकाशक,तिथि,सन् ,पृष्ठ संख्या,

इण्टरनेट :वेबसाइड,पृष्ठ संख्या,मुख्य शीर्षक,अन्त: शीर्षक।

मानचित्र एवं सारणी :मानचित्र एवं सारणी अथवा चित्र शोधपत्र की समाप्ति के अन्त में दें। यह ब्लैक एण्ड व्हाइट ही होना चाहिए। इसका स्पष्ट संकेत पाण्डुलिपि में दें(उदाहरण सारणी संख्या 1)

विशेष :कृपया अपना शोधपत्र ई-मेल करने के बाद डॉक से अवश्य भेजें। अपने शोधपत्र के साथ-साथ अपना वायोडाटा, फोटो,स्वपता लिखा लिफाफा(25 रू के टिकट सहित)भेजें। शोधपत्र यदि हिन्दी भाषा में है तो ए.पी.एस प्रियंका रोमन(ए.पी.एस. कार्पोरेट 2000++)में तैयार सी.डी के साथ दें। शोधपत्र प्राप्त होने के एक सप्ताह के अन्दर लेखक को स्वीकृति पत्र प्रेषित कर दिया जायेगा। ई-मेल से प्राप्त शोधपत्र हेतु ई-मेल से स्वीकृति भेजी जायेगी। शोधपत्र प्रेषित करने के पूर्व प्रधान सम्पादिका से दूरभाष पर अवश्य सम्पर्क करें। सम्पादक मण्डल अथवा सलाहकार समिति में सम्मिलित करने का अंतिम निर्णय संस्था का होगा।

सदस्यों से निवेदन है कि वर्ष में 20 सदस्य पत्रिका से जोड़कर संस्था का सहयोग करें।

प्रकाशन
अन्य एम.पी.ए.एस.वी.ओ. पत्रिकाएँ
सार्क अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका
www.anvikshikijournal.com

अन्य सहसंयोजन
एशियन जर्नल ऑफ मार्डन एण्ड आयुर्वेदिक मेडिकल साइंस
अर्द्धवार्षिक पत्रिका
www.ajmams.com

IJRA
www.anvikshikijournal.com

ISSN 0973-9777
09739777
₹ 1300/-